भारतीय इतिहास पूनर्लेखन क्यों ?
एवं पुराणों में इतिहास विवेक

डॉ. कुंवरलाल व्यासशिष्य

प्रकाशक

इतिहास विद्या प्रकाशन

दिल्ली-41

1984 ई.

भारतीय इतिहासपुनर्लेखन क्यों ?

एवं

पुराणों में इतिहासविवेक



लेखक
डा० कुँवरलाल व्यासशिष्य
आचार्य, एम० ए० पी० एच० डी०

इतिहासविद्याप्रकाशन, दिल्ली

प्रथम संस्करण : 1984
मूल्य : पचास रुपये (50.00)

मुद्रक : नवीन आर्ट प्रिंटर्स, द्वारा
लक्ष्मी प्रिन्ट इण्डिया, शाहदरा, दिल्ली-110032

(प्राक्कथन)

स्वतंत्रता के पश्चात् विश्व के अनेक देशों यथा, जापान, चीनादि ने अपने देश का राष्ट्रीय दृष्टिकोण से इतिहास पुनर्लेखन किया, परन्तु भारत ही एक ऐसा देश है जिसने अंग्रेजीभाषा के समान विदेशी पाश्चात्य किंवा आंग्लविचारों को, अपनी छाती से, स्वतन्त्रता के ३६ वर्षों के पश्चात् भी उसी प्रकार चिपकाये हुए है, जिस प्रकार बन्दरिया अपने मरे हुए बच्चे को चिपकाये रहती है। यह अत्यन्त राष्ट्रीय खेद का विषय है।

राष्ट्रीय एकताहेतु एवं सत्यज्ञानपिपासाशान्तिहेतु भारत का इतिहास पुनर्लेखन, न केवल आवश्यक, वरन् अनिवार्य ही है। इस सम्बन्ध में लेखक, पिछले ३० वर्षों से, साधनों के अत्यन्त अभाव में भी इतिहासपुनर्लेखन पर परिश्रमपूर्वक अनुसन्धान कर रहा है और यह प्रथम पुष्प उसी सत्यानुसन्धान का प्रतिफल है।

स्वतन्त्रता से पूर्व एवं पश्चात् एकमात्र अनुसन्धाता स्व० श्रद्धेय पं० भगवद्दत्त ने भारतवर्ष का इतिहास लिखने का महान् प्रयत्न किया। लेखक ने पं० भगवद्दत्त की खोजों से प्रेरणा लेकर संस्कृतवाङ्मय के मूलग्रन्थों का आलोडन किया और अनेक, सर्वथा नवीन, मौलिक एवं क्रान्तिकारी तथ्य प्रकाश में लाये हैं। लेखक, पं० भगवद्दत्त के अधिकांश विचारों एवं खोजों से सहमत है, परन्तु अनेक बातों से असहमति भी है, यथा वेदमंत्रों में इतिहास एवं परशुराम, प्रतर्दन, दिवोदास आदि का समय इत्यादि, ग्रन्थ-परायण से ही ज्ञात होंगे।

पाश्चात्यलेखकों ने अपने साम्राज्यकाल में भारतीयग्रंथों, विशेषत: इतिहास-पुराणों में अश्रद्धा उत्पन्न की जो भारतीयजन में आज भी नहीं जम पाई है। पुराण अपनी अनेक कमियों के बावजूद, आज भी भारतीय इतिहास (स्वायम्भुवमनु से यशोधर्मा तक) के मूलस्रोत हैं। लेखक ने पुराणों के आधार पर भारतीय इतिहास के अनेक मूल सत्यों की खोज की है जिसमें मुख्य है—भारतीय इतिहास के मौलिक कालक्रम (Chronology) का अनुसन्धान एवं निर्धारण।

लेखक ने पुराणों के आधार पर मुख्यत: निम्न तथ्यों की खोज की है, जिनका परिगणन द्रष्टव्य है—

१. **विकासवाद**—भारतीयवाङ्मय एवं आधुनिक वैज्ञानिकपरीक्षण से सिद्ध किया गया है कि डार्विनप्रतिपादित विकासमत घोर अवैज्ञानिक एवं एक अतथ्य है, यह आत्मा, ईश्वर और मनुष्य की प्रगति का विरोधी है।

२. भारतीय इतिहास के प्रति प्रथमबार मैकालेयोजना के अन्तर्गत पाश्चात्य षड्यंत्र का भण्डाफोड़ किया गया है।

३. पाश्चात्यमिथ्याभाषामत का खोखलापन प्रदर्शित किया गया है और आर्यपद का यथार्थ लिखा गया है।

४. भारतीयदैत्यों ने ही योरोप, अमेरिका और अफ्रीका को बसाया, यह तथ्य वहां के भौगोलिक नामों विशेषतः देशनामों से सिद्ध किया गया है।

५. मिथ्याकालविभाग यथा वैदिकयुग, उत्तरवैदिकयुग जैसे मिथ्यायुगों का सप्रमाण खण्डन किया गया है।

६. द्वितीय अध्याय में विस्तार से भारतीय इतिहास की विकृतियों के प्राचीन कारणों---पुराणभ्रष्टता, वैदिकविभ्रम, नामसाम्यभ्रम, नक्षत्रमनुष्यनामभ्रम, योनि-समस्या आदि का स्पष्टीकरण किया गया है।

७. लेखक अपनी एकदम नई, मौलिक एवं क्रान्तिकारी खोज मानता है---युगमानविवेक---व्यासपरम्परा के आधार पर पुराणप्रमाण्य से मनु से युधिष्ठिरपर्यन्त ३० युग व्यतीत हुए जिनमें युग या परिवर्त का मान था---३६० वर्ष। इस आधार पर मनु से युधिष्ठिर पर्यन्त १०८०० वर्ष व्यतीत हुए यह सिद्ध किया गया है।

८. **चतुर्थ अध्याय** में प्रमाणों द्वारा भारतयुद्धतिथि, कलिसंवत्, कल्कि कलिवर्षमान, बुद्धनिर्वाणतिथि, शूद्रकादि पर नवीन प्रकाश डाला गया है। कल्कि की ऐतिहासिकता प्रथम बार सिद्ध की गई है।

९. पंचम अध्याय में दश ब्रह्मा या २१ प्रजापतियों का विवरण है।

१०. इसी अध्याय में अनेक दीर्घजीवीपुरुषों के दीर्घायुष्ट्व को प्रथम बार सिद्ध किया गया है।

डा० कुँवरलाल व्यासशिष्य

विषय-सूची

अध्याय

संकेतसूची

१. अथर्व० या अं०=अथर्ववेद
२. आ० श्रौ०=आपस्तम्बश्रौतसूत्र
३. इ० पु० सा० इ०=इतिहासपुराणसाहित्य का इतिहास
४. ऐ० ब्रा०=ऐतरेयब्राह्मण
५. ऋ०=ऋग्वेद
६. का० सं०=काठकसंहिता
७. का० श्रौ०=कात्यायनश्रौतसूत्र
८. जै० उ० ब्रा०=जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण
९. जै० ब्रा०=जैमिनीय ब्राह्मण
१०. जै० मी० सू०=जैमिनीय मीमांसासूत्र
११. तै० उ०=तैत्तिरीय उपनिषद्
१२. तै० ब्रा०=तैत्तिरीय ब्राह्मण
१३. तै० सं०=तैत्तिरीयसंहिता
१४. द्रोण०=द्रोणपर्व
१५. नि०=निरुक्त
१६. मत्स्य०=मत्स्यपुराण
१७. मनु० स्मृ०=मनुस्मृति
१८. महा०=महाभारत
१९. मु०=मुण्डकोपनिषद्
२०. मै० सं०=मैत्रायणीसंहिता
२१. भा० गृ० सू०=भारद्वाजगृह्यसूत्र
२२. भा० बृ० इ०=भारतवर्ष का बृहद्इतिहास
२३. बृहद्दे०=बृहद्देवता
२४. बु० च०=बुद्धचरित
२५. बृ० उ०=बृहदारण्यक उपनिषद्
२६. ब०पु०=ब्रह्माण्डपुराण
२७. रा०=रामायण
२८. विष्णु०=विष्णुपुराण
२९. वायु०=वायुपुराण
३०. वे० द० इ०=वेदान्तदर्शन का इतिहास
३१. वै० वा० इ०=वैदिक वाङ्मय का इतिहास
३२. शा०=शान्तिपर्व
३३. श० ब्रा०=शतपथ ब्राह्मण
३४. शु० य०=शुक्लयजुर्वेद
३५. सं० लि०=संस्कृत लिटरेचर
३६. सि०शि०=सिद्धान्तशिरोमणि
३७. हरि०=हरिवंशपुराण
38. A. I. H. T.=Ancient Indian Historical Tradition
49. C. H. I.=Cambridge History of India
40. J. A. S.=Journal of Royal Asiatic Society.



प्रथम अध्याय

भारतीय इतिहास की विकृति के कारण

आवश्यकता

जब से भारतभूमि बाह्य दास्यभाव अर्थात् सन् १९४७ में जब से अंग्रेजों की परतंत्रता से स्वतंत्र हुई है, तब से अब तक शासकवर्ग एवं विद्वद्वर्ग में बहुधा वीर घोषणायें होती रहती हैं कि भारतीयइतिहासपुनर्लेखन की महती आवश्यकता है, परन्तु अद्यपर्यन्त, ३६ वर्ष व्यतीत होने पर भी शासक वर्ग की ओर से गम्भीर प्रयत्न तो क्या, इतिहासपुनर्लेखन का साधारण या हल्का प्रयत्न तक भी नहीं हुआ। विद्वद्वर्ग में केवल एक व्यक्तिगत लघु, परन्तु गंभीर प्रयत्न भारतीय स्वतन्त्रता से पूर्व ही किया था, जबकि सन् १९४० में लाहौर से पण्डित भगवद्दत्त ने 'भारतवर्ष का इतिहास' प्रथम बार बड़ी कठिनाई से प्रकाशित किया। पण्डितजी के प्रयत्न स्वतन्त्रता के पश्चात् भी लगभग २३ वर्ष पर्यन्त अर्थात् १९६८ तक, जब तक वे जीवित रहे, चलते रहे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पण्डित भगवद्दत्तजी के इतिहासपुनर्लेखन के प्रयत्न महान् अन्धकारसागर में प्रकाशस्तम्भ के समान मार्गदर्शक हैं, परन्तु एकाकी हैं। उनके समानधर्मा सर्वश्री युधिष्ठिर मीमांसक (संस्कृतव्याकरणशास्त्र का इतिहास), उदयवीरशास्त्री (सांख्यदर्शन का इतिहास), सूरमचन्द्रकृत आयुर्वेद का इतिहास इत्यादि प्रयत्न भी एकाकी या अपूर्ण ही हैं, फिर भी सत्यशोधकों के परमसहायक हैं, जबकि आंग्लप्रभुओं के तदनुयायी भारतीय कृष्णप्रभुओं ने इतिहास में घोर मिथ्यावादों की कर्दम (कीचड़) की दलदल उत्पन्न कर रखी है। इस घोर कीचड़ से निकलना सामान्यबुद्धि का काम नहीं, जिसमें डॉ० मंगलदेव शास्त्री, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल और पण्डित बलदेव उपाध्याय जैसे प्राच्यविद्याविशारद भी फँसकर नहीं निकल सके।

भारतीयइतिहासपुनर्लेखन की महती आवश्यकता क्यों है, इस तथ्य को प्रायः प्रत्येक विद्वान् समझ सकता है, फिर भी संक्षेप में हम इस आवश्यकता पर विचारमंथन करेंगे।

आंग्लप्रभुओं ने अपनी षड्यन्त्रपूर्ण—मैकालेयोजना के अन्तर्गत ऐसे समय में भारत का इतिहास लिखना प्रारम्भ किया जबकि भारतदेश अपने अतीत गौरव एवं प्राचीनतम इतिहास को अन्धतम अज्ञानावर्त में डाल चुका था। आंग्लप्रभुओं ने अपने मिथ्याज्ञान के द्वारा उस अन्धतम अज्ञानावर्त पर और गर्त चढ़ाई। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भेद (फूट) और अज्ञान के बीज भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीनकाल से थे और

अब भी हैं, विदेशी शासकों द्वारा भारतीय भेदमूलक तत्वों यथा जातिवाद, भाषावाद, सम्प्रदायवाद और अज्ञान का लाभ उठाना स्वाभाविक था, अत: उन्होंने भेदमूलक एवं अज्ञानमूलक उपादानों का उपबृंहण अथवा विस्तार किया। अत: अंग्रेजों ने आर्य-अनार्य या आर्य-दस्यु या आर्य-द्रविड़ समस्या खड़ी करके यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि भारतवर्ष सदा से ही विदेशी जातियों का उपनिवेश या अड्डा रहा है, इसके द्वारा प्रत्यक्ष या प्रच्छन्नरूप से वे सिद्ध करना चाहते थे कि भारतवर्ष में अंग्रेजों का राज्य या शासन सर्वथा वैध या न्यायपूर्ण है, जबकि आर्य-द्रविड़ या उनसे भी पूर्व शबर, मुण्ड, आन्ध्र, पुलिन्द आदि जातियाँ यहाँ बाहर से आकर बसती रहीं और भारतभूमि पर आधिपत्य करती रहीं।

अंग्रेजों ने भारतीय एकता के उपादानों या घटनाओं का अपने इतिहासग्रन्थों में कोई उल्लेख नहीं किया, यथा अगस्त्य या पुलस्त्य, राम या हनुमान् या व्यास को उन्होंने ऐतिहासिक पुरुष ही नहीं माना, इनकी ऐतिहासिकता की उन्होंने पूर्ण उपेक्षा ही की। अगस्त्य-पुलस्त्य के दक्षिण अभियान की उन्होंने चर्चा ही नहीं की, जो उत्तर-दक्षिणभारतीय एकता का महान् प्रतीकात्मक उपक्रम था। प्राय: स्वयं सिद्ध एकतामूलक तथ्यों में भी उन्होंने भेद के बीज देखे। वेद, जो न केवल भारतवर्ष वरन् विश्वसंस्कृति का मूल है, उसे केवल उत्तरभारतीय या पंजाब या पांचाल (उत्तरप्रदेश) की सम्पत्ति सिद्ध किया गया। संस्कृतभाषा, जो मानवजाति की आदिभाषा या मूलभाषा है, उसका उद्गम एक काल्पनिक एवं बाह्य इण्डोयूरोपियनभाषा से माना गया।

अंग्रेज या पाश्चात्यमिथ्याभिमानी लेखकों द्वारा प्रत्येक प्राचीन भारतीय विद्या या श्रेष्ठज्ञानविज्ञान को विदेशी मूल का सिद्ध करने का प्रयत्न किया। यहाँ पर प्रत्येक विषय या शीर्षक के विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु अतिसंक्षेप में कथन करेंगे। जब पाश्चात्यों ने यहाँ की प्राचीनजातियों, भाषाओं और धर्मों को विदेशी बताया तो उन्होंने प्रत्येक प्राचीन एवं श्रेष्ठविद्या का मूल भी बाह्यदेश को बताना आरम्भ किया। यथा पाश्चात्यों के अनुसार प्राचीनतमकाल में भारतीयों ने ज्योतिषविद्या या नक्षत्रविद्या बैबीलन या कालडियावासी असुरों से सीखी, द्वादश राशियों का ज्ञान या सप्ताह के वारों के नामादि यूनानियों से सीखे। पाणिनिव्याकरण सूत्र में एक 'यवनानी' लिपि का उल्लेख है; इस आधार पर पाश्चात्यों ने कल्पना की कि भारतीयों ने लिपि या लिखना, सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् यूनानियों से सीखा। इसी प्रकार भारतीयनाट्यकला का उद्गम ग्रीकनाटकों में देखा गया। पाश्चात्यों ने यह भी सिद्ध करने की चेष्टा की कि भारतीयों ने नगरनिर्माणकला, स्थापत्यकला (भवनशिल्प), शासनव्यवस्था आदि सभी कुछ यूनानियों से सीखे। उनके अनुसार आर्यजाति तो यायावर या घुमक्कड़ थी, उन्हें न तो नगर बसाना आता था न खेती करना और न शासन करना और न उन्हें धातुज्ञान था, न समुद्र से उनका परिचय था। आर्यों ने धर्म के उपादान उपासनापद्धति आदि यहाँ के वनवासियों या द्रविड़ादि जातियों से सीखे। आर्य तो कूपमण्डूक जाति थी, समुद्रयात्रा या नाव बनाना उन्होंने द्रविड़ों से सीखा। मैक्समूलर, विन्टरनीत्स कीथ मैकडानल आदि को

वेदमन्त्रों में समुद्र का उल्लेख ही दिखाई नहीं दिया, फिर आर्य समुद्रयात्रा कैसे करते, उनके अनुसार प्राचीनभारतीय आर्य भेड़ बकरी चराने वाले गड़रिये थे, वेदमन्त्र इन्हीं गड़रियों के गीत हैं जो ऋषिमुनियों द्वारा भेड़-बकरी चराते समत गाये जाते थे।

पाश्चात्यों का षड्यन्त्र और मिथ्याज्ञान स्वाभाविक ही था, परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् भी उसी पाश्चात्य आंग्लविद्या का गुणानुवाद और पठन-पाठन सचेता भारतीय के लिए बुद्धिगम्य नहीं है। भारत के राजनीतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक इतिहास के पुनर्लेखन की महती आवश्यकता है, परन्तु आज भी स्वतन्त्रता के ३६ वर्ष पश्चात् हमारे विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में भारतीय इतिहास एवं संस्कृतसम्बन्धी पाश्चात्यलेखकों (यथा कीथ, बेबर, मैकडानल, विन्टरनीत्स, मैक्समूलर आदि) के ग्रन्थ परमप्रामाणिकग्रन्थों के रूप में पढाये जा रहे हैं, वे ही संस्कृत साहित्य के इतिहासग्रन्थ, जो पाश्चात्यों ने भारतवर्ष पर शासन करने की दृष्टि से लिखे थे। हमारे विद्याकेन्द्रों में ज्यों-की-त्यों लगभग सौ वर्ष से पढ़ाये जा रहे हैं। हमारे विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों में वे ही अंग्रेजीकाल के सड़े-गले विचार भरे हुए हैं वे उन्हीं भ्रष्ट एवं मिथ्यापाश्चात्यग्रन्थों को पढ़ते हैं और उन्हीं के आधार पर पढ़ाते हैं। न केवल इतिहास के क्षेत्र में वरन् राजनीतिक, मनोविज्ञान, गणित, ज्यामिति, शिल्प या यन्त्रविज्ञान (इंजीनियरिंग) या दर्शनया चिकित्साविज्ञान आदि के क्षेत्र में अभी तक परमप्रामाणिक भारतीयलेखकों या ग्रन्थों का प्रवेश तो क्या स्पर्श तक भी नहीं है। पाठ्यक्रमों के राजनीतिशास्त्र ग्रन्थों में अरस्तू या प्लेटो की बहुधा चर्चा होती है, परन्तु शुक्राचार्य, विशालाक्ष, बृहस्पति, व्यास या चाणक्य का नाममात्र भी नहीं मिलेगा, इसी प्रकार प्राचीनभारतीयगणित, दर्शन या शिल्पविज्ञान कितना ही श्रेष्ठ या उच्चकोटि का हो उसका स्पर्शमात्र भी पाठ्यग्रन्थों में नहीं मिलेगा। इतिहास के क्षेत्र में रामायण, महाभारत और पुराणों को तो कीथादि की कृपा से अछूत ही बना दिया गया है। हमारा मत यह है कि प्राचीनभारत का मूल इतिहासपुराणों में ही लिखा मिलता है। मूलइतिहासपुराणों को स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में अनिवार्य बनाना चाहिए, शासन या शिक्षणसंस्थानों द्वारा इतिहासपुराणों के इतिहाससम्बन्धी संशोधित भाग प्रकाशित होने चाहिएं। पाश्चात्यों के मिथ्याग्रन्थों का पूर्ण बहिष्कार होना चाहिए।

अब हम संक्षेप में भारतीय इतिहास की विकृतियों के कारणों का सिंहावलोकन करेंगे। विकृति के कारणों के परिचय के साथ-साथ ही मुख्य विकृतियों का ज्ञान भी हो जाएगा, फिर भी यह जान लेना चाहिए कि भारतवर्ष तो क्या, विश्व के इतिहास में मुख्यविकृति कालक्रम (Chronology) सम्बन्धी है, यही इतिहासविकृति की नाभि या केन्द्र है। इस ग्रन्थ में मुख्यतः इसी विकृति का निराकरण किया जाएगा, अन्य विकृतियाँ तो आनुषंगिक या इस विकृति की अंगमात्र हैं, अतः प्रधानविकृति के निराकरण से उपांगभूत विकृतियाँ स्वयं निराकृत हो जाएंगी, जैसाकि पतञ्जलिमुनि ने महाभाष्य में लिखा है —

"प्रधाने कृतो यत्नः फलवान् भवति।"

प्रधानविषय में किया गया प्रयत्न फलवान् (सफल) होता है।

प्राचीनभारतीयइतिहास की विकृति के कारण केवल नवीन नहीं है, इसकी विकृति के कारण पर्याप्त प्राचीन भी है। पण्डित भगवद्दत्त ने भारतीय इतिहास की विकृति के केवल नवीन कारणों का "भारतवर्ष का बृहद् इतिहास" प्रथम भाग, अध्याय तृतीय में वर्णन किया है। यद्यपि नवीनकारणों का प्राबल्य है और इतिहासविकृति में उनका अधिक योगदान है, अतः प्रथम, नवीन कारणों की तदनन्तर प्राचीन कारणों की संक्षिप्त विवेचना करेंगे। यहाँ पर इतिहासविकृति के नवीन और प्राचीन कारणों की संक्षिप्त सूची प्रस्तुत की जाती है—

इतिहास विकृति के कारण

नवीन	प्राचीन
१. पाश्चात्यषड्यन्त्र—मैकाले की योजना पाश्चात्यलेखकों के उद्देश्य।	१. प्राचीनपुराणपाठ——भ्रष्टपाठ, क्षेपक, साम्प्रदायिक हठवादिता, विस्मृति आदि।
२. विकासवाद का भ्रामक मतमण्डन, बृहदण्ड (ब्रह्माण्ड) उत्पत्ति, और जीव-सृष्टि का संक्षिप्त इतिहास।	२. नामसाम्यभ्रान्ति—निराकरण।
३. प्रागैतिहासिकवाद।	३. प्राचीनसामग्री का लोप।
४. मिथ्याभाषाविज्ञान—मूलभाषा इण्डोयूरोपियन या अतिवाक्।	४. पुराणों में अद्भुत एवं असम्भव घटनाओं का वर्णन—भ्रामक। शाप, वरदान, आकाशवाणी स्पष्टीकरण।
५. पाश्चात्य कुशिक्षा—अंग्रेजीभाषा का प्रमुत्व।	५. मन्वन्तर और युगसमस्या। दिव्य-वर्ष गणना या देवयुग से भ्रम, राज्यकाल, भविष्य-कथन।
६. आर्यआव्रजन की मिथ्याकथा। लोकमान्यतिलक का भ्रामकमत, आर्य-अनार्य पदमीमांसा, योरोपियनदेशों के दैत्यनाम, अवेस्ता में १६ देश।	६. संवत् समस्या, संवत् बाहुल्य से भ्रम, संवदादि एवं संवादन्त से भ्रम, यथा गुप्तकाल या शककाल, शिलालेखों पर वंशसंवत् या राज्यवर्ष गणना से भ्रम। मालव, कृत, विक्रम शब्द पृथक्-पृथक्।
७. श्रेष्ठविद्या का बाह्यमूलत्व	७. दीर्घायुष्ट्वसमस्या—प्रजापति एवं देवासुरों की आयु, स्वयंभूपद से भ्रम, ब्रह्मापद से भ्रम, प्रचेता।
८. पार्जीटर द्वारा ब्राह्मण-क्षत्रिय परम्परा—मिथ्याधारणा।	८. उपाधिनामों से भ्रम—यथा ब्रह्मा, प्रजापति, व्यास, विक्रम, चरक, शंकराचार्य अश्वपति, जनक जैसे वंशनाम, देशनाम-भ्रम।

नवीन	प्राचीन
९. भारतीय इतिहास के मूलस्रोत, बाह्यलेखों पर अत्यधिक अन्धश्रद्धा-विश्वास—चीनी, यूनानी सिंहली, अरबी-मुस्लिमलेखों पर विश्वास।	९. यवन-समस्या, म्लेच्छादि पदों का स्पष्टीकरण।
१०. पथरियाप्रमाण पर अटूट विश्वास, शिलालेखों के भ्रामकपाठ।	१०. वेदपुराणार्थ—साम्यासाम्य।
११. युगविभाग, कालविभागसमस्या, चन्द्रगुप्तमौर्य सिकन्दर की समकालीनता की मनघड़न्त कहानी, कलिसंवत् पर अविश्वास से सभी तिथियाँ भ्रामक। कल्कि, महावीर, बुद्ध, अशोक, शंकर, शूद्रक आदि की तिथियाँ।	११. वेद में ऐतिहासिक नाम-मीमांसा।
१२. ग्रन्थों और ग्रन्थकारों पर अश्रद्धा—मूललेखक और ग्रन्थों के सतत् संस्करण-सम्भव।	१२. योनिसमस्या—नागसुपर्ण, वानर, मत्स्य, पक्षि-शुकादिनाम, गरुड़, जटायु, तक्षक आदि की समस्या।

अब हम इतिहासविकृति के इन कारणों का विशद विवेचन करेंगे।

पाश्चात्य षड्यन्त्र

मैकालेयोजना के अन्तर्गत पाश्चात्यों द्वारा इतिहासलेखन का उद्देश्य—(पूर्वाभास)—प्रायेण संसार में सदा से ही यह परम्परा या नियम रहा है कि विजेता (व्यक्ति या जाति) विजित की परम्परा (इतिहास) और गौरव को या तो पूर्णतः नष्ट-भ्रष्ट कर देता है या उसमें तोड़-मरोड़ करता है, क्योंकि इसी में उसका स्वार्थ निहित होता है। इस नियम का उदाहरण स्वयं भारतीय इतिहास के प्राचीनतम अध्याय—देवासुरसंघर्ष से दिया जा सकता है। देवों के अग्रज—हिरण्यकशिपु, विप्रचित्ति, प्रह्लाद, बलि आदि की सभ्यता और संस्कृति इन्द्रविष्णुविवस्वानादि देवों के तुल्य और कुछ अर्थों में देवों से भी बढ़कर थी, यथा वेदों का विस्तार, देवों की अपेक्षा असुरों में अधिक ही था—स्वयं देवपूजक ब्राह्मणों ने लिखा है—'कनीयांसि वै देवेषु छन्दांस्यासन् ज्यायांस्यसुरेषु।" (तैत्तिरीयसंहिता ६।६।११)। असुरों की मायाशक्ति (विज्ञान या शिल्प) अत्यन्त उच्चकोटि का था—

तथैते माययाऽद्यापि सर्वे मायाविनोऽसुराः।
वर्तयन्त्यमितप्रज्ञास्तदेषाममितं बलम्॥ (हरिवंश ६।३१)

देवपुरोहित बृहस्पति के पुत्र कच ने असुरगुरु शुक्राचार्य से अमृतसंजीवनीविद्या सीखीथी। इन्हीं असुरों की सभ्यता और संस्कृति का देवों ने नाश किया और आज इन असुरों का इतिहास प्रायेण पूर्णतः विलुप्त है। कुछ असुरनरेशों के नाममात्र के

अतिरिक्त उनके इतिहास के सम्बन्ध में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है।

इसी प्रकार द्वितीय उदाहरण यवन शक हूण एवं मुस्लिम आक्रांताओं का दिया जा सकता है कि जिस देश पर भी यवनादि एवं अरब, तुर्क या मंगोल आक्रांताओं ने आक्रमण किया उसी देश की सभ्यता और संस्कृति को नष्ट किया, यद्यपि वे भारतीय संस्कृति को पूर्णतः नष्ट नहीं कर सके, परन्तु यहाँ पर उन्होंने जो अत्याचार किये वे किसी इतिहासज्ञ से तिरोहित नहीं है, इस सम्बन्ध में श्री पुरुषोत्तम नागेश ओक ने "भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें" पुस्तक में विदेशी आक्रान्ताओं की करतूतों के अनेक उदाहरण दिये हैं कि वे किस प्रकार अपने चाटुकारलेखकों से मिथ्या इतिहास लिखवाते थे। इस सम्बन्ध में प्रोफेसर हरिश्चन्द्र सेठ ने सिकन्दर और पोरसयुद्ध के सम्बन्ध में यूनानीस्रोतों के आधार पर ही सिद्ध किया है कि इस युद्ध में पोरस की विजय हुई थी, परन्तु आज भारतीयपाठ्यपुस्तकों में सिकन्दर को महान् विजेता चित्रित किया जाता है। यही तथाकथित महान् सिकन्दर पोरस से युद्ध में परास्त होकर प्रार्थना करने लगा—"श्रीमान् पोरस ! मुझे क्षमा कर दीजिये। मैंने आपकी शूरता और सामर्थ्य शिरोधार्य कर ली है। अब इन कष्टों को मैं और अधिक सहन नहीं कर सकूंगा। मैं अपराधी हूँ जिसने इन सैनिकों को करालकाल के गाल में धकेल दिया है।"[1] मार्ग में भागते हुए सिकन्दर का सामना क्षुद्रकमालवगण से हुआ, जिस युद्ध में उसे मर्मान्तिक प्रहार लगे और शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हुआ। सिकन्दरसम्बन्धी उपर्युक्त वृत्तान्त से ही सिद्ध है कि विदेशी इतिहासकार किस प्रकार का मिथ्या प्रलाप करते हैं और पोरस द्वारा विजित सिकन्दर को महान् विजेता बताया जाता है।

वर्तमान भारतीय इतिहास की पाठ्य-पुस्तकें इस प्रकार के अपार मिथ्या कथनों से भरी पड़ी हैं। इस सम्बन्ध में यह तथ्य भी परम रोचक प्रतीत होगा कि मुस्लिम आक्रांताओं द्वारा प्राचीनराजभवनों, प्रासादों, वापियों एवं अन्य स्मारकों को किस प्रकार स्वनिर्मित घोषित किया गया है। श्री ओक ने अपनी उपर्युक्त पुस्तक[2] में ऐसे प्राचीन स्मारकों (भवनों) की एक विस्तृत सूची प्रस्तुत की है, जो तथाकथित रूप से मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा निर्मित घोषित किये जाते हैं। इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध उदाहरण कुतुबमीनार और ताजमहल का है कि किस प्रकार मुस्लिमशासकों ने इनके निर्माण का श्रेय ले रखा है। मिथ्या-कथन का यह एक सर्वश्रेष्ठ उदाहरण कहा जा सकता है कि शकारि विक्रमादित्य (शूद्रक) प्रथम और साहसांक विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा निर्मित मिहिरावली (महरौली) और विष्णुध्वज, जिसके निकट लोहे की प्रसिद्ध लाट बनी हुई है, उसको किस प्रकार कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा निर्मित घोषित किया गया। मिहिर नक्षत्र की संज्ञा है, जिससे कि प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर का नाम पड़ा। निश्चय ही यह एक वेध-शाला थी, जो वराहमिहिर की प्रेरणा से शकारि विक्रमादित्य शूद्रक ने सन् ५७ ई०

१. द्रष्टव्य—ईथियोपिक टेक्स्ट्स बाई ई० ए० डब्ल्यू० बैज।
२. ,, भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें—प्रथम अध्याय।

पू० बनाई थी और इसी के निकट लौहस्तम्भ पर चन्द्रगुप्त द्वितीय, विक्रमादित्य (द्वितीय) ने अपनी विजयगाथा अंकित कराई।

इसी प्रकार आगरा में तथाकथित ताजमहल निश्चय ही प्राचीन राजपूत शासकों का महल (प्रासाद) था, जिसको शाहजहाँ ने स्वनिर्मित घोषित करवा दिया। प्राचीनहिन्दूमन्दिरों को तोड़कर मुस्लिमों ने किस प्रकार मस्जिदें बनायीं, यह तथ्य किसी विज्ञ इतिहास पाठक से अज्ञात नहीं है, इसका सर्वाधिक प्रसिद्ध उदाहरण वाराणसी में विश्वनाथ का स्वर्ण मन्दिर है, जिसका एक बड़ा भाग अभी भी मस्जिद के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है। अत: श्री ओक के इस मत से कोई भी वैमत्य नहीं होना चाहिए कि बर्बर, असभ्य और असंस्कृत मुस्लिम आक्रान्ता ऐसे श्रेष्ठ भवनों को बनाना जानते ही नहीं थे, वे केवल ध्वंसकर्त्ता थे, उन आक्रांताओं के पास ऐसे श्रेष्ठभवनों के बनाने का न समय था, न साधन और न ही कौशल। उन्होंने प्राचीन भवनों को ध्वंस ही अधिक किया और उनको विकृत करके उस पर आधिपत्य जमा लिया, वे स्वयं वहाँ के शिल्पियों को बलपूर्वक अपने देशों में ले गये जहाँ उन्होंने भारतीय अनुकृति पर भवनादि बनवाये। अत: कश्मीर के निशात और शालिमार (शालि मार्ग) उद्यान, दिल्ली आगरा के लालकिले, तथाकथित कुतुबमीनार तथा इसी प्रकार के सम्पूर्ण भारतवर्ष में बिखरे हुए शतशः भवनों का निर्माण सहस्रों वर्षों पूर्व भारतीयों ने ही किया था, जिनको उत्तरकालीन मुस्लिम आक्रान्ताओं ने आधिपत्य करके स्वनिर्मित घोषित किया। यह भारतीय इतिहास में महान् जालसाजी (विकृति) का एक बड़ा भारी उदाहरण माना जाना चाहिए और निश्चय ही इस विकृति का निराकरण होना चाहिए। मुस्लिम शासकों के पश्चात् अंग्रेजी शासन के स्तम्भ, मैकाले की योजना के अन्तर्गत, भारतीय इतिहास एवं वाङ्मय के सम्बन्ध में पाश्चात्य षड्यन्त्र की कहानी संक्षेप में लिखेंगे।

पाश्चात्यों को संस्कृतविद्या से परिचय—पाश्चात्यषड्यन्त्रकारी ईसाईलेखकों ने भारतीयसाहित्य विशेषत: संस्कृतवाङ्मय का अध्ययन इसलिए किया कि वे यहाँ के रीति-रिवाजों एवं संस्कृति को जानकर, उस पर प्रहार कर सकें, जिससे कि मैकाले की योजनानुसार भारतीयों को काले रंग का अंग्रेज (ईसाई) बनाया जा सके, जिससे ब्रिटिशशासन भारत में चिरस्थायी हो सके। मैकडानल ने संस्कृत साहित्य का इतिहास (अंग्रेजी में) की भूमिका में स्पष्ट लिखा है—"It is undoubtedly a suprising fact that down to the present time no history of sanskirt literature as a whole has been written in English. For not only does that literature possess much intrinsic merit, but the light it shed on the life and thought of the population of our Indian empire ought to have a peculiar interest for British nation". मैकडानल का तात्पर्य यह है कि उन्होंने 'संस्कृतसाहित्य का इतिहास' इसलिये नहीं लिखा कि इसमें कोई महान् गुण-वत्ता है, बल्कि इसलिए लिखा कि अंग्रेजगण भारतीयों की पोलपट्टी जानकर उन पर चिरस्थायी शासन कर सकें। केवल निहित स्वार्थ के कारण अंग्रेजों ने संस्कृत का

अध्ययन किया। उनका संस्कृतविद्या का ज्ञान एक उस अबोध बालक के समान था, जो प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ता है, अतः उन्होंने संस्कृतविद्या पढ़कर जो निष्कर्ष निकाले वे उसी अबोधबालक के तुल्य अपरिपक्व एवं अधकचरे थे, इनका संकेत आगे के पृष्ठों पर किया जायेगा ही।

पाश्चात्यों में संस्कृत का सर्वप्रथम विधिवत् अध्ययन विलियम्स जोन्स नामक अँग्रेज न्यायाधीश ने १८वीं शताब्दी में किया। सन् १७८४ में उसने संस्कृत विद्या की प्रवृद्धि के लिए 'रायल एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल' की स्थापना की। संस्कृत के प्रारम्भिक अध्येताओं में कालब्रुक, हैमिल्टन, श्लेगल, आगस्ट, विल्हेल्मवान, फ्रेडरिकवान्, ग्रिम, बाप, बार्टलिंग, राथ, रोजन, बर्नफ, मैक्समूलर, बेवर, ओल्डनवर्ग, हिलब्रान्ड, पिश्चल, गेल्डनर, लूडर्स, गाईगर, जैकोबी, मार्टिनहाग, कीलहार्न, ब्यूलर, म्यूर, मोनियरविलियम्स, विलसन, मैकडानल, कीथ, पीटर्सन, ग्रिफिथ, ग्रियर्सन, ब्लूमफील्ड हापकिन्स, गोल्डस्टकर विन्टरनीत्स इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

प्रारम्भ में पाश्चात्यसंस्कृतअध्येता कुछ-कुछ निष्पक्ष थे, परन्तु मैकाले के प्रभाव या सत्तापक्ष के प्रभाव के कारण उन्होंने सत्य विचारों को तिलांजलि देकर षड्यन्त्रपूर्ण मतवाद घढ़ने प्रारम्भ किये और उन्हीं असत्यमतवादों को परिपक्व किया, जो आज तक विश्व में छाये हुए हैं। अब इन उभयविध पक्षों की सारग्राही विवेचना करते हैं।

प्रथम, सत्यपाश्चात्यपक्ष के प्रारम्भिक विद्वानों में थे—आगस्ट विल्हैल्मवान श्लैगल, फ्राइडिश श्लैगल, हम्बोल्ट, शोपेनहावर, जैकालियट, गोल्डस्टुकर, पार्जीटर इत्यादि। ये लेखकगण सत्याग्राही एवं उदारचेता थे। शोपेनावर के विचार उपनिषदों के सम्बन्ध में प्रसिद्ध हैं, उसने लिखा था—'The Production of the highest human wisdom" "ये सर्वोत्कृष्ट मानव बुद्धिकी सृष्टि (रचनायें) हैं।" हम्बोल्ट ने गीता के विषय में लिखा—"It is perhaps the deepest and loftiest thing the world has to show. यह (गीता) संभवतः गहनतम एवं महत्तम ग्रन्थ है जो विश्व में प्रदर्शित करना है।" प्रारम्भिक संस्कृत अध्येतृगण संस्कृतभाषा को विश्व की आदिम और मूलभाषा मानते थे, बाप जैसे फ्रांसीसी लेखक ने संस्कृत को मूलभाषा माना—"The Sanskrit has preserved more perfect than its Kindered dialects" (Language, p. 48, by O. Jesperson). "संस्कृत में (ग्रीक, लैटिन आदि की अपेक्षा) मूलरूप अधिक सुरक्षित है।" प्रारम्भिक पाश्चात्य लेखकों के भावों को विन्टरनीत्स ने इस प्रकार व्यक्त किया है—"जब भारतीय वाङ्मय पश्चिम में सर्वप्रथम विदित हुआ तो विद्वानों की रुचि भारत से आने वाले प्रत्येक साहित्यिकग्रन्थ को अति प्राचीनयुग का मानने की थी। वे भारत पर इस प्रकार की दृष्टि डाला करते थे कि वह मनुष्यजाति या मानवसभ्यता

का मूल या प्रेङ्खण (झूला) है।[1] फ्राईडिश श्लैगल ने इन्हीं भावों को अभिव्यक्त किया—"He expected nothing less from India than ample information on the history of the primitive world, shrouded hitherto in utter darkness[2]" "वह भारत से एक महती आशा रखता है कि संसार का पूर्ण तिमिरावृत इतिहास भारत द्वारा ज्ञात होगा।" श्लेगल की आशा अकारण नहीं थी, लेकिन षड्यन्त्रकारी पाश्चात्यलेखकों ने यथा मैक्समूलर, कीथ, बेवर, विन्टरनीत्स इत्यादि ने उसकी आशा पर तुषारापात कर दिया। अब इस आशा को पुनरुज्जीवित करके संसार के सत्य इतिहास को प्रकाशित करना है, यह प्रयत्न इस आशा का प्रारम्भ है।

जैकालियट नाम के फ्रेञ्च विद्वान् न्यायाधीश ने १८६९ में 'भारत में बाइबिल' नामकग्रन्थ में ऐसे ही उदात्तभाव लिखे जो सत्यभाव थे—"प्राचीन भारत, मनुष्य जाति के जन्मस्थान तेरी जय हो। पूजनीय और समर्थ धात्री, जिसको नृशंस आक्रमणों की शताब्दियों ने अभी तक विस्मृति की धूल के नीचे नहीं दबाया, तेरी जय हो। श्रद्धा, प्रेम, कविता और विज्ञान की पितृभूमि तेरी जय हो। क्या, कभी ऐसा दिन आयेगा जब हम अपने पाश्चात्य देशों में तेरे अतीत काल की सी उन्नति देखेंगे।"[3]

इस प्रकार के निष्पक्ष, सत्य, उदात्त और प्रेरक भाव षड्यन्त्रकारी पाश्चात्यों को अच्छे नहीं लगे, क्योंकि इन सत्यभावों को मानने से भारत का गौरव बढ़ता और अँग्रेजों द्वारा भारत को ईसाई बनाने, चिरशासन करने और अँग्रेजीसंस्कृति के प्रसार में बाधा पड़ती, अतः उन्होंने विपरीत और असत्यविचारों का आश्रय लिया। अनेक कारणों से मैक्समूलर यूरोप में महान् प्राच्य-विद्या-विशारद (Indologist) माना जाता था, परन्तु वह प्रच्छन्नरूप से मैकाले का भक्त और अँग्रेजीसाम्राज्य का महान् स्तम्भ था। सन् १८५५, दिसम्बर २८ को मैक्समूलर-मैकाले भेंटहुई। इस समागम के अनन्तर मैक्समूलर ने अपनी विचारधारा भारत के प्रति पूर्णतः परिवर्तित कर ली जैसा कि उसने स्वयं लिखा है—"(मैकाले से मिलने के पश्चात्) मैं एक उदासीनतर एवं बुद्धिमत्तर मनुष्य के रूप में आक्सफोर्ड लौटा।[4]" स्पष्ट है कि क्या षड्यन्त्र रचा गया।

---

1. When Indian literature became first known in the west, people were inclined to ascribe a hoary age to every literary work hailing from India. They used to look upon India as something like the Cradle of mankind or at least of human (lectures in Calautta University, p. 3).
2. A senond selection of Hymns from Rigveda P x) by Zimmerman.
3. 'भारत में बाइबिल'। सन्तराम कृत अनुवाद, प्रथम अध्याय।
4. "I went back to Oxford a sadder man and a wiser man" (C, H. I. Vol VI (1932).

विलियम जोन्स

अँग्रेजों द्वारा भारतीय इतिहास में अन्वेषण का श्रीगणेश ही एक महान् भ्रम के साथ हुआ। यह खोज थी जोन्स द्वारा सर्वप्रथम फरवरी, १७९३ में, मैगस्थनीज के अस्पष्ट लेखों के आधार पर चन्द्रगुप्तमौर्य और सिकन्दर की समकालीनता की कहानी घढ़ना। इस मनघड़न्तकहानी का प्रबल खण्डन आगे करेंगे, परन्तु इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि पाश्चात्यों का प्रारम्भिक संस्कृतज्ञान या इतिहास ज्ञान कितना अपरिपक्व, मिथ्या एवं थोथा था।

म्यूर और बोर बोडन आसन्दी के प्रोफेसर विलसन, मोनियर विलियम्स और मैकडानल—भारत में साम्राज्य को चिरस्थायी बनाने के साथ, अंग्रेजों का एक अन्य प्रमुख उद्देश्य था भारतीयों को ईसाई बनाना। परन्तु, इसके लिये उन्हें भारतीय धर्म, दर्शन, साहित्य और संस्कृति को ईसाईसंस्कृति की अपेक्षा हीनतर सिद्ध करना अपेक्षित था। आरम्भ में ही पाश्चात्यलेखकों को आभास हो गया था कि भारत की संस्कृतविद्या अत्यन्त उच्चकोटि की है, आरम्भ में वे संस्कृतभाषा को विश्व की मूल और सर्वश्रेष्ठ भाषा मानते थे, परन्तु षड्यन्त्रकारियों ने देखा कि ऐसा मानने पर तो लेने के देने पड़ जायेंगे, उल्टे योरोपियन ईसाई ही श्रेष्ठ धर्म (वैदिकधर्म) और श्रेष्ठभाषा (संस्कृत) को न अपना लें। इससे योरोप के धर्मान्ध ईसाई संरक्षक भयभीत हो गये। फ्रैडरिक बाडयर नामक पाश्चात्य लेखक ने इस प्रकार उल्लेख किया है—"बाइबिल के संरक्षक इस आशंका से काँप गये कि संस्कृत की महत्ता बाबेल के मीनार को धराशायी कर देगी।[1]"

आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में कर्नल बाडन ने बाडन आसन्दी की स्थापना इसी हेतु से की थी कि हिन्दुओं को ईसाई बनाया जाय। ऐसा आसन्दी के प्रथम प्रो० मोलियर विलियम ने लिखा है।[2] प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ म्यूर द्वारा संस्कृतमूलपुस्तकों के उद्धरणसंग्रह एवं अन्यकार्यों का भी यही उद्देश्य था। वह हिन्दूधर्म के खण्डन के लिये प्रतियोगितायें (भाषण) आयोजित करवाता था, जिसके द्वारा ईसाईकरण का मार्ग सरल हो सके। बोडन आसन्दी का प्रथम संस्कृतप्रोफेसरविलसन इस उद्देश्य से विश्व-

---

1. Custodians of the Pentateuch were alarmed by the prospect that Sanskrit would bring down the Tower of Babel." (The of language p. 174, by F. Bodmer).
२. मैं इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ कि मैं इस बोडन आसन्दी का द्वितीय धारक हूँ, और इसके संस्थापक कर्नल बोर्डन ने स्पष्ट रूप में अपनी मरणोपरान्त इच्छा में व्यक्त किया है कि मेरा (दि० १५ अगस्त १९११ में) इस विद्यालय को विपुल दान देने का उद्देश्य है कि ईसाई धर्मशास्त्रों का संस्कृत में अनुवाद किया जाये जिससे कि भारतीयों को ईसाई बनाने का कार्य बढ़ सके। इंगलिश-संस्कृत डिक्शनरी, मोनियर विलियम्स, पृ० ९, सन् १८९९)।

विद्यालय में व्याख्यान देता था।[1] मैकडानल का विचार पहले ही लिखा जा चुका है।

योरोपियन और अमेरिकन मिशनरियों द्वारा विविध प्रलोभनों द्वारा भारतीयों को ईसाई बनाने का विशाल उपक्रम तो अंग्रेजीशासन के आरम्भकाल से ही जोर-शोर से चल ही रहा था, यहाँ हमारा उद्देश्य उपर्युक्त विवेचन द्वारा यह सिद्ध करना है कि पाश्चात्यों के संस्कृत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य भी साम्राज्यदृढ़ीकरण एवं भारत का ईसाईकरण ही था। इसी उद्देश्य से वे विद्या और इतिहास के क्षेत्र में अज्ञानमूलक ऊँटपटाँग मतों का प्रवर्तन कर रहे थे। अतः पाश्चात्यों द्वारा भारतीय इतिहास में सत्य की खोज करना मुख्य उद्देश्य नहीं था। इस सम्बन्ध में कुछ और प्रसिद्ध पाश्चात्यों के मन्तव्य आलोच्य हैं।

मैक्समूलर का तथाकथित भारतप्रेम—प्रायः संस्कृतज्ञ भारतीय विद्वान् मैक्समूलर को महान् भारतप्रेमी, सहृदय, भारत प्रशंसक, अतिविद्वान् न जाने क्या-क्या समझते हैं, परन्तु वास्तव में मैक्समूलर कितना धूर्त, अज्ञानी एवं कट्टर भारतविरोधी था, वह इसके निम्नलिखित कथनों से ज्ञात होगा। उसने अपने एक पत्र में अपनी पत्नी को लिखा—"वेद का अनुवाद और मेरा (सायणभष्यसहित) ऋग्वेद का संस्करण, भविष्य में भारत वर्ष के भाग्य पर दूरगामी प्रभाव डालेगा...यह कैसा है, गत तीन सहस्रवर्षों में उद्भूत बातों को उखाड़ने का एकमात्र उपाय है।"[2] वेद के सम्बन्ध में उसकी कैसी निकृष्ट धारणा थी, यह उसके निम्न दो कथनों से प्रकट होगी। उसके अज्ञान, मतिभ्रम और मतान्धता के ये निकृष्टतम उदाहरण—(१) "क्या तुम बता सकते हो कि संसार में धर्मग्रन्थों में सर्वश्रेष्ठ कौन-सा है, तो मैं कहूँगा नई बाइबिल का एक नवीन रूपान्तर और संस्करण कहा जा सकता है, इसके पश्चात् पुरानी बाइबिल, बौद्ध त्रिपिटिक और सबसे अन्त में वेद का स्थान है।"[3] वेद के सम्बन्ध में उसकी धारणा एक अन्य कथन से उद्घाटित होगी।

(२) "वैदिक सूक्तों की एक बड़ी संख्या अति बालिश (मूर्खतापूर्ण) जटिल (कठिन) और सामान्य कोटि की है।[4]"

मैक्समूलर की स्वयोग्यता कैसी थी, यह इस श्लोकार्ध के अर्थ को न समझने से ज्ञात होगी—

"स्मृतेश्च कर्त्ता श्लोकानां भ्राजमानां च कारकः" वह इसका अर्थ करता है—

1. These lectures were written to help candidates for a prize of £ 200 given by John Muir a well known old Hailebury man and great Sanskirt Scholor—for the best refutation of Hindu rilegious system (Eminent orientalists, p. 72).
2. Life and letter of Frederic Max Muller.
3. Life and letters of F. Max Muller.
4. A Large number of Vedic hymns are childish in extreme, tedious, low, common place" (Chips from a Jerman workshop, p. 27 by F. Max Muller).

Bhrajamana is unintelligible, it may be a Parshada[1]" भ्राजमान शब्द अबोध्य है, यह एक पार्षद हो सकता है।" इस श्लोक का शुद्धपाठ है—"स्मृतेश्च कर्त्ता श्लोकानां भ्राजनाम्नां च कारकः।"

कात्यायन ने स्मृति के साथ भ्रजनाम के श्लोकों की रचना की थी। यह षड्गुरुशिष्य ने कात्यायनऋक्सर्वानुक्रमणीवृत्ति में लिखा है।

उपर्युक्त उद्धरणों से ही पाश्चात्यों के वास्तविक मन्तव्यों को समझा जा सकता है। अतः उनके द्वारा रचित किसी इतिहासग्रन्थ को प्रामाणिक एवं विश्वसनीय मानना हम भारतीयों की महान् मूर्खता एवं अन्धश्रद्धा ही सिद्ध होगी। अत. सत्य के उद्घाटन के लिये पाश्चात्य मतों का खण्डन एवं इतिहासपुनर्लेखन अनिवार्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

विकासवाद का भ्रमजाल

प्रायः मूर्ख से मूर्ख मनुष्य या बालक भी यही सोचेगा कि लघु वस्तु से महान् वस्तु, क्षुद्रतम जीव से विशालकाय जीव विकसित हुये, अतः चार्ल्स डार्विन ने जब १८८१ में जीवों के विकासवाद का प्रतिपादन किया तो वह कोई बहुत महान् बुद्धिमत्ता का काम नहीं कर रहा था। यह अत्यन्त साधारणबुद्धि किंवा सृष्टि एवं इतिहास से पूर्णतः अनभिज्ञ एक सामान्य व्यक्ति की कोरी कल्पनामात्र थी, परन्तु उसके इस विकासवाद के सिद्धान्त को समस्त विश्व में, विशेषतः विज्ञानजगत् में, आरम्भिक विरोध के बावजूद एक बड़ा भारी क्रान्तिकारी अनुसन्धान माना गया और इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज समस्त बुद्धिजीवीवर्ग पर, इस अतिभ्रामक, घोर अवैज्ञानिक, मूर्खतापूर्ण मतान्धसिद्धान्त का इतना प्रबल प्रभाव है कि अत्यन्त धार्मिक ईश्वरवादी आस्तिक या अति बुद्धिमान् आध्यात्मिक विद्वान् एवं योगी भी विकासवाद को ईश्वर से भी अधिक परमसत्य के रूप में आँख मूँदकर अज्ञानवश मानता है।

विश्व इतिहास, साथ-साथ भारतवर्ष के इतिहास में विकृतियों का एक प्रमुख कारण विकासवाद या सततप्रगतिवाद का भ्रामक मत है। इसके कारण अनेक सत्य-सिद्धान्तों का हनन हुआ और मनुष्य अन्धकार के महान् गर्त में गिर गया और इस अन्धतम अज्ञान से इसका उद्धार तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि मनुष्य सत्य जानकर इस अवैज्ञानिक एवं असत्य को नहीं छोड़ देता। जैसा कि पहिले संकेत किया जा चुका है कि डार्विन कोई बड़ा भारी विद्वान् या वैज्ञानिक नहीं था, वह केवल जीव-जंतुओं के विषय में सूचना एकत्र करके अनेक देशों में घूमता रहा, और उसने अनेक प्रकार के जीव-जन्तु देखे, बस इसी अनुसन्धानमात्र से उसने विकासवाद का सिद्धान्त घड़ दिया। परन्तु यह एक परीक्षित नियम या सिद्धान्त है कि कोई भी व्यक्ति एक विषय का ज्ञाता होकर ही निश्चितसिद्धान्तों का या कार्यनिश्चय का निर्णय नहीं कर सकता—

'एकं शास्त्रमधीयनो न याति शास्त्रनिर्णयम्।'

---

1. A History of Ancient Skt. Literature p. 235).

जिस व्यक्ति को ज्योतिष, गणित, योगविद्या, धर्मशास्त्र, विधिशास्त्र या सृष्टिविज्ञान का ज्ञान नहीं हो, वह इन विषयों में या विज्ञान में निर्भ्रान्ति निर्णय कैसे ले सकता है। आधुनिक वैज्ञानिकों की सबसे बड़ी दुर्बलता (या अज्ञान ?) यही है कि वे प्राय: अपने विषय को छोड़कर न तो दूसरे विषय की जिज्ञासा करते हैं और न प्राय: अन्य विषयों को जानते हैं। इसीलिये उनके सिद्धान्त केवल मतवाद या वितंडावाद बनकर रह जाते हैं, विज्ञान और इतिहास के क्षेत्र में यही प्रयोगवाद चल रहा है जिससे मनुष्यजाति की ज्ञानवृद्धि के साथ अज्ञानवृद्धि भी हो रही है।

डार्विन प्रतिपादित विकासमत का, विशेषत: मनुष्य बन्दर से विकसित हुआ इस विचार का विरोध आरम्भ से ही हुआ। अब कुछ वैज्ञानिकों ने, विशेषत: अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों ने यह मत व्यक्त किया है कि जीव या मनुष्य पृथिवी पर किसी दूसरे लोक या सुदूर ग्रह से आकर बसे। इसी वर्ष १९८२, जनवरी में प्रसिद्ध अन्तरिक्ष वैज्ञानिक सर फ्रायड हायल ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित करके आश्चर्य और संशय में डाल दिया कि किन्हीं अन्तरिक्षवासियों ने सुदूर प्राचीनकाल में पृथिवी पर जीवन को स्थापित किया। १८ जनवरी में, हिन्दुस्तान टाइम्स में जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई उसका अंश, डार्विन के मत का खोखलापन दिखाने के लिये आवश्यक रूप से उद्धृत किया जा रहा है—"Life on earth may have been spawned by intelligent beings millions of years ago in another part of the universe.

This is a startling new theory advanced by Sir Fred Hoyle, one of Britain's leading astronomers to challenge traditional beliefs that man was the result of divine creation or according to Darwin's theory, the product of evolution, Sir Fred told an audience of Scientists at London's Royal Institution recently that the Chemical structures of life were too complicated to have arisen through a series of accidents, as evolutionists believed. Biomaterials, with their amazing measure of order, must be the outcome of intelligent design, he said.

"The design may have been the work of a life from the universe's remote past which doomed by a crisis in its own environment, wanted to preseve life in another shape, he added.

The odds againt arriving at this pattern by accidental process imagined by Darwin wereenormous, Similar to those against throwing five millions consecutive sixes on a dice, he said, He could think of no more plausible explanation for the existence of life on earth in its present form than planning by intelligent beings, he added.

The theory is latest bomb shell dropped by the 66 year old former proffessor of astronomy and experimental philosophy at Cambridge University." जीवन की स्थापना, पृथ्वी पर, करोड़ों वर्ष पूर्व, ब्रह्माण्ड के किसी अन्य भाग में निविष्ट बुद्धिमान प्राणियों ने की होगी।" यह एक आश्चर्यजनक

नवीन सिद्धान्त, ब्रिटेन के एक सर्वोच्च अन्तरिक्षवैज्ञानिक सर फ्रायड ह्यायल ने प्रस्तुत किया है, जिसमें परम्परागत मनुष्योत्पत्ति के दैवीसिद्धान्त और डार्विन के विकासवाद को चुनौती दी गई है। सर फ्रायड ने एक वैज्ञानिकगोष्ठी में, जो रायल इन्स्टीट्यूट, लन्दन में आयोजित की गई, इस सिद्धान्त का रहस्योद्घाटन किया कि जीवन की रासायनिक संरचना इतनी जटिल है, कि वह क्रमिक आकस्मिक घटनाओं से संभूत नहीं हो सकती, जैसा कि विकासवादी विश्वास करते हैं।

उन्होंने बताया कि जैवपदार्थ इस अद्भुत रूप से शरीरों में संग्रथित हैं कि यह केवल बौद्धिक कौशल या योजना का परिणाम हो सकता है अर्थात् अज्ञानता या मूर्खता से या यदृच्छा जीवोत्पत्ति नहीं हो सकती।

यह जीवनयोजना, ब्रह्माण्ड के किसी ऐसे भाग के बुद्धिमान् प्राणियों की हो सकती है, जो सुदूर अतीत में किसी संकट के कारण विनाश को प्राप्त हो गये हों और जो जीवन को किसी रूप में संरक्षित रखना चाहते थे। डार्विन द्वारा कल्पित आकस्मिक घटनाक्रम के विरुद्ध पर्याप्त कारण हैं। जैसे कि पचास लाख क्रमबद्धों को एक पासे में प्रक्षेप करने के समान हैं। पृथिवी पर जीवन के अस्तित्व की और कोई सम्भव व्याख्या प्रतीत नहीं होती कि यह बुद्धिमान् प्राणियों की योजना का परिणाम है।

सर फ्रायड ह्यायल के एक सहयोगी वैज्ञानिक लंकानिवासी विक्रमसिंह ने विकासवाद के खण्डन में उनके सहयोग से तीन पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें एक प्रसिद्ध पुस्तक है 'Evolution from Space'। इस पुस्तक में उन्होंने जैसा कि पुस्तक के नाम से प्रकट है, यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति आकस्मिक (Accidental) नहीं है, वरन् ब्रह्माण्ड के ध्रुवसिद्धांतों के अनुसार हुई है। ६ सितम्बर, १९८१ के हिन्दुस्तानटाइम्स में ही ज्योफ्रीलेनी नामक टिप्पणीकार ने इन दोनों वैज्ञानिकों के जीवोत्पत्तिसिद्धान्त का संक्षेप में 'God alone knows' शीर्षक से परिचय दिया। हिन्दी के हिन्दुस्तान में 'विकास या लम्बी छलाँग' शीर्षक इस विषय पर टिप्पणी छपी। तदनुसार "उनका कहना है कि जीवों का विकास धीरे-धीरे न होकर बीच-बीच में लम्बी छलाँग लगाकर हुआ है।" इन वैज्ञानिकों के अनुसार ईश्वर क्या है, ब्रह्माण्ड ही ईश्वर है—"And what is God ? God they suggest is the universe" यह सिद्धान्त प्राचीन भारतीय सिद्धान्त के निकट ही है— जैसा कि वेदों और उपनिषदों में बारम्बार घोषित है—

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचित् जगत्यां जगत्।" (ईशोपनिषद्)
"पुरुष एवेदं सर्वम्" (पुरुषसूक्त)
"हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे" (ऋग्वेद)
"आकाशप्रभवो ब्रह्मा" (अथर्ववेद)
"ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव" (मुण्डकोपनिषद्)
प्रजापतिर्वा इदमेकं आसीत् (ताण्ड्यब्राह्मण १६।१।१)
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः।"
(ऋग्वेद १०।८२।६)

ब्रह्म, ब्रह्माण्ड का ही अपर नाम है, वह ब्रह्म ब्रह्माण्ड को रचकर उसमें प्रवेश कर गया—

तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत (तै० उपनिषद्)

यही तथ्य श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि सर्वभूत पदार्थ ही ईश्वर हैं, उससे पृथक् नहीं—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ (गीता १८।६१)

अन्तरिक्ष वैज्ञानिक भलीभाँति जानते हैं कि समस्त ब्रह्माण्ड किस तेजी से नियमपूर्वक भ्रमण कर रहा है ।

उपर्युक्त दोनों वैज्ञानिकों (हायल और विक्रमसिंह) के सिद्धान्त, डार्विन के विकासमत का खण्डन करते हैं और भारतीयसृष्टिसिद्धान्त के निकट हैं, परन्तु फिर भी अपूर्ण ही है । यथा सर फ्रायड हायल ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि ब्रह्माण्ड के किन्हीं बुद्धिमान् प्राणियों ने पृथ्वी के प्राणियों को रचा । इसमें अनवस्था दोष है, क्योंकि ब्रह्माण्ड के उन बुद्धिमान् जीवों की रचना के लिए और अधिक बुद्धिमान् प्राणियों की कल्पना करनी पड़ेगी, इस अवस्था का कहीं अन्त नहीं होगा । अतः सृष्टि का भारतीयसिद्धान्त ही सत्य है, जैसा कि आगे प्रतिपादित किया जायेगा ।

डार्विन ने जीवोत्पत्ति पर एकांकी दृष्टि से विचार किया । जीवोत्पत्ति से पूर्व ब्रह्माण्डसृष्टि पर विचार करना अनिवार्य है । जीव, ब्रह्माण्ड से पृथक् नहीं हैं, जो सिद्धान्त ब्रह्माण्डसृष्टि के हैं वे ही जीवोत्पत्ति पर लागू होंगे । परन्तु डार्विन और तदनुयायी जीवोत्पत्ति के सम्बन्ध में किसी नियम को नहीं मानते, वे जीवोत्पत्ति को आकस्मिक घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं । इस प्रकार के अनियम को ही वे नियम बनाते हैं । यह पूर्णतः असम्भव और अवैज्ञानिक विचारपद्धति है । अतः जीवोत्पत्ति के नियमों से पूर्व ब्रह्माण्डसृष्टि पर विचार अनिवार्य हैं ।

ब्रह्माण्ड सृष्टि के नियम

'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' इस उक्ति के अनुसार जो नियम एक पिण्ड या शरीर के लिए है, वही नियम सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। आधुनिक वैज्ञानिक भी यह समझने लगे हैं कि यह अनन्त ब्रह्माण्ड यों ही आकस्मिकरूप से उत्पन्न नहीं हो गया है, यह ब्रह्माण्ड भी किसी जीव या मनुष्य के समान जन्म लेता है और मृत्यु को प्राप्त होता है । अनन्तकोटि नीहारियों के अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड (नक्षत्रादि) अपने निश्चित स्थान पर स्थित होकर नियमित रूप से भ्रमण कर रहे हैं, अतः वेद का यह सिद्धान्त सिद्ध है—

'धाता यथापूर्वमकल्पयत्'

परमात्मा या परमपुरुष ने पूर्वसृष्टि के अनुसार ही नवीनसृष्टि बनाई । बिना नियम के तो यह ब्रह्माण्ड एक क्षण भी स्थिर नहीं रह सकता । बिना नियम के घूमने पर आकाशीय पिण्ड परस्पर टकराकर नष्ट हो जायेंगे, इसीलिए पुराण में कहा गया

है—हमारी शिशुमार (सर्पाकार) संज्ञक नीहारिका (ब्रह्माण्ड) की पूँछ में ध्रुवनक्षत्र स्थित है जो समस्त नक्षत्रमण्डलों को घुमाता है—

प्रश्न था—भ्रमन्ति कथमेतानि ज्योतींषि दिवमण्डलम्।
अव्यूहेन च सर्वाणि तथैवासंकरेण वा।।
उत्तर मिला—ध्रुवस्य मनसा चासौ सर्पते ज्योतिषां गणः।
सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहैः सह।
वर्षा घर्मो हिमं रात्रिः संध्या चैव दिनं तथा।
शुभाशुभं प्रजानां ध्रुवात्सर्वं प्रवर्तते।।
(ब्रह्माण्डपुराण, २२ अध्याय)

हमारी शिशुमारनीहारिका (सृष्टि-ब्रह्माण्ड) सर्पाकार है और सर्पाकाररूप में ही भ्रमण करती है और ध्रुव इसका अध्यक्ष है, जो इसका संचालक है, ध्रुव की अध्यक्षता में हमारी सृष्टि (नीहारिका कश्यप या शिशुमार) के समस्त कार्य सम्पन्न होते हैं, हमारी नीहारिका के समान अनन्त नीहारिकायें अनन्त आकाश में है, अतः इस सबका नियामक या विधाता कितना अप्रतिम होगा, यह अगम्य और अतर्क्य है। अतः मनुष्य यह मानने के लिए बाध्य है कि यह विश्व ब्रह्माण्ड नियमानुसार चल रहा है, तब जीवसृष्टि बिना नियम के कैसे हो सकती, जबकि डार्विन जीवसृष्टि को आकस्मिक मानता था।[1] क्योंकि उस समय पाश्चात्य अन्तरिक्षविज्ञान न तो इतना उन्नत था, अतः विचारे डार्विन को सृष्टि या ब्रह्माण्ड के नियम कहां ज्ञात हो सकते थे, इसीलिए उसने जीवनसृष्टि को यादृच्छिक मान लिया। उसने अपने सामान्यज्ञान के आधार पर ही विकासवाद की कल्पना कर ली, जो किसी बुद्धिमत्ता का कार्य नहीं था, यह तो अज्ञान या सामान्यज्ञान से उत्पन्न एक साधारणप्रक्रिया थी, जैसा कि पुराणकार ने कहा है, कि प्रायेण सामान्यजन ब्रह्माण्ड को प्रत्यक्ष देखते हुए भी संमोहित (अज्ञानावृत्त) होता है—

भूतसंमोहनं ह्येतद्वदतो मे निबोधत।
प्रत्यक्षमपि दृश्यं च संमोहयति यत्प्रजाः।। (ब्र०पु०)

डार्विन जैसे संमोहित (अज्ञानी) पुरुष को सत्य का ज्ञान कैसे हो सकता है, जिस सत्यज्ञान के अल्पांश को मरीचि कश्यप, वशिष्ठ, पुलस्त्य जैसे ऋषि सहस्रों वर्षों के कठोरज्ञान या साधनायोग और तपस्या के द्वारा जान सके।

पाश्चात्यों ने अज्ञानवश सौरमण्डल या ब्रह्माण्डसृष्टि के सम्बन्ध में अनेक मत घड़े हैं और ब्रह्माण्ड की आयु के सम्बन्ध में चार-पाँच सहस्र वर्ष से ८० अरब वर्ष तक के अनुमान किये हैं। कोपरनिकस से पूर्व (१४७ ई०) तक पाश्चात्य जगत् को पृथिवी के गोलत्व के विषय में भी ज्ञान नहीं था और न्यूटन से पूर्व उन्हें गुरुत्वाकर्षणशक्ति का ज्ञान नहीं था और संकर्षणबल का अभी भी ज्ञान नहीं है। परन्तु वेदों में 'चिरकाल

---

१. कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्याः। (श्वे० उप०)
सृष्टिसम्बन्ध में डार्विन यदृच्छा (आकस्मिता) को मानता है।

से सभी ग्रह, नक्षत्र आदि गोल (परिमण्डल) हैं', ऐसा ज्ञात था—"परिमण्डल आदित्यः, परिमण्डलः चन्द्रमाः परिमण्डला द्यौः, परिमण्डलमन्तरिक्षम् परिमण्डला इयं पृथिवी।" (जैमिनीयब्राह्मण १।२५७)। ये सब पृथिव्यादि घुमते हैं, इसका उल्लेख इस प्रकार है—

इमे वै लोकाः सर्पा यद्धि किं च सर्पत्येष्वेव
तल्लोकेषु सर्पति (श० ब्रा० ७।४।१।२७)
'इयं (पृथिवी) वै सर्पराज्ञी' (ऐ० ब्रा० ५।२३)
संकर्षणमहमित्यभिमानलक्षणं य संकर्षणमित्याचक्षते।
यस्येदं क्षितिमण्डलं भगवतोऽनन्तमूर्तेः सहस्रशिरसः एकस्मिन्निव
शीर्षाणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते। (भागवत ५।२५।१३)

यह भूमण्डल संकर्षण बल से ही अनन्ताकाश में स्थिर होकर भ्रमण कर रहा है।

पाश्चात्यों ने ब्रह्माण्ड या सौरमण्डल की उत्पत्ति के सम्बन्ध में निम्न कल्पनाओं की उद्भावना की है। (१) नेबुलरसिद्धान्त, (२) टाईडल सिद्धान्त, (३) प्लेनेटियल सिद्धान्त, (४) युग्मतारासिद्धान्त, (५) फिशनसिद्धान्त, (६) सेफीडसिद्धान्त, (७) नीहारिकाभेदसिद्धान्त, (८) वैद्युतचुंबकत्वसिद्धान्त, (९) नौवासिद्धान्त और (१०) बिग बैंग या महाविस्फोट सिद्धान्त।

इनमें अन्तिम बिगबैंगसिद्धान्त प्राचीन सनातन भारतीय सिद्धान्त के निकट है, जिसके अनुसार सर्वप्रथम एक बृहदण्ड (ब्रह्म = बड़ा = बृहत्) या महदण्ड उत्पन्न हुआ, जिससे समस्त लोक उत्पन्न हुए। यदि इस बृहदण्ड से हमारी नीहारिका (कश्यप मारीच) से तात्पर्य है तो इसकी कोई सीमा (अन्त = सान्त) मानी जा सकती, यदि आकाश की समस्त नीहारिकायें इसी बृहदण्ड से उत्पन्न हुईं तो यह ब्रह्माण्ड अनन्त, अगम और अगोचर हैं—'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'' आंगस्टाइन ने ब्रह्माण्ड को सान्त

---

१. (क) निष्प्रभेऽस्मिन् निरालोके सर्वतस्तमसावृत्ते।
बृहदण्डमभूदेकं प्रजानां बीजमव्ययम्॥
युगस्यादौ निमित्तं तन्महद्दिव्यं प्रचक्षते।
यस्मिन् संश्रूयते सत्यं ज्योतिर्ब्रह्म सनातनम्॥
अद्भुतं चाप्यचिन्त्यं च सर्वत्र समतां गतम्।
अव्यक्तं कारणं सूक्ष्मं यत् तत् सदसदात्मकम्॥
यस्मात् पितामहो जज्ञे प्रभुरेकः प्रजापतिः।
आपो द्यौः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिशस्तथा॥
(महाभारत १।१।२९,३२,३६)

(ख) हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् (ऋ० १०।१२।१)

(ग) आपो हवा इदमग्र सलिलमेवास...।
तासु तपस्तप्यमानासु हिरण्यमाण्डं संबभूव। (श० ब्रा० ११।१।६)

(घ) पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च।
महदादयो विशेषान्ता अण्डमुत्पादयन्ति ते॥ (वायुपुराण ४।७४)

माना है, परन्तु सान्त हो तो भी मनुष्य के लिए ब्रह्म या ब्रह्माण्ड अगम, अनन्त और अगोचर ही है। इस अन्तराकाश (खाली स्थान) का अन्त कहाँ है, इसको मनुष्य बुद्धि सोच ही नहीं सकती।[1] इसीलिए परमदार्शनिक याज्ञवल्क्य ने, गार्गी के यह पूछने पर कि ब्रह्मलोक किसमें स्थित है, इस अतिप्रश्न का निषेध किया था।[2]

बृहदण्ड की उत्पत्ति अकारण ही नहीं होती, इसमें परमपुरुष की इच्छा= 'धाता यथापूर्वमकल्पयत्' सिद्धान्त था। ब्रह्माण्ड का एक रजोमात्र (धूलकण) तुल्य अंश यह पृथिवी है और इस पृथिवी का जन्म, आयु और मृत्यु निश्चित हैं। यह ब्रह्माण्ड और पृथिवी कितने बार उत्पन्न हुए और कितने बार नष्ट हुए, इस तथ्य को कौन जान सकता है। वर्तमान पृथिवी पर भी न जाने कितनी बार जीवसृष्टि या मानवसृष्टि और प्रलय हुई है इसका ठीक-ठीक विवरण ज्ञात नहीं है आधुनिक वैज्ञानिकों की प्राय: यह धारणा है कि पृथिवी पर यह मानवसृष्टि प्रथम बार (विकासवाद के अनुसार) लगभग ५० लाख वर्ष पूर्व हुई होगी। परन्तु यह प्रमाणशून्य मिथ्या धारण ही है। पृथिवी की ठीक-ठीक आयु निश्चित ज्ञात नहीं है, परन्तु पाँच अरब वर्ष तक अनुमानित की गई है। इस दीर्घावधि में पृथिवी पर सूर्यातप या हिम से न जाने कितनी बार जीव उत्पन्न और नष्ट हुए यह अज्ञात है। परन्तु आधुनिक वैज्ञानिकों की मिथ्याधारणा के विपरीत, इस तथ्य के प्रमाण मिले हैं कि जीवों के साथ मानवसभ्यता का भी पृथिवी पर अनेक बार उदय और लोप हुआ है। अभी तक पृथिवी पर सूक्ष्मजीवों का प्रादुर्भाव साठ करोड़ पूर्व तक का ही माना जाता था, परन्तु अभी हाल में खोजों से पृथिवी पर जीवन का अस्तित्व साढ़े तीन अरब वर्ष पूर्व तक का माना जाने लगा है[3] और यह जीवास्तित्व न जाने और कितना और प्राचीनतर सिद्ध हो जाये। अत: पृथिवी की आयु अनेक अरबों वर्ष है, कुछ भारतीय विद्वान् मन्वन्तरों के आधार पर पृथिवी की आयु दो अरब वर्ष कल्पित करते हैं, सो यह गणना भी मनघड़न्त और काल्पनिक है, इस विषय की विवेचना अन्यत्र इसी पुस्तक में की जायेगी। इस गणना का मिथ्यात्व तो इसी नवीन खोज से सिद्ध हो गया कि पार्थिव

---

१. (क) यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह (तै० उ० ३२।४)

(ख) सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्॥ (तै० उ० २।१)

(ग) न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति (केनोपनिषद् १।३)

२. कस्मिन्नु खलु ब्रह्मलोका प्रोताश्च ओताश्चेति स होवाच गार्गि !
मातिप्राक्षीर्मा ते मूर्धा व्यपप्तदनतिप्रश्न्यां वै देवतामतिपृच्छसि
गार्गि मातिप्राक्षीरिति। (बृ०उ० ३।६।१)

३. नवभारत टाइम्स में कुछ मास पूर्व 'विज्ञानजगत्' शीर्षक से यह रिपोर्ट छपी थी—"पता चला है कि कर्नाटक राज्य में जो सूक्ष्म फासिल चट्टानें मिली हैं, वे अफ्रीका में मिली चट्टानों के समान हैं, इनसे यह सिद्ध होता है कि पृथिवी पर जीवन अधिक पुराना है, लगभग ३.८ अरब वर्ष पूर्व।"

जीवसृष्टि न्यूनतम चार अरब वर्ष प्राचीन थी।

अनेक बार प्रलय

पृथिवी पर अनेक बार उष्णयुग या हिमयुग व्यतीत हो चुके हैं, जिनमें अनेक बार आंशिक या पूर्ण जीवसृष्टि नष्ट हुई और पुनरुत्पन्न हुई। प्राचीन साहित्य से ज्ञात होता है कि मनुष्य को केवल दो प्रलयों की स्मृतिशेष है।[1] प्रलय में सम्पूर्णमनुष्यजाति नष्ट हो जाने पर पूर्व इतिहास को मनुष्य जान भी कैसे सकता था। इसमें प्रथम महाप्रलय में अतिदाह के पश्चात् वराह (मेघ = ब्रह्मा)[2] की कृपा से सलिलमय पृथिवी का उद्धार हुआ और स्वायम्भुव मनु ने नवीन मानव सृष्टि की। महाभारत में ब्रह्मा के सात जन्मों का उल्लेख है, जिनसे प्रत्येक बार नवीन सृष्टि उत्पन्न हुई। इन सात ब्रह्माओं के नाम थे— (१) मानस ब्रह्मा, (२) चाक्षुष ब्रह्मा, (3) वाचस्पत्य, (४) श्रावण, (५) नासिक्य, (६) अण्डज हिरण्यगर्भ ब्रह्मा और सप्तम (७) कमलोद्भव (पद्मज) ब्रह्मा। युगान्त में पृथिवी के दग्ध होने पर पृथ्वीवासी वैमानिक देवगण विमानों में बैठकर दूसरे लोकों में चले गये—

चतुर्युगसहस्रान्ते सह मन्वन्तरैः पुरा।
क्षीणे कल्पे ततस्तस्मिन् दाहकाल उपस्थिते।
तस्मिन् काले तदा देवा आसन्वैमानिकास्तु ये।
कल्पावसानिका देवास्तस्मिन् प्राप्ते ह्युपप्लवे।
तदोत्सुका विषादेन त्यक्तस्थानानि भागशः।
महर्लोकाय संविग्नास्ततस्ते दधिरे मनः॥ (ब्रह्माण्ड० अध्याय ६)

"चतुर्युगसहस्र के अन्त में मन्वन्तरों का अन्त होने पर, कल्पनाश के समय दाहकाल उपस्थित होने पर पृथ्वीवासी वैमानिक देवगण संताप से संविग्न होकर पृथ्वी लोक छोड़कर महर्लोक की ओर बसने चले गये।"

उपर्युक्त पुराणप्रमाण से हमारे इस मत की पुष्टि होती है कि पृथ्वी पर अनेक बार मानवसृष्टि और सभ्यता का उदय और अस्त हुआ था। और कुछ आधुनिक अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों के इस मत को भी बल मिलता है प्राणीवर्ग एवं मनुष्य दूसरे ग्रह नक्षत्र से पृथ्वी पर आकर बसे और उड़नतश्तरियों में बैठकर आज भी तथाकथित

---

१. इनमें से प्रथम प्रलय में सूर्यताप से पृथिवी पर जीव पूर्णतः समाप्त हो गये, तदनन्तर वराह (मेघ = ब्रह्मा) ने जीव सृष्टि की—
(क) युगान्ते मारुतेनेव शोषितं मकरालयम् (शल्यपर्व ६६।६)
(ख) युगान्ते सर्वभूतानि दग्धानि (द्रोणपर्व १५७।१७२)

२. सर्वं सलिलमेवासीत् पृथिवी यत्र निर्मिता।
ततः समभवद् ब्रह्मा स्वयम्भूर्दैवतैस्सह।
स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुन्धराम्॥
(रामायण अरण्यकाण्ड ११०/३-४)

अन्तरिक्ष मानव या देवगण पृथ्वी पर यदा-कदा आते रहते हैं। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध अन्तरिक्ष वैज्ञानिक फ्रायड ह्रायल का मत पहिले ही लिख चुके हैं। आधुनिक युग में, इस विषय पर सर्वाधिक अनुसन्धाता प्रसिद्ध जर्मन इतिहासकार एरिचवान डैनीकेन ने अनेक पुस्तकें लिखी हैं तथा—(१) देवताओं के रथ (Chariots of gods), (२) प्राचीन देवों की खोज में (In search of ancient gods), (३) देवोंका सुवर्ण (Gold of gods) इत्यादि। डैनीकेन के अतिरिक्त इस विषय पर रिचर्ड यंग, लेविस, दियोन, हरमनकॉन, थामस, क्रेग, रम्पा, इत्यादि ने भी अनुसंधान किये हैं। उपर्युक्त लेखकों ने पृथ्वी पर प्राप्त विभिन्न प्रमाणों से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है प्राचीन अनेक पार्थिव सभ्यताओं यथा मयसभ्यता, सुमेरसभ्यता, इंकासभ्यता, बैबीलन सभ्यता, मिश्रीसभ्यता में तथाकथित अन्तरिक्ष से आये देवों का योगदान है। इन इतिहासकारों के मन्तव्यों में आंशिक सत्यता हो सकती है और आज भी उड़नतश्तरियों की बहुधा चर्चा, वैज्ञानिक जगत् में होती है। कहते हैं कि मैक्सिको से अन्तरिक्षवासी देवों का विशेष प्रेम है। अत्यन्त प्राचीनकाल में मयसभ्यता का निर्माण इन्हीं अन्तरिक्ष-वासीदेवों ने किया या इस मयसभ्यता के निर्माण में योगदान दिया।

उपर्युक्त विवेचन का उद्देश्य यह है कि डार्विन का विकासवाद सर्वथा, अनुपयुक्त और भ्रममात्र है, जब अन्य लोकों में भी मनुष्यतुल्य या अधिक बुद्धिमान् देव रहते हैं तो डार्विन का आकस्मिक जीवोत्पत्ति का सिद्धान्त कहाँ ठहरता है। यद्यपि डेनीकेन ने प्रत्यक्षरूप से विकासवाद का खण्डन नहीं किया, परन्तु उसने जिन तथ्यों का उल्लेख किया, उससे विकासवाद का खंडन ही होता है। यथा डेनीकेन की खोज के अनुसार लेबनान में रेडियो एक्टिव एलम्यूनियम की प्राप्ति, मिश्र में दूरवीक्षण लेंसप्राप्ति, बगदाद में विद्युत्शुष्कबैटरियाँ, कोहिस्तान की गुहा में १०००० वर्ष पुराना पृथ्वी-शुक्रमिलन का मानचित्र, एडमिरल पीरीरीस के पुस्तकालय में पृथ्वी का अन्तरिक्षचित्र, दक्षिण अमेरिका में प्राप्त बुत २३००० वर्ष पूर्व की ज्योतिषगणना, हाइन्ड्रास मन्दिर में अन्त-रिक्ष यात्री का प्राचीन चित्र इत्यादि की प्राप्ति से प्रमाणित होता है कि प्राचीनयुगों में पृथ्वीवासी अन्य लोकों की अन्तरिक्षयान द्वारा यात्रा करता था। डेनीकेन ने केवल एकपक्षीय परिणाम निकाला है कि दूसरें ग्रहों के प्राणी ही पृथ्वी पर आते थे, परन्तु हमारा परिणाम है कि पृथ्वीवासी भी पुरायुगों में देवतातुल्य अत्युन्नत थे और दूसरे ग्रहों की यात्रा करते थे, पृथ्वी पर अन्तरिक्ष यात्रियों की वेशभूषा के चित्र मिलना, एडमिरल पीरी की लायब्रेरी पृथ्वी का अन्तरिक्षचित्र, दक्षिणअमेरिका में वालविया में कंक्रीट का प्राचीन वायुयान अड्डा, पेरू के पर्वतशिखर पर प्राप्त मीलों लम्बी पक्की हवाईपट्टी आदि से यही सिद्ध होता है कि पृथ्वीवासी मनुष्य भी देवतुल्य उन्नत थे और उन्होंने ही ये सड़के अपने उपयोग के लिये बनाई थीं, डेनीकेन की भाँति दूर की कल्पना करने की क्या आवश्यकता है कि दूसरे ग्रहों के देवताओं ने ही ये वस्तुयें बनाई, हाँ यह पूर्णत: सम्भव है कि जब पृथ्वीवासी दूसरे लोकों की यात्रायें करते थे तो उन लोकों के निवासी भी पृथ्वी पर आते होंगे, डेनीकेन ने एकपक्षीय कल्पना इसीलिये की कि वह विकासवाद के मिथ्या घटाटोप से आतंकित है। जब दूसरे ग्रहों

के यात्री इतनी उन्नति कर सकते हैं तो पृथ्वीवासी वैसी उन्नति प्राचीनकाल में क्यों नहीं कर सकते ? वास्तव में, मनुष्य पृथ्वी पर मनुष्य के रूप में ही अति बुद्धिमान् प्राणी के रूप में उत्पन्न हुआ था, उसका आयु, प्रमाण और बुद्धि में ह्रास ही हुआ है, इस ह्रासवाद के प्रमाण आगे प्रस्तुत करेंगे ।

डायनोसुर (दानवासुर) संज्ञकप्राणियों का अस्तित्व भी विकासावाद का खण्डन करता है । अभी हाल में शिकागोविश्वविद्यालय के जीववैज्ञानिक रायमैकल ने अफ्रीका में जाकर डायनोसुर तुल्य जीवों के पदचिह्न देखे हैं, अन्य वैज्ञानिक ने भी अभी पृथ्वी पर ऐसे बिशालकाय जीवों की खोज की है जो ७ से १४ करोड़ वर्ष पूर्व ही पृथ्वी पर माने जाते थे । कनाडा का वैज्ञानिक डैल रसैल मनुष्य का विकास इन्हीं डायनोसुर से मानने लगा है, परन्तु ये सब व्यर्थ की कल्पनायें हैं, फ्रान्स और मध्य अमेरिका की पर्वतगुफाओं से ७ करोड़वर्ष प्राचीन डायनासोर के चित्र मिले हैं, इन चित्रों के अंकन के रहस्य को आधुनिक वैज्ञानिक समझने में अशक्त हैं कि मनुष्य के अतिरिक्त इन चित्रों को कौन बना सकता है । विकासवाद के मतानुसार पृथ्वी पर मनुष्य का वानर से विकास ३७ लाख वर्ष पूर्व ही हुआ है, फिर ७ करोड़ वर्ष पूर्व के डायनासोर के गुहाचित्र क्या बताते हैं, स्पष्ट है कि ७ करोड़ वर्ष पूर्व भी डायनासोर और मनुष्य पृथ्वी पर साथ-साथ रहते थे, परन्तु वे वर्तमानसृष्टि के मानव नहीं थे । इससे हमारी इस धारणा की पुष्टि होती है कि पृथ्वी पर अनेक बार मानव का जन्म हो चुका था और अनेक बार लोप हो चुका था । यह वर्तमान सृष्टि ही प्रथम मानवसृष्टि या आदिमसृष्टि नहीं है, भारतीयसिद्धान्त के कल्प[1] सिद्धान्त से यही तथ्य प्रकट होता है, यह हम ब्रह्माण्डपुराण के प्रमाण से पहिले ही सिद्ध कर चुके हैं; और डायनासोर और मनुष्य पृथ्वी पर करोड़ों वर्ष पूर्व और आज भी साथ-साथ रहते हैं तो यह विकासवाद स्वयं ही मिथ्या सिद्ध हो जाता है । वैज्ञानिकों ने तथाकथित डायनासोरयुग की विशालकाय सीलकांथ ८ मछलियाँ सन् १९३८ से १९५४ तक समुद्रों में से पकड़ी । वैज्ञानिकों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि सीलकांथ की शरीरसंरचना ६ करोड़ वर्ष में रंचमात्र भी परिवर्तित नहीं हुई है । परिवर्तित कैसे हो, विकासवाद ही मिथ्या है तो उनके बदलने का प्रश्न ही कैसे उत्पन्न होता है, जब छः-सात करोड़ वर्ष में किसी भी जीव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ तो तथाकथित ३७ लाख वर्ष पुराने मनुष्य में क्या परिवर्तन हो सकता है, जबकि सिद्ध होचुका है कि पृथ्वी पर ७ करोड़ वर्ष से पूर्व भी मनुष्य रहता था और गुहाचित्र इसके प्रमाण हैं । आल्प्स पर्वत माला में आस्ट्रिया के नगर साल्सवर्ग में सन् १९४७ में ७८५ ग्राम भार का एक पाइप का टुकड़ा खान के गर्भ में मिला था, कार्बन परीक्षण से ज्ञात हुआ कि वह कम से कम ५ करोड़ वर्ष पुराना है । आधुनिकवैज्ञानिकों ने कल्पना की है कि कोई अन्तरिक्षयात्री इस पाइप को पृथ्वी पर छोड़ गया होगा परन्तु एक सीधे-सादे तथ्य को क्यों न स्वीकार किया जाय कि पृथ्वी पर ५, ७ या १० करोड़ वर्ष पूर्व भी मनुष्य रहते

१. धाता यथापूर्वमकल्पयत् (ऋ० १०।१९०।३)

थे, उन्होंने ही धातुओं की श्रेष्ठ यानादि वस्तुयें बनाईं। विकासवाद की मिथ्या धारणा के कारण ही आधुनिकवैज्ञानिकों को ऐसी मिथ्या कल्पनायें करनी पड़ती हैं कि दूसरे ग्रहों के प्राणी पृथ्वी पर ये वस्तुयें छोड़ गये होंगे। सत्य यह है कि ७ करोड़ वर्ष पूर्व या उससे बहुत पूर्व मनुष्य पृथ्वी पर रहता था। हाँ यह सत्य है कि मनुष्य का जन्म और लोप अनेक बार, इस पृथ्वी पर हो चुका है, अनेक कल्पों (सृष्टियों) में अनेक बार ब्रह्मा ने पृथ्वी पर जीव सृष्टि की—और प्रत्येक बार 'धाता यथापूर्वमकल्पयत्' नियम के अनुसार समान मनुष्य की रचना की। एक जीव से दूसरे जीव में परिवर्तन की बात सर्वथा असम्भव, अवैज्ञानिक और पूर्णतः असत्य है। यह भी सत्य है कि पृथ्वी पर अनेक बार की सृष्टि का मानव इतिहास आज ज्ञात नहीं है और वर्तमान पृथ्वीवासी मनुष्य का इतिहास २२ सहस्र वर्ष पूर्व से ही आरम्भ होता है, जब वर्तमान मानव का जनक स्वायम्भुव मनु (आदम=आत्मभू) उत्पन्न हुआ, २२ सहस्र वर्ष पूर्व (स्वायम्भुव मनु) से पूर्व के इतिहास को ज्ञात न होने के कारण 'प्रागैतिहासिककाल' कह सकते हैं।

स्वायम्भुव मनु से पूर्व पृथ्वी के पूर्वकल्प (सृष्टि) के मनुष्य या वैमानिक देव किसी अज्ञात समय में प्रलय होने की आशंका या आतंक से पृथ्वी छोड़कर विमानों में बैठकर पृथ्वी के दाहकाल या संप्रक्षालन काल से पूर्व महर्लोक को चले गये थे, यह ब्रह्माण्ड पुराण के प्रमाण से लिखा जा चुका है, इससे पूर्व की प्रलय की स्मृति मनुष्यों को कैसे हो सकती है जब सूर्यताप या अग्निदाह से पृथ्वीपृष्ठ पर सब कुछ भस्म हो चुका था। दाहकाल के अनन्तर पृथ्वी पर वराहमेघ ने समुद्रों को बनाया। अतः लाखों-करोड़ों वर्ष पूर्व की मानवसभ्यता का कोई चिह्न यदा-कदा पृथ्वी के गहन गर्भ में या चित्ररूप में किसी प्राचीन गुहा में ही मिल सकता है और ये चिह्न मिले भी हैं, जिनका संकेत हमने किया है। अतः लाखों करोड़ों वर्ष पूर्व की मानव निर्मितवस्तु को, डेनीकेन के समान दूसरे ग्रहों के प्राणियों का अवशेष ही नहीं मानना चाहिये, यह किसी पूर्व युग के पृथ्वीजन्मा मनुष्य की ही कृति समझनी चाहिये।

एक द्वितीय अवान्तरप्रलय[1] में जल या हिम से पृथ्वी पर से मनुष्य का सर्वथा लोप नहीं हुआ, जो विक्रम से लगभग १३००० वर्ष पूर्व वैवस्वत मनु और वैवस्वत यम के समय में हुई थी। इसका विस्तृत विवरण आगे प्रस्तुत किया जायेगा।

मन्वन्तरों और अवतारों में विकासवाद की मिथ्या कल्पना

कुछ भारतीयविचारक विकासवाद के घटाटोप के आतंक में १४ मन्वन्तरों और

---

१. जैनज्योतिषशास्त्र के अनुसार कल्पकाल (सृष्टि) के दो भेद हैं— अवसर्पण और उत्सर्पण, इनके भी दुःषम और सुःषम दो भेद हैं। इनकी अवधि क्रमशः २१-२१ हजार वर्ष होती है। आर्यभट्ट ने भी सृष्टि और प्रलय के इस भेद को माना है—और युगार्ध संज्ञा दी है—

उत्सर्पिणी युगार्द्धं पश्चादवसर्पिणी युगार्द्धं च।
मध्ये युगस्य सुषमादावन्ते दुःषमाग्न्यंशात्॥
(आर्यभटीय कालकलपपाद ९)

१० वैष्णव अवतारों में विकासवादके दर्शन करते हैं, यहसर्वथा अप्रामाणिक, अवैज्ञानिक एवं अभारतीयविचारपद्धति है। अवतारों में जीवविकास का सादृश्य दिखाते हुये यदा-कदा, कुछ लेखादि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। इस सम्बन्ध में श्री एस. एल. धनी नाम के एक भारतीय विद्वान् ने "सृष्टि विकास का मन्वन्तरसिद्धान्त" पुस्तक जून १९८० में, दिव्यदृष्टिप्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा से प्रकाशित की है। पुस्तक निश्चितरूप से विचारोत्तेजक है और प्राचीनभारतीय ज्ञानगरिमा पर कुछ प्रकाश डालती है, परन्तु लेखक ने मन्वन्तरों और अवतारों में, जो डार्विन प्रतिपादित विकासक्रम के दर्शन किये हैं वह सर्वथा भ्रामक है, अतः इस विचारपद्धति की यहाँ विशद समालोचना करते हैं।

श्री धनी ने पुराणोल्लिखित कल्प और मन्वन्तरादि के सम्बन्ध में अनेक भ्रामक कल्पनायें की हैं। सर्वप्रथम 'कल्प' शब्द को ही लें। उन्होंने लिखा है—"वर्तमान कल्प ब्रह्मा के ५१ वर्ष का पहिला दिन है। उन्हीं ग्रन्थों के अनुसार सृष्टि का उद्गम आज से १ अरब ९७ करोड़ २९ लाख ४९ हजार ७९ वर्ष अर्थात् लगभग २ अरब वर्ष पहिले हुआ था। शास्त्रानुसार अब तक इस कल्प के पूरे छः मन्वन्तर बीत चुके हैं अब सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है। इन सात मन्वन्तरों के नाम है—स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष और वैवस्वत। पुराणों के अनुसार अभी सात अन्य मन्वन्तर बाकी हैं, जिनके पूरा होने पर वर्तमानसृष्टि अर्धकल्प के ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष पूरे हो जायेंगे और इतनी ही अवधि वाली प्रलय होगी और उसके पश्चात् आगामी कल्प आरम्भ हो जायेगा।[1] मन्वन्तरों में उन्होंने सौरमण्डल का विकास और पृथ्वी पर जीवसृष्टि का विकास देखा है। उनके अनुसार स्वयम्भुवमनु (मन्वन्तर) का अर्थ है 'ब्रह्माण्ड में स्वयं सूर्य का उत्पन्न होना और ३० करोड़ वर्षों में सूर्य बन गया। स्वारोचिषमनु का अर्थ श्रीधनी ने यह किया है कि तेजघर्षण से सूर्यमण्डल में आग लग गई। यह क्रम भी एक मन्वंन्तर अर्थात् ३० करोड़ वर्ष चलता रहा। इसी प्रकार की मनमानी व्याख्या, उन्होंने उत्तम, तामस, चाक्षुष और वैवस्वत मन्वन्तर की की है। वैवस्वत का अर्थ श्री धनी ने सूर्य माना है और वैवस्वत मन्वन्तर का आरम्भ आज से १२ करोड़ वर्ष पूर्व हुआ।[2]

पुराणों में 'कल्प' शब्द के अनेक अर्थ है, परन्तु जहाँ १४ मन्वन्तरों का एक कल्प और ब्रह्मा का एक दिन बताया गया है, वहाँ उसका अर्थ सूर्य या पृथ्वी की उत्पत्ति काल या जन्म से नहीं है और न मन्वन्तरों का वह अर्थ है जो श्री धनी ने लगाया है, प्रत्येक पुराण अध्येता 'मन्वन्तर' के अर्थ को समझता है, यद्यपि पुराणों के वर्तमानपाठों में मन्वन्तरगणना अत्यन्त भ्रामक है, इसका विशेषशुद्धिकरण द्वितीय अध्याय में करेंगे।

---

१. सृष्टिविकास का मन्वन्तरसिद्धान्त पृ० ३१

२. श्री धनी की व्याख्या सुनिये—"वैवस्वत को सूर्य कहने की पुराणकार को आवश्यकता तब उत्पन्न हुई प्रतीत होती है जब मनुष्य का पृथ्वी पर प्रादुर्भाव होना सिद्ध हुआ।" वही, (पृष्ठ ३५)

पुराणों में १४ मनुओं का वर्णन मनुष्यों के रूप में किया है और उसे उसी रूप मे ग्रहण करना चाहिये। जिस समय प्रथम मनु-स्वायम्भुव (स्वयं-भूपुत्र) उत्पन्न हुये, उस समय और उससे बहुत पूर्व पृथ्वी विद्यमान थी, वे पृथ्वी पर ही उत्पन्न हुए थे जबकि वराह ने भूमि को समुद्र में से निकाल लिया। जलप्लावन में पृथ्वी पूरी तरह धुल गई थी।[1] इससे पूर्व सूर्यताप से पृथ्वी पृष्ठ (ऊपरी भाग) दग्ध हो गया था—

जंगमा : स्थावराश्चैव नद्य:सर्वे च पर्वता:।
शुष्का: पूर्वमनावृष्ट्या सूर्येस्ते प्रधूपिता:।
तदा तु विवशा : सर्वे निर्दग्धा: सूर्यरश्मिभि: ।।[2]

पृथ्वीदाह के समय पृथ्वीतल पर किसी भी जीव के शेष रहने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता, दाह से पूर्व वैमानिकदेव पृथ्वी छोड़कर अन्य लोकों में चले गये थे। पृथ्वीदाह के लाखों वर्षों पश्चात् वराह मेघ द्वारा पृथ्वी पर समुद्र बने—

ततस्तु सलिले तस्मिन्नष्टाग्नौ पृथ्वीतले।
एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजंगमे।
तदा भवति स ब्रह्मा सहस्राक्ष: सहस्रपात् ।।[3]

पूर्वयुगों में पृथ्वी का ऐसा दाह अनेक बार हो चुका है, इन्हीं दाहों द्वारा पृथ्वीगर्भ में अनेक धातुयें,[4] कोयला और पैट्रोल जैसे पदार्थ बने। उपर्युक्त वर्णन का तात्पर्य यह है कि स्वायम्भुव मनु 'सूर्योत्पत्तिकाल' का नाम नहीं है और न पृथ्वीजन्म ही २ अरब वर्ष पूर्व हुआ, सूर्य और पृथ्वी तो स्वायम्भुमनु से अरबोंवर्ष पूर्व विद्यमान थे। 'कल्प' का अर्थ है 'नवीनसृष्टि' उसी को युग भी कहा गया है। कल्प की समाप्ति के समय दाहकाल में ग्रह चन्द्र-सूर्यादि सभी विद्यमान थे—

चतुर्युगसहस्रान्ते सह मन्वन्तरै: पुरा।
क्षीणे कल्पे ततस्तस्मिन् दाहकाल उपस्थिते।
नक्षत्रग्रहताराश्च चन्द्रसूर्यास्तु ते ।।[5]

अत: कल्पान्त में पृथिवीचन्द्रादि का विनाश नहीं होता। ऐसे अनेक कल्प पृथिवी पर व्यतीत हो चुके हैं।[6] अत: स्वायम्भुव मनु स्वारोचिष मनु आदि का वह

---

१. संप्रक्षालनकालोऽयं लोकानां समुपस्थित: (महाभारत ३/९०/२९)
२. ब्रह्माण्ड पु० (१/६/४६-४७),
३. ब्रह्माण्ड (१/६/६०)
४. धातुस्तनोति विस्तारे न चैतास्तनव स्मृता: ।। (ब्रह्माण्डपुराण १/५/५६)
५. ब्रह्माण्ड पु० (१।२।६।१५-१७)
६. एतेन क्रमयोगेन कल्पमन्वन्तराणि च।
सप्रजातानि व्यतीतानि शतशोऽथ सहस्रश:।
मन्वन्तरान्ते संहार: संहारान्ते च संभव: ।। (ब्र० पु० १।२।१६१-६३)
अत: असंख्य कल्प और मन्वन्तर (जीवों सहित) पृथिवी पर व्यतीत हो चुके हैं। कल्पमन्वन्तरादि में पृथिवी का पूर्णनाश नहीं होता। केवल जीव-जंतुओं का नाश और भूपृष्ठ पर हलचल होती है।

अर्थ कदापि नहीं हो सकता, जो श्री धनी ने लगाया है और सूर्य का नाम विवस्वान् है तो उसको वैवस्वत कहने का कोई अर्थ नहीं हो सकता, जब वैवस्वत शब्द का अर्थ है विवस्वान् (सूर्य) का पुत्र मनु या यम। अतः वैवस्वतमनु सम्बन्धी श्रीधनी की कल्पना पूर्णतः भ्रामक, निरर्थक मिथ्या एवं अप्रामाणिक है, जिसका समर्थन किसी भी प्राचीन ग्रन्थ से नहीं किया जा सकता। वैवस्वतमनु का स्वायम्भुवमनु में कालान्तर केवल ७१०० वर्ष या ७१ मानुषयुग था, जैसा कि पुराणप्रमाण से अन्यत्र सिद्ध किया जायेगा और वैवस्वतमनु विक्रम से लगभग १२००० वर्ष पूर्व हुए थे, यही पुराणों में में लिखा हुआ है। सभी चौदह मनु प्रजापति मनुष्य ही थे, अतः पुराणों में इसका कोई दूसरा अर्थ है ही नहीं, और इतिहास में इसी अर्थ को मानना चाहिए। १४ मनु (स्वायम्भुव से वैवस्वतपर्यन्त) केवल ७१ मानुषयुगों अर्थात् ७१०० वर्ष के स्वल्पकाल में हुये। सभी १४ मनु भूतकाल के मनुष्य थे, भविष्य में ७ मनुओं का पाठ सर्वथा भ्रामक है, तथाकथित भविष्य चार सावर्णि मनु दक्ष के दौहित्र थे—

दक्षस्य ते दौहित्राः क्रियाया दुहितुः सुताः।
महानुभावास्ते जज्ञिरे चाक्षुषेऽन्तरे॥

(ब्र० पु० ३।४।२६)

तथाकथित भविष्य में होने वाले चार सावर्ण मनु चाक्षुष मन्वन्तर (छठे मन्वन्तर) में, सप्तम मनु वैवस्वत से पूर्व हो चुके थे। इसी प्रकार रुचि प्रजापति का पुत्र रौच्य और भूतिपुत्र भौत्य मनु भी चाक्षुष और वैवस्वत के मध्य हुये—

चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वतस्य च।
रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रोच्यौनामाभवत्सुतः॥ (३।४।५०)

अतः १४ मनुओं में परस्पर कुछ शताब्दियों का ही अन्तर था। १४ मनुओं में सबसे अन्तिम (चौदहवें) वैवस्वत मनु थे और वे स्वायम्भुव मनु से ७१ मानुष पीढ़ियों (मानुषयुग=१०० वर्षवेद में) के अनन्तर अर्थात् ७१०० वर्ष पश्चात् हुए। अतः मन्वन्तरकाल ३० करोड़ ६७ लाख २० हजार वर्ष का नहीं था, वह केवल कुछ शताब्दियों या सहस्राब्दियों के काल-परिणाम का था, अतः मन्वन्तरकाल को सौर मण्डल की सृष्टिप्रक्रिया में घसीटना सर्वथा भ्रामक, निरर्थक, अनैतिहासिक और अवैज्ञानिक है।

मन्वन्तरकाल की विस्तृत शोध द्वितीय अध्याय में की जायेगी। इस अध्याय में केवल इतिहासविकृतियों का संकेत किया जाएगा।

अवतारों में विकासक्रम देखना भी सर्वथा भ्रामक और मिथ्या है। इन अवतारों के समय का देश कालपात्र, जैसा कि पुराणों में वर्णित है, अवश्य द्रष्टव्य है।

श्री धनी ने प्रथम अवतार मत्स्य को कहा है जबकि पुराणों में वराह को प्रथम अवतार बताया गया है, यदि मत्स्यावतार को ही प्रथम अवतार मान लिया जाय तो मत्स्यावतार के साथ वैवस्वत मनु का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि उसे कोई भी कल्पना दूर नहीं कर सकती। जब प्रथम अवतार (मत्स्य) जिसको समुद्र से जीवोत्पत्ति का

प्रतीक माना गया है, उस समय पूर्ण (विकसित ?) मनुष्य वैवस्वत मनु, सप्तर्षि और अन्य मनुष्य एवं जीव भी पृथिवी पर रहते थे, तब मत्स्य को विकास की प्रथम कड़ी के रूप में देखना, केवल हवाई कल्पना है, इसमें कोई सार नहीं। इसी प्रकार नृसिंह के समय हिरण्यकशयप, प्रह्लादादि, वामन के समय शुक्राचार्य, बलि आदि मानव प्राणी पृथ्वी पर थे, यह तथ्य पुराण अध्येता सम्यक् प्रकार से जानते हैं, पुनः परशुराम, दाशरथि राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि के रूपों में मनुष्य शरीर या मानव सभ्यता का विकास मानना न केवल हास्यास्पद वरन् घोर अज्ञान का प्रतीक भी है। अतः पुराणोल्लिखित दशावतारों में मानवविकास देखना सर्वथा निरर्थक कल्पना का भार ढोना है। इस सम्बन्ध में इन प्राचीन उक्तियों का मनन एवं ध्यान करना चाहिये--

(१) "बिभत्येल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।"

(२) एकं शास्त्रमधीयानो न याति शास्त्रनिर्णयम्।

(३) तेषां च त्रिविधो मोहः सम्भवः सर्वपाम्मनाम्।
अज्ञानं संशयज्ञानं मिथ्याज्ञानमिति त्रिकम्॥

(४) मोहाद् गृहीत्वासद्ग्राहान् प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।

(५) स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्॥

(६) पायोवर्यवित्सु तु खलु वेदितृषुभूयोविद्यः प्रशस्यो भवति।

अतः श्री एस० एल० धनी को उपर्युक्त उक्तियों पर विचार करके ही ज्ञान-विज्ञान पर विचारणा करनी चाहिये—

अध्यात्म और विकासवाद

विकासवादी अध्यात्मविद्या और योगविज्ञान में कोरे होते हैं, बिना आत्मा का विज्ञान जाने ब्रह्माण्ड या सृष्टि का रहस्य समझा नहीं जा सकता। दर्शन और मनोविज्ञान का ज्ञान भी मनुष्य शरीर को समझने के लिए आवश्यक है। सच्चा ज्योतिषी भविष्य की घटना को देख सकता है, इसी प्रकार अतीन्द्रिय ज्ञान सम्पन्न प्राणी केवल मनुष्य नहीं—पशु-पक्षी आदि भी, भविष्य को देख लेते हैं। पशु-पक्षियों को भविष्य में होने वाले भूकम्प की सूचना अनेक दिन पूर्व ज्ञात हो जाती है, इसी प्रकार सर्प अपने घातक को सहस्रों मील जाकर भी पहचान लेता है, कुत्ते की घ्राणशक्ति अपराधियों को पकड़ने में काम आती है, पक्षियों को दिव्यदृष्टि प्राप्त है जो हजारों मील दूर की वस्तु को देख लेते हैं, अतः अतीन्द्रिय ज्ञान केवल कल्पना की वस्तु नहीं है, जब पशु-पक्षी अतीन्द्रियज्ञान सम्पन्न हो सकता हैं तो मनुष्य क्यों नहीं हो सकता। प्राचीनभारत में ऐसे अनेक अध्यात्मयोगी और भविष्यवक्ता हो चुके हैं जो अतीत और अनागत का ज्ञान रखते थे। योगशास्त्र एवं पुराणादि में योगजशरीर, सांकल्पिक अयोनिज, अमैथुनी सृष्टि,

मानसपुत्र, सांसिद्धिक शरीर, मन्त्रशरीर आदिक योगजादि शरीर सिद्धि[1], अतीन्द्रिय-ज्ञान और पुनर्जन्म के लिए आत्मा का अस्तित्व अनिवार्य है, जब प्राणी मरता है तो लिंगशरीर या सूक्ष्मशरीर नहीं मरता, वह आत्मा के साथ ही भ्रमण करता है। पूर्वजन्म की स्मृति अनेक व्यक्तियों को बाल्यावस्था में रहती है, अनेक व्यक्ति पूर्वजन्म में सीखी हुई भाषाओं को इस जन्म में बोलते हैं, ऐसी घटनाओं के विवरण आये दिन पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। लेकिन आत्मा आदि को प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता, केवल ज्ञानचक्षु से उसका ज्ञान होता है—

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढ़ा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ।।

(गीता १५।१०)

आत्मा और विकासवाद का शाश्वतिकविरोध है। विकासवादी सृष्टि को भौतिक एवं आकस्मिक घटना मानते हैं, परन्तु अध्यात्मवाद के अनुसार जीवसृष्टि 'समष्टि' आत्मा (परमात्मा) से उत्पन्न हुई। कल्पान्त में वैमानिकदेव मानसीसिद्धि से ही जीव रचना करते हैं—

विशुद्धिबहुलां मानसीं सिद्धिमास्थिताः ।
भवन्ति ब्रह्मणा तुल्या रूपेण विषयेण च ।। (ब्र० पु०)

यह ब्रह्माण्डसृष्टि धाता[2] की निश्चित योजनानुसार हुई है, यह कोई आकस्मिक घटना नहीं, विश्व ब्रह्माण्ड की प्रत्येक घटना का सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से सम्बन्ध है, यदि ऐसा नहीं हो तो किसी घटना का भविष्यदर्शन नहीं किया जा सकता। मनोविज्ञान का साधारण विद्यार्थी भी जानता है कि मनुष्य स्वप्न में भविष्य की घटनायें बहुधा देखता है और निश्चित प्रतीकों का निश्चित अर्थ होता है तो उसे एक-दो दिन में धन प्राप्ति ध्रुव रूप से होती है। इससे भी सिद्ध है कि सृष्टि में मनुष्य जन्म क्या उसका प्रत्येक विचार भी पूर्वनिश्चित है और पूर्वयोजनानुसार निर्मित होता है, यदि ऐसा न हो तो स्वप्न का निश्चित परिणाम या फल न हो।

अध्यात्म, पुनर्जन्म, स्वप्न भविष्यदर्शन आदि पर विस्तृत विचार करने का यह उपयुक्त ग्रन्थ नहीं, यहाँ पर इनकी सांकेतिक चर्चा इसीलिए की है कि विकासवाद मानने पर आत्मा पुनर्जन्म, स्वप्नफलसाम्य, भविष्यदर्शन आदि कदापि उपपन्न नहीं हो

---

१. स्वायम्भुव मन्वन्तर में होने वाले सिद्ध कपिल ने योग द्वारा निर्माणचित्त का निर्माण करके द्वापरयुग में आसुरि को सांख्य का उपदेश दिया—
"आदिविद्वान् निर्माणचित्तमधिष्ठाय कारुण्याद् ।
भगवान् परमर्षिरासुरये जिज्ञासमानाय तन्त्रं प्रोवाच ।।"
(योगसूत्र व्यासभाष्य १।२५)

२. सूर्यचन्द्रमसौ धाता पूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च पृथिवीं चाऽन्तरिक्षमथो स्वः ।। (ऋ १०।१९०।३)

सकते, अतः पुनर्जन्मादि के प्रमाण से विकाससिद्धान्त का पूर्णतः खण्डन होता है। जो आत्मवादी विकासवाद को मानता है वह घोर अज्ञानी है।

ह्रासवाद-सत्य

डार्विनकल्पित विकासवाद असत्य है इसके विपरीत ह्रासवाद सत्य सिद्ध होता है। पूर्वनिर्दिष्ट सर फ्रायड हायल के नवीन उद्घोषित सिद्धान्त में कहा गया है कि पृथ्वी पर प्राणी सृष्टि किसी दूसरे ग्रह (लोक) के अधिक बुद्धिमान् प्राणियों ने की होगी। पुराणों में आदिकाल से ही बताया गया है कि स्वयम्भू (ब्रह्मा) के दक्ष, वसिष्ठ, पुलस्त्य, क्रतु मारीचि आदि मानसपुत्र[1] (अयोनिज) पृथ्वी पर सर्वाधिक बुद्धिमान् प्राणी थे, इन्हीं दक्षादि दश प्रजापतियों ने पृथ्वी पर जीवसृष्टि की। पुराणों में कश्यप प्रजापति की १३ पत्नियों से अनेक पशु-पक्षी एवं सरीसृपों की सृष्टि बताई गई है। इससे ह्रासवाद की पुष्टि होती है कि पूर्ण मानव से मन्दबुद्धि या मूर्ख प्राणी उत्पन्न हुए। आदिमानव स्वयम्भू और उनसे दश मानसपुत्र स्वायम्भुव मनु आदि पूर्णज्ञानी सिद्धपुरुष थे, उनके आगे उत्पन्न होने वाले मनुष्यों का ज्ञान घटता गया। ब्रह्मा (स्वायम्भुव) को सभी ज्ञान विज्ञानों (शास्त्रों) का आदि प्रवर्तक कहा गया है। स्वायम्भुव मनु को मनुस्मृति में 'सर्वज्ञानमयो हि सः' कहा गया है। आदि युग में मनुष्यों की आयु अपरिमित अर्थात् अधिक थी, उसका शरीर, बल, आत्म-बल और आयु भी अधिक थी, वह क्रमशः त्रेता, द्वापर, कलि में घटती गई। दीर्घायुष्ट्व का अधिक विस्तृत विवेचन द्वितीय अध्याय में करेंगे।

उपर्युक्त सभी तथ्यों (प्रमाणों) से ह्रासवाद का समर्थन या सिद्धि होती है।

पाश्चात्य रहस्यमय अनुसंधाता डेनीकेन की अद्भुत खोजों से भी ह्रासवाद सिद्ध होता है, जबकि करोड़ों वर्षों पूर्व पृथ्वी निवासी मनुष्य अन्तरिक्ष यानों द्वारा दूसरे ग्रहनक्षत्रों की यात्रा करते थे और अन्य लोकों के प्राणी अन्तरिक्ष यानों में बैठकर पृथ्वी पर आते थे। इस तथ्य का संकेत वैदिकग्रंथों एवं पुराणों में भी मिलता है। वैदिक अश्विनी और मरुद्गण ऐसे ही अन्तरिक्ष देव थे, ये घटनायें महाभारतयुद्ध से केवल १०,००० वर्ष पूर्व की ही हैं। वैमानिकदेवों ने तो स्वायम्भुव मनु से पूर्व (जलप्लावन से पूर्व) सप्त लोकों की यात्रायें की थीं, जैसा कि ब्रह्माण्डपुराण में

---

१. यहूदी ग्रन्थों में भी सप्तर्षियों को Seven wise man कहा गया है। *Seven Sages*—"In the time before the Flood there lived the heroes, who (Gilgames epic) dwell in the under world or the Babylonion Nooh, are removed into the heavenly world. At that time there lived, too, the (Seven) Sages (Encyclopedia of Religion & Ethics, Artcles on Ages).

गीता का एक वचन द्रष्टव्य है :—

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः॥ (गीता १०/६)

उल्लिखित है।[1] डैनीकेन ने सिद्ध किया है कि किसी पुरातनयुग में मैक्सिकोवासीमय एवं अन्य दक्षिण अमेरिका के निवासी शुक्रादि ग्रहों की यात्रायें करते थे। इस विषय की विस्तृत चर्चा अन्यत्र की जाएगी। यहां इस विषय का संकेत केवल ह्रासवाद को सिद्ध करने के लिए किया गया है। देववाक् संस्कृत और अन्य प्राचीन भाषायें भी ह्रासवाद का बोलता चित्र प्रस्तुत करती हैं, इस विषय का विशद विवेचन इसी अध्याय के 'मिथ्याभाषाविज्ञान' प्रकरण में किया जाएगा।

आज भी पृथ्वी पर सभ्यमानवों की अपेक्षा असभ्यों या असंस्कृतों (अविकसित=अशिक्षित=मूर्खादि) की संख्या कई गुणा अधिक है, आज का भारत इसका उत्तम निदर्शन है, यहाँ ८० प्रतिशत जन निरक्षर हैं। आज भी मनुष्य गुफाओं में रहते हैं, नरभक्षी हैं, पिशिताशन (पिशाच) इत्यादि हैं तो इससे विकासवाद कैसे सिद्ध हो गया। इससे तो यही सिद्ध होता है कि अधिकाधिक मनुष्य मूर्ख होते जा रहे हैं। उसका सर्वविधि ह्रास हो रहा है। तथाकथित विकासवाद का प्रलाप भी मनुष्य को असभ्यता की ओर अग्रसर कर रहा है, असद्मतों को मानना भी मानवबुद्धि के ह्रास का लक्षण है, अतः सभी प्रकार के सम्यक् विचार से सिद्ध होता है कि मनुष्य ह्रास की ओर बढ़ रहा है।

प्रागैतिहासिकतावाद

विकासमत से उत्पन्न अज्ञान पर प्रागैतिहासिकतावाद की कल्पना ने रंग चढ़ाया। इससे विश्व इतिहास में पेड़ चढ़ैया की कहानी घड़ी गई कि आदि मानव बन्दर के समान चढ़कर जीवन-यापन करता था, पुनः प्रस्तर युग, धातुयुग, पशुपालन युग, कृषियुग जैसे तथाकथित काल्पनिकयुगों की कल्पना की गई जिनका प्राचीन साहित्य में कहीं न तो उल्लेख है और न किसी अन्य प्रमाण से इनकी पुष्टि होती है। पाश्चात्य ल्पकों ने, भारतीय इतिहास में तो गौतम बुद्ध और बिम्बसार से पूर्व युग को प्रागैतिहासिकयुग माना और पाश्चात्य लेखकगण गौतमबुद्ध से पूर्व होने वाले कृष्ण, राम, व्यास, वाल्मीकि जैसे प्रसिद्धपुरुषों को ऐतिहासिक व्यक्ति न मानकर

---

१. द्रष्टव्य ब्रह्माण्डपुराण, अनुषंगपाद षष्ठ अध्याय; इन वैमानिक देवों की संख्या थी :—

त्रीणि कोटिशतान्यासन्कोट्यो द्विनवतिस्तथा।
अथाधिका सप्ततिश्च सहस्राणां पुरा स्मृताः॥
एकैकस्मिंस्तु कल्पे वै देवा वैमानिकाः स्मृताः।

तीन अरब बानबे करोड़ बहत्तर हजार वैमानिक देवगण।

काल्पनिक व्यक्ति माना।[1] कपिल, स्वायम्भुव मनु, इन्द्र, वरुण, विवस्वान्, कश्यप, वैवस्वत मनु[2] आदि को पार्जीटर जैसा पुराणविशेषज्ञ भी ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं मानता था।

वास्तव में वर्तमान विश्व इतिहास और भारतवर्ष का इतिहास स्वयम्भू और उसके दश पुत्रों (स्वायम्भुव मनु आदि) से प्रारम्भ होता है, अतः स्वायम्भुव मनु तक का समय ऐतिहासिक था। इससे पूर्व के इतिहास का ठीक-ठीक ज्ञान पुराणों में भी नहीं प्राप्त होता, अतः प्राक्स्वायम्भुवमनुकाल को तो प्रागैतिहासिक कहा जा सकता है, इसके पश्चात् के काल को नहीं। यह प्रागैतिहासिकतावाद पाश्चात्य षड्यंत्र और अज्ञान का परिणाम था, जो इतिहास की विकृति का एक प्रमुख कारण बना।[3]

भारतीय इतिहास में प्रागैतिहासिकतावाद के लिए कोई स्थान नहीं है, क्योंकि मानवोत्पत्ति से आज तक का इतिहास, पुराणों से ज्ञात हो जाता है।

प्रागैतिहासिकतावाद, धातुयुग आदि सभी विकासमत के मानसपुत्र हैं, जब विकासमत ही असिद्ध है, तब इससे उत्पन्न सभी वाद स्वयं निरस्त हो जाते हैं अतः विद्वानों को इन सभी मिथ्यावादों को छोड़कर सत्य इतिहास का आश्रय लेना चाहिये। सत्य इतिहास का ज्ञान केवल प्राचीनभारतीयसाहित्य एवं अन्य प्राचीनग्रन्थों से होता है।

डार्विन का विकासवाद आज तक किसी भी वैज्ञानिक प्रमाण से पुष्ट नहीं हुआ, आज के श्रेष्ठ वैज्ञानिक विचारक इससे हटते जा रहे हैं, क्योंकि आज तक किसी ने भी एक जीव से दूसरे जीव (योनि) में परिवर्तन होते नहीं देखा। एक कोषीय अमीबा से हाथी या डायनासोर जैसे विशाल जीव कैसे परिवर्तित हो सकते हैं। जब सात-सात करोड़ वर्षों में किसी जीवसंरचना में रत्तीभर भी परिवर्तन नहीं हुआ, फिर ३७ लाख वर्ष में बन्दर से मनुष्य कैसे बन गया, यह कल्पना बोधगम्य नहीं है, अतः

---

१. अन्त में फिर कहना आवश्यक है कि न केवल महाभारत में वर्णित घटनायें बल्कि, राजाओं, राजकुलों में अगणित नाम चाहे इनमें कुछ घटनायें और नाम कितने ही ऐतिहासिक क्यों न मालूम पड़ें, सही मायने में भारतीय इतिहास नहीं है। भारतवर्ष का इतिहास मगध के शिशुनाग राजाओं और अजातशत्रु से शुरू होता है। (विन्टरनीत्स कृत भारतीय साहित्य, प्रथम भाग, पृष्ठ १४८, रामचन्द्र पाण्डेय कृत अनुवाद) यहाँ विन्टरनीत्स का घोर अज्ञान, पक्षपात और पूर्वाग्रह स्पष्ट है। ऐसे लेख भारतीय इतिहास की विकृति के प्रधान कारण बने।

(2) All the royal lineages are traced back to the mythical Manu Vaivasvata" (A.I.H.T.p, 84).

३. पाश्चात्य लेखक तो पाराशर्य व्यास को मनघड़न्त (Legendry) पुरुष मानते ही थे, श्री राधाकृष्णन जैसे भारतीय मनीषी भी पाश्चात्य प्रभाव से वैसा ही मानता थे "The authership of the Gita is attributed to vyasa, the legendr compiler of the Mahabharata."

(भगवद्गीताभूमिका, श्री राधाकृष्णन्) पृ० १४;

डार्विन कल्पित विकासवाद सर्वथा त्याज्य है। इस विकासवाद की असिद्धि के अन्य हेतु पूर्व संकेतित किये जा चुके हैं।

विकासवाद की कल्पना, डार्विन के अधकचरे ज्ञान की अटकलपच्चू कल्पना थी, जिसका विज्ञान या सत्य से कोई सम्बन्ध नहीं। डार्विन को न तो आत्मविद्या, न योगविद्या, नक्षत्र विद्या किंवा किसी भी विज्ञान का सम्यक् ज्ञान नहीं था, वह मनुष्य के प्रारंभिक इतिहास को भी नहीं जानता था, इसीलिए उसने घोर अज्ञान द्वारा उपर्युक्त कल्पना की।

पाश्चात्य मिथ्या भाषामत

यहाँ पर हमारा उद्देश्य भाषाविज्ञान का वर्णन करना नहीं है, केवल यह प्रदर्शित करने के लिए कि पाश्चात्य मिथ्या भाषामतों ने भारतीय इतिहास को कितना विकृत किया, उनका साररूप में खण्डन करना आवश्यक है।

यह पहिले संकेत कर चुके हैं कि जब पाश्चात्यों को संस्कृत भाषा से सर्वप्रथम परिचय हुआ तो उनकी प्रवृत्ति देववाक् संस्कृत को विश्व की आदिम और मूलभाषा मानने की थी। जर्मन संस्कृतज्ञ श्लेगल एवं फ्रेंच बाप आदि की प्रवृत्ति यही थी, परन्तु उत्तरकाल में इस सत्य के फलितार्थ को समझकर उन्होंने षड्यंत्र किया कि संस्कृत को विश्व की आदिम भाषा न माना जाय। जब फ्रेंच वैयाकरण बाप ने ग्रीक, लैटिन, पारसी आदि शब्दों का मूल संस्कृत बताना शुरू किया तो मैक्समूलर ने प्रलाप किया—(1) "No Sound scholar ever think of deriving any Greek or Latin word from sanskrit[1]" (2) No one supposes any longerthat sanskrit was the common source of Greek, Latin and Anglo saxon[2]. कोई भी निष्पक्ष विद्वान् भाँप लेगा कि यहाँ मैक्समूलर जानबूझ कर सत्य के साथ व्यभिचार कर रहा है, इसका कारण था मैकाले से मिलने के पश्चात् उसका भारतीय इतिहास के साथ रचा गया षड्यन्त्र। इसी षड्यन्त्र के परिणामस्वरूप, पाश्चात्यों ने एक भारोपीयभाषा (Indo European) की कल्पना की, जिसे संस्कृत का भी मूल बताया गया। पाश्चात्यों ने भारतीय और योरोपीय भाषाओं की तुलना से उल्टे परिणाम निकालकर उल्टी गंगा बहाना शुरू किया। पाश्चात्य लेखकों ने अपने मनमाने परिणामों के आधार पर प्रलाप करना शुरू किया कि—"भाषा का साक्ष्य

---

(1) Sceince of Language Vol. II p. 449.

(2) India, what can it teach us, (p. 21).

(3) In Greek the Sanskrit a becomes a, e or o, without presenting any certain rules-comparative grammer, p. XIII).

अकाट्य है, जो प्रागैतिहासिकयुगों के विषय में श्रवणयोग्य है।[1] इसी आधार पर जर्मनसंस्कृतज्ञों ने दम्भ करना प्रारम्भ किया कि वेद का अर्थ जर्मन भाषा विज्ञान से अच्छी प्रकार समझा जा सकता है और जर्मनी भाषाविज्ञान का जन्मदाता है— (1) Germany is for more than any other countiy, the birth place and home of language"[2] (2) The principles of the German school' are the only ones which can ever guide us to a undrstanding of Veda"[3]

इसी मिथ्याभाषाविज्ञान के आधार पर प्रागैतिहासिक युगों एवं आर्यप्रावजन की कथा घड़ी गई। मिथ्याभाषामत के आधार ही काल्पनिक इण्डोयूरोपियन मानी गई और यह कल्पना की गई कि आर्यों का मूल किसी यूरोपियन देश में था, जहाँ से वे ईरान, भारत आदि में उपनिविष्ट हुये।

संसार आज जानता है कि प्राचीनभारत में भाषा और व्याकरण का जैसा अप्रतिम और विशाल अध्ययन हुआ, वैसा शतांश भी योरोप में नहीं हुआ। इन्द्र से पाणिनि तक शतशः महान् वैयाकरण हुए। भारतीयमत के अनुसार मनुष्य के समान भाषा भी स्वयम्भू ब्रह्मा से उत्पन्न हुई, इसलिए उसको ब्राह्मी या देववाक् कहा जाता है। भारतीय इतिहास में मिथ्या भाषामत के आधार पर 'आर्य' जाति की कल्पना और इतिहास में 'मिथ्यायुगविभाग' किया गया। अतः इन्हीं दो विकृतियों पर यहाँ विशेष विचार किया जाता है।

'आर्यजाति' सम्बन्धी मिथ्याकल्पना

'आर्य' शब्द किसी जाति विशेष का बोधक नहीं है। योरोपियन लेखकों ने, अब से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व जब प्राच्यविषयों का अध्ययन प्रारम्भ किया, तभी से इस शब्द को 'जाति' के अर्थ में माना जाने लगा। परन्तु प्राचीनवाङ्मय में 'आर्य' शब्द किसी जातिविशेष के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है। इस कल्पना का मूल कारण था कि जब पाश्चात्यों ने 'इण्डोयूरोपियन' भाषा की कल्पना की और इस सम्पूर्ण भाषा-वर्ग का सम्बन्ध कल्पित 'आर्य' जाति से जोड़ा, जिससे कि इस जाति को विदेशी (अभारतीय) सिद्ध किया जा सके। वेदों में 'आर्य' और 'दस्यु' शब्द समाज के दो वर्गों का बोध कराते हैं।

पाश्चात्यों का षड्यन्त्र—

यह था कि उत्तरभारतीयों का भारत में प्रभुत्व है, अतः उन्हें विदेशी सिद्ध

---

(1) The evidence of language is irrefragable and it is the only evidence worth listening with regard to ante-historical periods." (History of Ancient Skt.-Lit. MaxMuller. p. 13).
"Language alone has preserved a record wh ch would Otherwise have been lost". (Cambridge history of India, Vol. I.p. 41).
(2) Language by W.D. Whitney).
(3) Whitaney (American oriental See. Proceedings 1867 Oct.).

किया जाए और दक्षिण भारतीयों से फूट पैदा करने के लिए द्रविड़ादि दाक्षिणात्यों को 'दस्यु' माना जाए, जबकि वेदों में ऐसा भाव कदापि नहीं है। वेदोल्लिखित आर्य-दस्यु संघर्ष को उत्तर भारतीयों की दक्षिणभारतीयों पर विजय के रूप में चित्रित किया गया, जिससे कि दक्षिण भारतीयों को उत्तरभारतीयों से घृणा और द्वेषभाव उत्पन्न हो और ऐसा हुआ भी और आज उत्तर-दक्षिण भारत का भेद भारत की एक बड़ी भारी समस्या बन चुका है, जितनी बड़ी हिन्दू-मुस्लिम समस्या है। यह सब गलत, असत्य लौर भ्रामक इतिहास लिखने के कारण हुआ और आज तक भी इस भ्रम, त्रुटि या भूल के परिमार्जन का प्रयत्न नहीं हुआ है।

अब वेदों के आधार पर आर्यादिपदों की मीमांसा करेंगे, जिससे कि भ्रमनिवारण होकर सत्य का ज्ञान हो और उत्तर-दक्षिण का भेद समाप्त हो।

योरोपियन जातियाँ विशेषत. जर्मन शासक (यथा हिटलर आदि) अपने को 'मूल आर्य' मानकर अत्यन्त गर्व अनुभव करते थे, परन्तु भारतीयशास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार 'जर्मन' घोर म्लेच्छ हैं। 'म्लेच्छ' शब्द का स्पष्टीकरण भी आगे किया जायेगा।

आर्य-दस्यु सम्बन्धी कुछ वैदिक मन्त्र द्रष्टव्य है—

विद्वन्! वज्रिन्! दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र।[1]

अभिदस्युं बकुरेण धमन्तोरुज्योतिश्चक्रथुरार्याय।[2]

मिथ्याभिमानी राथ आदि जर्मन लेखक 'आर्य' शब्द की व्युत्पत्ति, अपने द्वारा कल्पित, कृषि के अर्थ में प्रयुक्त 'अर्' धातु से बतलाते हैं और कहते हैं कि 'आर्य' शब्द का मूलार्थ है 'कृषक'। कोई लेखक 'अर्' को गत्यर्थ में बताकर घोषित करते हैं कि 'आर्य' यायावर या घुमक्कड़ जाति का नाम था। परन्तु संस्कृतव्याकरण में 'अर्' धातु का कहीं पता नहीं है। इसीसे जर्मनसंस्कृतज्ञों के अल्पज्ञत्व, मिथ्यात्व और कल्पना पोढ़त्व का आभास हो जायेगा। भारतीयसत्यपरम्परा का अनुसरण करते हुए वेदभाष्य-कार सायणाचार्य ने 'आर्य' शब्द के निम्न अर्थ किये हैं—विदुषोऽनुष्ठातॄन्[3], विद्वांसः स्तोतारः[4], अरणीयं सर्वैःगन्तव्यम्[5], उत्तमं वर्णं त्रैवर्णिकम्[6], मनवे[7], कर्मयुक्तानि[8],

---

१. ऋग्वेद (१।१०३);
२. ऋग्वेद (११।११७।२१;
३. वही (१।५१।८);
४. वही (१।१३०।३)
५. वही (१।२४०।८)
६. वही (३।३४।९)
७. वही (४।२६।२);
८. वही (६।२२।१०)

श्रेष्ठानि[1] अर्थात् आर्य हैं - विद्वान्, अनुष्ठाता, स्तोता, विज्ञ, अरणीय या सर्वगन्तव्य[2] ('आर्य' शब्द का एक अर्थ 'ऋजु' यानी सीधासाधा मनुष्य भी समझना चाहिए), कर्मयुक्त श्रेष्ठ (धार्मिक) मनुष्यमात्र ही 'आर्य' पदवाच्य था। ऋग्वेद क्या रामायण, पुराण, महाभारत, धर्मशास्त्र आदि में कहीं भी 'आर्य' शब्द जाति, वंश या नस्ल का बोधक नहीं है। 'आर्य' के विपरीत ही 'अनार्य' या 'दस्यु' जो वेद के अनुसार अकर्मा, मूर्ख, अन्यव्रत, और अमानुष (पशुतुल्यआचरण का) था,[3] ऐसे दस्यु का वध करने की ऋषि इन्द्र से प्रार्थना करता है। 'दस्यु' या 'आर्य' शब्द किसी जातिविशेष के बोधक नहीं थे। 'दस्यु' का पर्यायवाची शब्द ही 'अनार्य' था। प्राय: पाश्चात्य लेखक 'अनार्य' शब्द का अर्थ दक्षिणभारतीय द्रविड़ादि या राक्षसादि ग्रहण करते हैं, परन्तु दक्षिण भारत का शासक प्रसिद्ध रावण, रामायण में अपने को 'आर्य' और अपने सोदर्य भ्राता विभीषण को 'अनार्य' घोषित करता है।[4] अत: आर्य-अनार्य में जाति या नस्ल का प्रश्न उत्पन्न कहाँ होता है, जब दो भ्राताओं में परस्पर एक अपने को आर्य और दूसरे को 'अनार्य' मानता था।

श्री रामदास गौड़ ने बिल्कुल ठीक ही लिखा है—"किन्तु वेद के प्रयोग एवं यास्क के अर्थ में 'आर्य' शब्द मनुष्यमात्र के लिए प्रयुक्त दीखता है[5] ...... आर्यावर्त का अर्थ हुआ (श्रेष्ठ) मनुष्यों का आवास और यहीं से मनुष्यजाति चारों ओर फैली।"[6]

प्राचीनकाल में, नाटकों में भारतीय स्त्री अपने पति को आर्यपुत्र' कहती थी, इसका भी यही भाव था कि उसका पति सर्वश्रेष्ठ है, यदि 'आर्य' शब्द जातिवाचक होता तो कोई स्त्री ऐसा नहीं कहती। वेद में आर्य शब्द का अर्थ 'श्रेष्ठ' या 'स्वामी' भी है, वैश्यों को प्राय: श्रेष्ठी (सेठ) और 'अर्य' कहा जाता था। साधु (साधुकार-

---

१. वही (६।३३।१०);

२. तुलना कीजिये—रामायण में राम का आर्यत्व (सर्वलोकगमनीयत्व)—

सर्वदाभिगत: सद्भि: समुद्र इव सिन्धुभि: ।
आर्य: सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शन: ।। (रामायण १।१।१६)

अत: सायण का 'आर्य' शब्द का अर्थ 'सर्वगन्तव्य' काल्पनिक नहीं, ऋषि वाल्मीकि के वचन से उसकी पुष्टि होती है।

३. अकर्मा दस्यु: अमिनो अमन्तु अन्यव्रतो अमानुष: ।
त्वं तस्य अमित्रं हन वधो दासस्य दम्भये ।। (ऋग्वेद)

४. यथा पुष्करपत्रेषु पतितास्तोयबिन्दव: ।
न श्लेषमभिगच्छन्ति तथानार्येषु सौहृदम् ।।
यथा पूर्वं गज: स्नात्वा गृह्य हस्तेन वै रज: ।।
दूषयति आत्मनो देहं तथानार्येषु सौहृदम् ।। युद्धकाण्ड, १६।११-१४);

५. हिन्दुत्व (पृ० ७७१)

६. गीता में 'अनार्य' शब्द का यही भाव है—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ।। (गीता २।२)

साहूकार) शब्द भी इसी अर्थ में प्रयुक्त होता था। अतः 'आर्य' शब्द का मूलार्थ था—साधु या श्रेष्ठ (पुरुष), वही सभ्य, सज्जन था, इसके विपरीत अनार्य, दस्यु, असज्जन शब्द थे और आज इसी भाव को इस प्रकार कहते हैं 'यह आदमी चोर है।' यहाँ 'चोर' शब्द अनार्य या असभ्य का वाचक है।

दैत्यों ने योरोप बसाया

मनुस्मृति में कहा गया है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षरेन् सर्वमानवाः॥

उपर्युक्त वचन, यद्यपि आर्यावर्तनिवासी के आदर्श चरित्र एवं सर्वविद्या विशारदत्व की दृष्टि से कहा गया है, परन्तु आर्यावर्त से ही मनुष्यजाति का पृथ्वी के सभी देशों में प्रसार और उपनिवेशन हुआ। इस विषय का यहाँ केवल संक्षिप्त सर्वेक्षण करेंगे।

उल्टी गंगा बहाई

पाश्चात्य लेखकों ने जानबूझकर या अज्ञानवश 'आर्यजाति' की कल्पना करके **उल्टी गंगा बहाई** कि यूरोप के किसी देश की मूलभाषा इण्डोयूरोपियन थी और उसको बोलने वाले 'आर्य' उसी योरोपियनमूल से प्रस्थान करके ईरान, भारतादिदेशों में जा बसे। परन्तु हम यहाँ एक अत्यन्त विस्मयकारक सत्य का उद्घाटन कर रहे हैं जो संसार में अभी अज्ञात है कि जिस वामन विष्णु के दश अवतारों की भारतीयप्रजा सर्वाधिक पूजा करती है, उसी कश्यपपुत्र वामन विष्णु आदित्य (अदितिपुत्र) ने, बलिनेतृत्व में देवों से संघर्षरत दैत्यदानवों को, भारतवर्ष से चातुर्यपूर्वक निकाल दिया और उन्हीं दैत्यदानवों ने सम्पूर्ण योरोप और रूस के अनेक देश बसाये। योरोप के देशों के नाम आज भी उन्हीं दैत्यों के नाम पर प्रसिद्ध हैं, इस परम आश्चर्यजनक तथ्य का रसास्वादन अभी अभी पाठक करेंगे।

योरोप और भारत की भाषाओं में साम्य का कारण यही है कि विक्रम से १२००० वि० पू० देव और दैत्य-दानव (असुर) साथ-साथ भारत में रहते थे। वस्तुतः ऋषि कश्यप की सन्तान देवासुरगण मूल में भारतीयप्रजा ही थे। इन्द्रादिदेवों से पूर्व दैत्यदानवअसुरों का सम्पूर्ण पृथ्वी पर साम्राज्य था।

'असुराणां वा इयं पृथिवी आसीत्'; (काठकसंहिता) तथा (तै० ब्रा० ३।२।६।६)

वाल्मीकि ने लिखा है—

दितिस्त्वजनयत् पुत्रान् दैत्यांस्तात यशस्विनः।
तेषामियं वसुमती पुरासीत् सवनार्णवा॥ (अरण्यकाण्ड ४।१५)

"कश्यपपत्नीदिति ने यशस्वी दैत्यसंज्ञकपुत्रों को उत्पन्न किया, प्राचीनकाल में वन, पर्वत और समुद्रसहित सम्पूर्णपृथ्वी पर असुरों का साम्राज्य था।"

हिरण्यकशिपु दैत्यों का आदिसम्राट् था, इसी के नाम से क्षीरसागर को

कशिपुसागर (कैस्पियनसागर) कहते थे, जो आज भी इसी नाम से विख्यात है, निश्चय उस समय सम्पूर्णपृथ्वी पर असुरों का राज्य था, इसीलिए उन्हें 'पूर्वदेव' कहते हैं। ज्येष्ठ अदितिपुत्र 'वरुण' के असुरों से घनिष्ठ सम्बन्ध थे। वरुण, सम्भवत: हिरण्यकशिपु के प्रधान पुरोहित थे, इनको "असुरमहत्' कहा जाता था और दीर्घकालतक पारसीलोग ईरान में 'अहुरमज्दा' के नाम से वरुण की पूजा करते थे। हिरण्याक्ष ने पृथ्वी को दो भागों में बांटा।[१] समुद्रीभागों पर वरुण का साम्राज्य था, इसीलिए समुद्र को वरुणालय और वरुण को 'यादसांपति' कहा जाता था। वरुण के वंशज भृगु कवि, शुक्र, शण्ड और मर्क के असुरों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहे। शुक्रादि असुरों के प्रधानपुरोहित थे। पृथ्वी पर देवासुरों के द्वादशमहासंग्राम हुए, जिनका पुराणों में बहुधा उल्लेख है। अन्तिम (द्वादश) देवासुरसग्राम का विजेता नहुष का अनुज रजि था। इसी युद्ध में वामनविष्णु ने देवों के लिए असुरों से भूमि माँगी— "असुराणां वा इयं पृथिव्यासीत् ते देवा अब्रुवन् दत्त नोऽस्या इति।"[२] उस समय समस्त लोक (पृथ्वी की प्रजायें) असुरों से आक्रान्त थे—

बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमे युगे।
दैत्यैस्त्रैलोक्याक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत्॥ (वायु०)

वामन ने बलि से भूमियाचना की, शुक्राचार्य के विरोध करने पर भी बलि ने भूमिदान देना स्वीकार कर लिया और विक्रम विष्णु ने समस्त भूमि पर स्वचातुरी से अधिकार कर लिया। बलिनेतृत्व में असुरगण भारतवर्ष छोड़कर आज से १४००० वर्ष पूर्व योरोप की ओर पलायन कर गये, वहाँ उन्होंने अपने नामों से छोटे-छोटे देश उपनिविष्ट किये। शुक्राचार्य के तीन असुरयाजक प्रभावशाली पुत्र थे, शण्ड, मर्क और वरूत्री।[३]

दानवों में रहने के कारण शण्ड, मर्क आदि भी दानव ही कहलाते थे, अत: दानवमर्क ने वर्तमान डेनमार्क (दानवमर्क) देश बसाया और षण्डदानव ने स्कैन्डेनिविया देश बसाया। कालकेय दैत्य के नाम से केल्ट प्रसिद्ध हुआ, 'दैत्य' शब्द का अपभ्रंश डच (Dutch) हुआ। जर्मन का प्राचीन नाम डीटशलैंड (दैत्यलैंड) था, दनायु के नाम से 'योरोप की डेन्यूब नदी प्रसिद्ध हुई, असुर के कारण सीरिया का नाम असीरिया हुआ, मद्र से मीडिया। दानवेन्द्र बल के नाम से बेलजियम—(बल दैत्य),[४] पणि असुरों ने फिनिशलैंड बसाया, श्वेत दानव के स्वीडन देश बसाया, श्वेत नाम से ही स्विट्जरलैंड प्रसिद्ध हुआ, निकुम्भ दैत्य से नीमिख (आष्ट्रिया) प्रसिद्ध हुआ। एक गाथ दैत्य था, जिसके नाम से फ्रांस में 'गाथ' जाति प्रथित हुई। 'दैत्य' शब्द का अपभ्रंश टीटन

---

१. हिरण्याक्षो हतो द्वन्द्वे प्रतिघाते दैवतैः।
दष्ट्रया तु वराहेण समुद्रस्तु द्विधा कृतः॥ (मत्स्यपुराण ४७।४७)

२. काठकसंहिता (३१।४),

३. शण्डमर्कौ वा असुराणां पुरोहितावास्ताम् (मैत्रायणीसंहिता ।६।३)

४. बेलजियम शब्द का अन्तिम अंश 'जियम्' शब्द भी दैत्यशब्द का अपभ्रंश है।

है, जो अंग्रेजों के पूर्वज थे। 'दैत्य' शब्द के अनेक विकार हुए—जैसे डीट्श, डच, टीटन, जियम, डेन इत्यादि। योरोप और अफ्रीका के निम्न देश आज भी दैत्यदानवों के नामों को धारण किये हुए हैं—

(१) डेनमार्क—दानवमर्क, (२) स्केन्डेनेविया—षण्डदानव, (३) डेन्यूब—दनायु (नदी),[1] (४) केल्ट—कालकेय, (५) डच—दैत्य—(हालैंड), (६) बेलजियम—बलिदैत्य, (७) डीटशलैंड (जर्मन)—दैत्यदेश, (८) फिनिश—पणि, (९) स्विज्—श्वेत, (१०) स्वीडन—श्वेतदानव, (११) म्यूनिख—निकुम्भ, (१२) टीटन—दैत्य, (१३) बेरूत—वरूत्री, (१४) लेबनान—प्रह्लाद, (१५) लीबिया—ह्लाद, (१६) त्रिपोली—त्रिपुर (१७) सुमाली—सोमालीलैंड (अफ्रीका)।

सप्तपातालों में असुरनिवास

प्राचीन भारत में पृथ्वी के समुद्रतटवर्ती देशों की संज्ञा पाताल या रसातल प्रसिद्ध थी। पयस्+तल का ही रूप पाताल हो गया, इससे स्पष्ट अर्थ है समुद्रतटवर्ती (जलमय) भूमि। रस भी जल को कहते हैं, अतः रसातल इसका पर्याय हुआ। 'तल' देश समुद्रीय भू-भागों की ही संज्ञा थी। ऐसे सात तल (भू-भाग) पुराणों में बहुधा उल्लिखित हैं—अतल, सुतल वितल, महातल, श्रीतल (रसातल) और पाताल। ये पातालादि देश पश्चिमी एशिया, अरब देशों, अफ्रीका एवं अमेरिका के समुद्र-तटवर्ती भू-भागों के नाम थे, जहाँ पर भारत से निष्कासित असुर उपनिविष्ट हो गये।

अरबों[2] की एक जाति, उत्तरी मिस्र के तल अमर्रान् नामक स्थान में रहती थी यह तेल Tel) तल शब्द का अपभ्रंश है, तुर्की में अनातोलिया और इजरायलदेश में तेल-अबीब में तेल (Tel) शब्द 'तल' का ही विकार है। 'तल' शब्द देश या स्थान का पर्यायवाची था। पंजाबीभाषा में भूमि को आज भी थल्ले या तल्ले कहते हैं जो निश्चय ही तल या

---

१. दनु की भगिनी दनायु थी, जिन्होंने वृत्र का पालन किया था—
"तं दनुश्च दनायुश्च मातेव च पितेव च परिजगृहतुः
तस्माद् दानव इत्याहुः (श० ब्रा० १।६।२।९),
दनायु के नाम से डेन्यूब नदी प्रसिद्ध हुई।

२. अरबों को ही गन्धर्व कहते थे, ये वरुण की प्रजा थे—"वरुण आदित्यो राजेत्याह तस्य गन्धर्वा विशः (श० ब्रा० १३।४.३।७), वरुण की राजधानी सूषा नगरी (ईरानी) पुराणों में उल्लिखित है—सूषा नाम रम्या पुरी वरुणस्यापि धीमतः (मत्स्यपु०) पारसी और अरब दोनों में ही वरुण का साम्राज्य था, अरब (गन्धर्व) वरुण को ताज (यादसांपति) कहते थे—'Taz the fourth ancestor of Azi Dahak is founder of the race of the Arabs;' वृत्रासुर वरुण की चतुर्थ पीढ़ी में था, उसी का नाम अहिदानव (अजिदाहक) था।

स्थल का विकार है। 'तुर्क' भी 'तुरग' शब्द से बना है, जो गन्धर्वों का प्रसिद्ध वाहन था। विभिन्न देशों में घोड़े की विभिन्न संज्ञायें प्रसिद्ध थीं, बृहदारण्यकोल्लिखित इस ऐतिहासिक तथ्य से भी संस्कृत का मूल या आदिमभाषा होना सिद्ध होता है—"हय इति देवान् अर्वा इत्यसुरान्, वाजीति गन्धर्वान्, अश्व इति मनुष्यान्' (बृ० उ० १।१।१), घोड़े के तुरग (तुर्क) आदि और पर्याय अनेक उपजातियों में प्रसिद्ध हुये। संस्कृत के अतिभाषा एक-एक शब्द के शतशः पर्याय थे जिनमें से एक-एक देश या जाति ने एक-एक पर्याय ग्रहण किया। अश्वशब्द को इंगलैंडवासी दैत्यों (टीटन)—अँग्रेजों ने ग्रहण किया, जिसका विकार आज Horse (हार्स) हो गया। तुर्कों ने तुरग और अरबों (गन्धर्वों) ने 'अर्वन्' शब्द ग्रहण किया। इसी प्रकार अँग्रेजी में 'सूर्य' का विकार सन (Sun) और मास (चन्द्रमस्) का विकार मून (Moon) एकमात्र पर्याय मिलते हैं।

पुराणों में 'गभस्तल' का अधिपति राक्षसेन्द्र सुमाली को बताया है। आज अफ्रीका का विशाल देश सोमालीलैंड, उसी राक्षसेन्द्र के नाम से विख्यात है। रामायण, उत्तर-काण्ड में विष्णु द्वारा सुमाली की पराजय का वर्णन है, परास्त सुमाली आदि राक्षस लंका से पलायन करके पाताल अर्थात् अफ्रीका के सोमालीलैंड इत्यादि देशों में बस गये।[1] आज, अफ्रीका के अनेक देशों नदी पर्वतों के नाम संस्कृत के विकार हैं, इससे किसी को विमति नहीं हो सकती।

यथा—केन्या—कन्या—(कन्याकुमारी) सुदानव—सूडान,
अंगुला—अंग त्रिपोली—त्रिपुर
वेंगुला—वंग माली—माली
नाइल—नील (नदी) सोमाली—सुमाली
ईजिप्ट—मिस्र इत्यादि
त्रिनिदाद्—त्रिदैत्य,

भविष्यपुराण में उल्लिखित है किसी काश्यप ब्राह्मण ने मिस्रदेशवासी म्लेच्छों को ज्ञान दिया[2] और उनको ब्राह्मण बनाया। अतः अफ्रीका में मिश्रादि देशों में भारतीयसंस्कृति का पूर्ण प्रचार था।

पण्डित भगवद्दत्त के अनुसार अफ्रीका का 'लीबिया' देश 'प्रह्लाद' शब्द का अपभ्रंश है।[3] वितल में प्रह्लाद का राज्य था, अतः लीबिया 'वितल' हो सकता है।

'मय' एक अत्यन्त प्राचीन दानवपुरुष या जाति थी, पुराणों में मय दानवेन्द्र को शुक्राचार्य का पुत्र कहा गया है। मयजाति की सभ्यता मध्यअमेरिका के देश मैक्सिको आदि में मिली है, पुराणों में इसकी 'तलातल' संज्ञा प्राप्त होती है। मय का पुत्र था बलदानव, इसका राज्य तलातल में था। सूर्यसिद्धान्त में लिखा है कि कृतयुग

१. त्यक्त्वा लंका गता वस्तुं पातालं सहपत्नयः (रा० ७।८।२२)
२. वासं कृत्वा ददौ ज्ञानम् मिस्रदेशे मुनिर्गतः
सर्वान् म्लेच्छान् मोहयित्वा कृत्वाथ तान् द्विजन्मनः ॥
३. द्रष्टव्य, भारतवर्ष का बृ० इ० भाग १, पृ० २१९;

के अन्त में मयदानव ने शाल्मलिद्वीप में घोर तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर विवस्वान् (सूर्य) ने उसे ग्रहों का चरित (ज्योतिषशास्त्र) बताया ।[१] मय की भगिनी सरण्यू का विवाह सूर्य (विवस्वान्) से हुआ था। कुछ लोग शाल्मलिद्वीप वर्तमान ईराक को मानते हैं, जहाँ का शासक शाल्मनसेर था। वर्तमान खोजों के अनुसार मयसभ्यता का केन्द्र मध्य अमेरिका में मैक्सिको आदि देश थे। मयजाति ज्योतिर्विज्ञान और स्थापत्यकला में सर्वोत्कृष्ट थी। मय को ही विश्वकर्मा कहते थे। मयदानवों ने विश्व में सर्वश्रेष्ठ नगर और भवन बनाये थे। महाभारतकाल में युधिष्ठिर की सभा और इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) मय दानव ने बसाई थी। मयजाति भवननिर्माणकला मैं विश्व में विख्यात थी। डेनीकेन आदि के मत में मयजाति किसी दूसरे ग्रह से आकर मैक्सिको में बसी, उनकी भवनकला इतनी उत्कृष्ट है कि डेनीकेन के मत में पृथ्वीवासी ऐसा भव्य निर्माण नहीं कर सकते। डेनीकेन की अन्तरिक्षसम्बन्धी कल्पना में कितना सत्यांश है, यह तो हम नहीं जानते, परन्तु, सूर्यसिद्धान्त और महाभारतग्रन्थों से मय असुरों के ज्योतिष एवं शिल्पसम्बन्धी उत्कृष्टज्ञान की पुष्टि होती है। मयशिल्पियों को पर्वत काटने एवं सुरंग बनाने की कला विशेषरूप से ज्ञात थी, जिसकी पुष्टि भारतीयलेखों एवं प्रत्यक्ष मैक्सिको एवं मिस्र के पिरामिड आदि के देखने से होती है।

पणि

रसातल में पणि एवं निवातकवच नाम के असुर रहते थे—'ततोऽधस्ताद्रसातले दैत्योःदानवाः पणयो नाम निवातकवचा : कालेया हिरण्यपुरवासिनः।''[२] महाभारत में अर्जुन द्वारा हिरण्यपुरवासी निवातकवच दानवों के वध का विस्तृत उल्लेख है। पणियों का रसातलस्थ—हिरण्यपुर समुद्रकुक्षि में बसा हुआ था, और असुरों की संख्या तीन करोड़ थी वहाँ पर पौलोम, कालकेय और कालखंज दानव रहते थे।[३] यह आकाशस्थ पुर था।[४]

यह हिरण्यपुर प्राचीन बैबीलन का इतिहासप्रसिद्ध नूपुर शहर था, जो असुरों का विख्यात नगर था, इसी के निकट उर नगर था, जो असुरसभ्यता का अन्य विख्यात केन्द्र था। इन्द्र के समय में यहां पणिनाम के असुर रहते थे, जिन्होंने इन्द्र की गौ

---

१. भूमिकक्षा द्वादशेऽब्दे लंकायाः-प्राक् च शाल्मलेः।
मया प्रथमे प्रश्ने सूर्यवाक्यमिदं भवेत् ॥ (शाकल्योक्त ब्रह्मसिद्धान्त १।१६८)

२. भागवतपुराण (५।२४।३०);

३. निवातकवचा नाम दानवा मम शत्रवः।
समुद्रकुक्षिमाश्रित्य दुर्गे प्रतिवसन्त्युत।
तिस्रः कोट्यः समाख्यातास्तुल्यरूपबलप्रभाः॥ (महाभारत ३।१६८।७१-७२)

४. तदेतत् स्वपुरं दिव्यं चरत्यमरवर्जितम्।
हिरण्यपुरमित्येवं ख्यायते महत् ॥ (वही ३।१७३।१२-१३)

चुराकर किसी गुहा में छिपा दी थी। इन्द्र ने सरमा नाम की देवशुनी (गुप्तचरी) गायों की खोज के लिए प्रेषित की थी, इसका आख्यान वैदिकग्रंथों (ऋग्वेदादि) में है, ऋग्वेद का सरमापणिसंवाद विख्यात है। वेदमन्त्रों एवं बृहद्देवताग्रन्थ में रसा (नदी) तटवासी पणियों का उल्लेख है,[1] इसी 'रसा' के नाम से वह देश 'रसातल' कहलाया। पारसी धर्मग्रन्थ अवेस्ता में रंहानदी का उल्लेख है, आज पश्चिमी एशिया में इसको सीर नदी कहते हैं।

उत्तरकाल में पणिगण योरोप की ओर प्रस्थान कर गये, जहाँ उन्होंने फिनिशिया या फिनलैंड बसाया।

म्लेच्छजातियों का उत्तर में निवास

वैदिकग्रंथों एवं इतिहासपुराणों में बहुधा उल्लिखित है अनेक क्षत्रिय (भारतीय) समय-समय पर अनेक कारणों से उत्तर, पूर्व और पश्चिम की ओर गये और उन्होंने वहाँ देश बसाकर शासन किया। आदिकाल में सभी मनुष्य 'आर्य' (सज्जन) थे, कालान्तर में शनैः शनैः मनुष्यों में दस्युता या अनार्यत्व की वृद्धि होने लगी। भाषा की अशुद्धि के कारण वे मनुष्य 'म्लेच्छ' कहलाने लगे। प्राचीनभारतीय ग्रंथों में इस तथ्य का संकेत है कि कौन-सी क्षत्रिय जातियाँ म्लेच्छ हुई, सर्वप्रथम, वैदिक ग्रन्थों से प्रमाण उद्धृत करते हैं—(१) स म्लेच्छस्तस्मान्न ब्राह्मणो म्लेच्छेद्। असुर्य्या ह्येषा वाक्।[2] (२) असुर्या वै सा वाग् अदेवजुष्टा[3] (३) म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्द इति विज्ञायते।[4] अतः आरम्भ में भाषा के अशुद्धोच्चारण के कारण जातियां म्लेच्छ हुई, पुनः कालान्तर में धर्माचरणच्युति के कारण म्लेच्छता मानी गई।[5] मनु ने क्रिया लोप एवं शास्त्रों के प्रदर्शन के कारण निम्न क्षत्रियजातियों को म्लेच्छ और दस्यु कहा है—पौण्ड्र, उड्र, द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पल्लव, चीन, किरात, दरद और खश।[6]

---

१. असुराः पणयोनाम रसापारनिवासिनः।
गास्तेऽप्यनह्लु रिन्द्रस्य न्यगूहँश्चप्रयत्नतः।
शतयोजनविस्तारामतरत्ताम् रसां पुनः।
यस्यापारे परे तेषां पुरमासीत्सुदुर्जयम्।
पदानुसारपद्धत्या रथेन हरिवाहनः।
गत्वा जघान स पणीन् गाश्चताः पुनराहरत्॥ (बृहद्देवता अध्याय ८)

२. श० ब्रा० (३।२।१।२४,

३. ऐ० ब्रा० (६।५),

४. भार० गृ० सू०

५. व्युच्छेदात्तस्य धर्मस्य निर्यायोपपद्यते।
ततो म्लेच्छा भवन्त्येते निर्घृणा धर्मवर्जिताः॥ (महा० अनु० १४६।२४)

६. मनुस्मृति (१०।४२-४५);

पाश्चात्य भ्रामकमतों से प्रभावित होकर अनेक भारतीयलेखकों में 'म्लेच्छ' और 'असुर' शब्दों में विदेशीमूलत्व खोजने की प्रवृत्ति बन गई। डा० काशीप्रसाद जायसवाल के आधार पर श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने लिखा—"वास्तव में 'म्लेच्छ' धातु में एक विदेशी शब्द छिपा हुआ है, वह उस 'सामी' शब्द का रूपान्तर है जो हिब्रू (यहूदी) में 'मेलेख' बोला जाता है। संस्कृत में उसका 'म्लेच्छ' बन गया।" इसी प्रकार असुर शब्द के विषय में श्रीजायसवाल का विचार था, "इस प्रकार असुरशब्द शुरू में स्पष्टतः अश्सुर (असीरियावासी) लोगों का और म्लेच्छ उनके राजाओं का वाचक था।[1]"

लोकमान्यतिलक के मत में अथर्ववेद (५।१३) मन्त्रों के प्रयुक्त तैमात, आलगी, विलिगी उरुगूला, ताबुव आदि शब्द काल्डीयन हैं।[2] कुछ अन्य लेखकों के मत में ऋग्वेद में 'मना:' आदि शब्द जो भार (परिमाण) के वाचक हैं, काल्डीयन मूल के हैं। इसी प्रकार डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के मत में अष्टाध्यायी में प्रयुक्त कन्था, अर्म, जाबाल, कार्षापण और पुस्तक आदि शब्द ईरानी मूल के हैं और इसी प्रकार अन्य बहुत से लेखकों ने विपुल ऊँटपटाँग कल्पनायें कर रखी है कि अमुक शब्द विदेशी है, अमुक भारतीयविद्या का मूल अमुक विदेश है, इत्यादि। यह समस्त विकृतियाँ इतिहास के यथार्थज्ञान के न होने से है। उपर्युक्त तथाकथित इतिहासकारों को उन देशों का इतिहास देखना चाहिए कि वे देश कितने प्राचीन हैं। काल्डिया या चाल्डिया देश भारतीय चोलक्षत्रियों ने उपनिविष्ट किया और बैबीलन या बावल का प्राकृत नाम बबेरु था, जिसका बबेरुजातक में उल्लेख है, इसका शुद्धरूप था बभ्रु। चोल और बभ्रु दोनों ही क्षत्रियजातियाँ विश्वामित्र कौशिक की वंशज थीं। अफ्रीका का एक प्राचीन नाम कुशद्वीप था, अतः कुश या कौशिक प्राचीनभारतीयक्षत्रिय थे, जिन्होंने मध्यपूर्व एशिया, अफ्रीका के अनेक देशों में सभ्यताओं का पल्लवन किया। पुराणों में शक[3] नरिष्यन्त की सन्तान और यवन[4] तुर्वसु के वंशज कथित हैं। अतः चोल, बभ्रु, शक, यवनादि के पूर्वज भारतीय थे और सभी शुद्ध संस्कृत बोलए थे. वे बाह्य देशों में बसने के कारण, क्रियालोप व शास्त्रों के अदर्शन के कारण—(संस्कारहीन—असंस्कृत= अशुद्ध) भाषा बोलने लगे।[5] अतः यथार्थ इतिहासज्ञात होने पर संस्कृत ही मूलभाषा सिद्ध होती है।

अतः म्लेच्छजातियों एवं म्लेच्छभाषाओं का मूल भारत ही था, इसकी अब यहाँ कुछ विशद विवेचना करते हैं, जिससे भ्रमों का निवारण हो।

---

१. भारतीय इतिहास की रूपरेखा (पृ० ५३८, जयचन्द्र विद्यालंकार कृत) तथा Vedic Chronology, Chaldean and Indian Vedas article (P. 125-144)
२. भण्डारकस्मारकग्रंथ में तिलक का लेख चाल्डीयन और भारतीयवेद, ।
३. नरिष्यन्तः शकाः पुत्राः (हरिवंश पु० १।१०।२८),
४. तुर्वसोर्यवनाः स्मृताः (महाभारत आदिपर्व)
५. द्रष्टव्य, मनुस्मृति १०।४२-४५)

मिस्र देश का इतिहास मनु से आरम्भ

प्राचीन मिस्रनिवासी अपने वंश का प्रारंभ वैवस्वतमनु से मानते थे—The priets told Herodotus that there had been 341 generation in both of King and high priests from Menes (मनु) to Sethos and this he calculates at 11340 years[१] इसका अर्थ है कि मनु से सैथोज तक राजाओं और पुरोहितों की ३४१ पीढ़ियाँ थी और ११३४० वर्ष व्यतीत हुए।" भारतीयकालगणना में मनु का लगभग यही समय है, यह अन्यत्र सिद्ध किया जायेगा। उत्तरकालीन अनेक मिस्रीराजाओं के नाम भी भारतीय थे, तथा, अनु, औशिनर शिबि इत्यादि।[२]

ययाति का कनिष्ठ पुत्र अनु था। इसका कुल आनवकुल कहलाया। इसके वंशजों ने न केवल पश्चिमी भारत[3] में राज्य स्थापित किये, बल्कि योरोप और अफ्रीकाके अनेक देशों में राज्य स्थापित किये। यूनान में डेरोरियन और आयोनियन (यवन=आनव) क्रमशः द्रुह्यु और अनु के वंशज थे। द्रुह्यु के वंशज गान्धारों और काम्बोज म्लेच्छों ने अफगानिस्तान और ईरान में उपनिवेश स्थापित किये। काम्बोज शब्द की व्युत्पत्ति के हेतु महाभारत का निम्न श्लोक द्रष्टव्य है, जिसमें ययाति अपने पुत्र द्रुह्यु को शाप देता है—

तस्माद् द्रुह्यो प्रियः कामो न ते सम्पत्स्यते क्वचित्।
अराजा भोजशब्दं त्वं तत्र प्राप्स्यति सान्वयः ॥[४]

'काम+भोज' शब्द मिलकर 'काम्बोज' शब्द बना, जो द्रुह्यु के वंशज थे, ये भारत से निष्कासित होकर दक्षिणी ईरान में बस गये और वहीं इन्होंने राज्य स्थापित किया। तुर्वसु और अनु के ही वंशज ही यवन हुये। मिस्रदेश के इतिहास में हेरोडोटस के लेखों के आधार पर पं० भगवद्दत्त ने एक अद्‌भुत एवं आश्चर्यजनक खोज की है जो भारतीय इतिहास की विकृति को दूर करती ही है, साथ प्राचीनभारत का प्राचीन मिस्र से घनिष्ठ संबंध जोड़ती है—प्राचीन यूनानी इतिहासकार हैरोडोप्ट्स ने देवों की तीन श्रेणियों का वर्णन किया है, जिसको पाश्चात्यलेखक नहीं समझ सके। पण्डित भगवद्दत्त ने इनका रहस्य समझकर लिखा है कि पुराणों में उल्लिखित दैत्य, देव और दानव ही देवों की तीन श्रेणियाँ थीं। दैत्यों को पूर्वदेव कहा जाता था। वे प्रथमश्रेणी देव दे, द्वितीयश्रेणी में इन्द्रादि द्वादशदेव थे और तृतीयश्रेणी में विप्रचित्ति, वृत्र आदि दानव थे। इन तीनों में सर्वाधिक कनिष्ठ क्रमशः विष्णु (हरकुलीज) बाण (पान) और वृत्र (बैक्सस) थे।[५] पं० भगवद्दत्त बैक्कस की पहचान ठीक प्रकार से नहीं कर

---

१. The Ancient history of East by Philips Smith, p. 59.
२. द्रष्टव्य—The Cradle of Indian history by C.R. Kishnamacharlu
३. केकय, शिबि, मद्र सौवीर आदि अनु के वंशज थे।
४. महाभारत (१।८४।२२)
५. The Greeks regard Hercules Bacchus and Pan as the youngest of gods (Herodotus p. 189);

पाये। यह बैक्कस विप्रचित्ति[1] न होकर वृत्रत्वाष्ट्र था। पान (pan) की पहचान भी पण्डित जी नहीं कर पाये, यह पान बाण (बाणासुर) ही था। यह दैत्यों का अन्तिम महान्शासक था, जो बलि का पुत्र था।

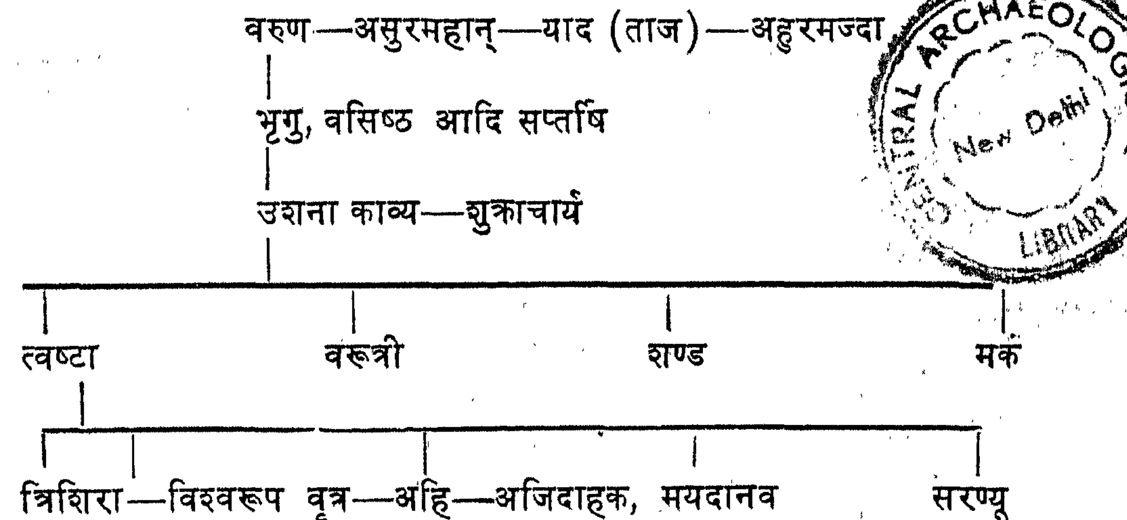
मिस्री पुरोहित हरकुलीस (विष्णु) के जन्म से अमेसिस के राज्य तक १७००० वर्ष व्यतीत हुए मानते थे।[2]

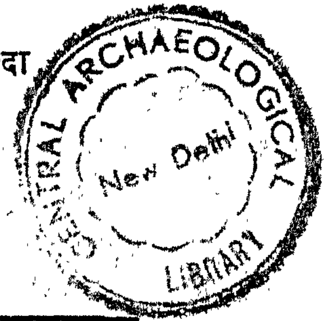
अदिति के द्वादशपुत्र ही प्रसिद्ध द्वादश आदित्य देव थे[3], इनमें आठ मुख्य माने जाते थे।[4]

मिस्री कालगणना वैवस्वत मनु के सम्बन्ध में पूर्णतः ठीक है, परन्तु वृत्र और विष्णु के संबंध में कुछ त्रुटिपूर्ण प्रतीत होती हैं। यदि मिस्रीगणना को ठीक माना जाय तो विष्णु का समय वैवस्वत मनु से लगभग ६००० वर्ष पूर्व मानना पड़ेगा, जो प्रायः असम्भव प्रतीत होता है। यह सम्भव है कि हैरोडोटस के पाठ में ही त्रुटि हो।

वरुण और यम का राज्य ईरान-ईराक और योरोप अफ्रीका में

कश्यप और अदिति के ज्येष्ठतम पुत्र थे वरुण आदित्य। ये हिरण्यकशिपु के समकालीन थे। द्वितीय जन्म में भृगु, वसिष्ठ आदि सप्तर्षि इन्हीं वरुण के पुत्र थे। हिरण्यकशिपु की पुत्री दिव्या का विवाह वरुण के ज्येष्ठ पुत्र कवि भृगु से हुआ था। वरुण का संक्षिप्त वंशक्रम निम्न तालिका से प्रकट होगा और इससे यह भी ज्ञात होगा कि वरुणवंशजों का घनिष्ठ सम्बन्ध दैत्यदानवों (असुरों) से था वरन् वरुण के वंश में ही प्रसिद्ध दानव हुये—





---

१. "बैक्कस (विप्रचित्ति दानव) से, जो दैत्यों और देवों में सबसे छोटा है, मिस्र के पुरोहित इस (अमेसिस) तक १५००० वर्ष गिनते हैं।"
भा० बृ० इ० प्रथम भाग पृ० २१७;

२. Seventeen thousand years (from the birth of Hercules before the reign of Amasis the twelve gods; they (Egyptians) affirm (Herodotus P. 136);

३. द्वादशो विष्णुरुच्यते (महाभारत १।६५।१६);

४. अष्टानदेवां मुख्यानाम् इन्द्रादीनां महात्मनाम्। (वायुपुराण ३४-६२)

इनमें सरण्यू विवस्वान् (सूर्य) की पत्नी थी। प्रकट है कि विवस्वान्, वरुण के भ्राता होते हुए भी उनमें न्यून में न्यून चार पीढ़ियों का अन्तर था।

पहिले वर्णन कर चुके हैं कि सप्त पातालों में दैत्यदानवों का राज्य था, तृतीय पाताल, वितल में प्रह्लाद, अनुह्लाद तारक, और विश्वरूप त्रिशिरा के नगर थे अफ्रीका के त्रिपोली (त्रिपुर) में इसकी स्मृति अभी भी शेष है कि असुरों के प्रसिद्ध त्रिपुर अफ्रीका में ही थे, लीबिया में प्रह्लादराज्य था। त्रिपुरों का विस्तृत वर्णन अन्यत्र किया जायेगा। सुमाली दानवेन्द्र द्वारा उपनिविष्ट सोमालीलैंड आज भी इसी नाम से अफ्रीका में प्रसिद्ध है। बेरूत नगर 'वरूत्री'[1] का अपभ्रंश हैं, जहाँ शुक्रपुत्र वरूत्री का राज्य था। अरबजातियाँ वरुण के वंशज गन्धर्वों के ही अवशेष है, यह पहले ही सूचित कर चुके हैं। अरबदेशों और अफ्रीका में दानवों और राक्षसों का साम्राज्य था। उत्तरकाल में अफ्रीका के निकटवर्ती मारीशसद्वीप में मारीच[1] राक्षस का राज्य था, प्रकट है कि सुमाली, रावणादि राक्षसेन्द्रों का उपनिवेश अफ्रीका था।

ईरान में, प्रथमतः वरुण का साम्राज्य था, यहाँ आज भी सूषानगरी के अवशेष मिले हैं जो वरुण की राजधानी थी। वरुण को यादसांपति या गन्धर्वपति कहा जाता था.[2] प्रकटतः ईरान पश्चिमी एशिया, अरब देशों और अफ्रीका के समुद्रतटवर्ती देशों में गन्धर्वों (अरबों) ने राज्य स्थापित किये।

वरुण के उपरान्त कुछ शताब्दियों पश्चात् ईरान में विवस्वान् के ज्येष्ठपुत्र वैवस्वतयम का राज्य स्थापित हुआ, जो पितृदेश का शासक कहलाया। जिस समय भारतवर्ष में जलप्लावन आई, (वैवस्वतमनु के समय में), ईरान में हिमप्रलय (हिमयुग) आई थी। भारतीयग्रन्थों में यम का पर्याप्त वृतान्त सुरक्षित है, परन्तु यहाँ हम केवल पारसी धर्मग्रन्थ अवेस्ता के उदाहरण प्रस्तुत करेंगे, जिसमें स्वयं सिद्ध होगा कि वैवस्वत यम ईरान का सम्राट् था—"And Ahura Majda Spake unto Yima, Saying 'O fair Yima Son of Vivanghat ; upon the material world the fatal waters are going to fall......that shall make Snow flakes fall thick, (Vendidad Fargard II, 22 by Darmesterer).

"T, was Vivohvant, first of Mortals
to him was a son begotten
Yim of fair flock, all shining
o o o o o
while he reigned..................... !
Son of Vivhvant, great Yima[3]"

---

१. 'मारीच' शब्द का विकृत रूप 'मारीशस है।

२. याद का अपभ्रंश 'ताज' शब्द है, यह वरुण का ही नाम था, इसको अरब अपना मूलप्रवर्तक मानते थे—Taz, the fourth ancestor of Azi Dahak is founder of the race of the Arabs !
(तिरुपति आल इण्डिया आरि० कान्फ्रें०, पृ० १४५ मद्रास)

३. अवेस्ता, यस्न गाथा।

उपर्युक्त उद्धरणों को प्रदर्शित करने का उद्देश्य केवल यह है कि विवस्वान् और तत्पुत्र वैवस्वत यम का ईरान पर शासन था।

ईरानी धर्मग्रन्थों और परम्परा के अनुसार अहुरमज्दा (वरुण) की चौथी पीढ़ी में अजिदहाक (वृत्र—अहिदानव) हुआ।[१] यम को अहिदानव (वृत्र—अजिदहाक) का पूर्वकालीन माना जाता था।[२] पारसीधर्मग्रन्थ में वृत्र के ज्येष्ठ भ्राता विश्वरूप (त्रिशीर्षा षडक्ष) का नाम 'बिवरस्प' था। पारसी वर्णन द्रष्टव्य है—

He the Serpent Slew Dahaka
Triple zawed and Triple headed
Six eyed, thousand powered in Mischief.[3]

भारतीय इन्द्र, यम का शिष्य था, इसी इन्द्र ने वृत्र और उसके ज्येष्ठ भ्राता विश्वरूप को मारा था। वृत्र (अहिदानव—अजिदहाक) को मारने पर उसको 'महेन्द्र' पदवी मिली।

ईरानीग्रन्थों में वरुण, भृगु शुक्राचार्य और उनके शण्ड, मर्क, तथा दानवेन्द्र वृषपर्वा का उल्लेख भी मिलता है, वहाँ इनका नाम मह्लक, (मर्क) षण्ड नाम मिलते हैं, उसा (उशना—शुक्र), अफरासियाब (वृषपर्वा) फर्ना (वरुण), बग (भृगु) इत्यादि। देवयुग में ही ईरान होते हुये ये असुरगण एवं उनके पुरोहित योरोपियन देश डेनमार्क (दानवमर्क), स्वीडन (श्वेत दानव) आदि में पहुँचे; कुछ उत्तरी अफ्रीका तथा बेरूत (वरूत्री) लीबिया, लेबनानादि में बस गये।

उपर्युक्त विवरण से पूर्णतः सिद्ध है कि असुरों (दैत्योंदानवों का) मूल और उनकी भाषाओं (यूरोपियन—असुरभाषा) का मूल भारत ही था। पुराणों से इस तथ्य की सर्वांशतः पुष्टि होती है, स्वयं अवेस्ता में वर्णित त्वष्टा के वंशजों की आर्यंव्रज (आर्यावर्त—Airyana Vaejo—आर्यनवेजों) से पलायन की पुष्टि होती है कि ईरानी किस प्रकार देवों के भय से १६ देशों में मारे-मारे घूमते रहे। सर्वप्रथम उनका (ईरानियों) निवास आर्यव्रज (आर्यावर्त—आर्यवीजो) में ही था।[४] यहीं से उन्होंने १६ देशों[५] में क्रमशः प्रस्थान किया।

---

(1) Azi Dahak is the fourth descendant of Taz (All India-oriental Conf Madras 1941, p. 145)

(2) Yim.,......Azi Dahaka's predecessor. (वही, पृ० १४५)

(३) त्वष्टुर्ह वै पुत्रः त्रिशीर्षा षडक्ष आस। तस्य त्रीण्येव मुखानि
(श० ब० १।६।३।१ तुलना करो)

4. I, Ahura Mazda Created as the first best region, Airyana Veajo of the good Creation. Then Angra Mainyu, the destroyer, formed in opposition to yet a great Serpent and water Or Snow; the Creation of Daevas : (Vendidad 3, 4).

५. सोलह देश—आर्यनवीजो, सुग्ध, मौरू, बग्धी, नैश, हरोयु, वैकरत, अर्व, वेह्लकन, हरहवैति, हैतुमन्त, रंघ, चख, वरन, और हप्तहिन्दु।

अतः प्राचीन ईरानियों का भारतमूलत्व स्वयं सिद्ध है।

ईराक (मेसोपोटेमिया) के बोगोजई नामक स्थान में प्राप्त मृत्तिकापट्टिका पर राजा मत्तिवज (मित्रवह ?) वैदिक देवगण—मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्य का आह्वान करता है। इस अन्वेषण ने पाश्चात्यों ने जो परिणाम निकाले हैं, वे सर्वथा भ्रामक हैं, उनका निकाला गया समय (१४०० ई० पू०) भी संदिग्ध है, क्योंकि इन्द्रादि की पूजा भारतवर्ष में ही महाभारतकाल से पूर्व प्रायः समाप्त हो गई, महाभारत का समय ३१०२ वि० पू० था। अतः ये मुद्रायें न्यून से न्यून महाभारतयुग से पूर्व की होनी चाहिए।

मित्तनी को हित्ती—खित्ति कहते थे, जो 'क्षत्रिय' का विकार है। मित्तन्नी का एक राजा 'दस्रत' था, जो स्पष्टतः संस्कृत के 'दशरथ' का अपभ्रंश है।

मैसोपोटामिया (ईराक) की प्राचीनतम सभ्यता सुमेर सभ्यता थी, जो इतनी उच्चकोटि की थी कि कुछ वैज्ञानिक इसका सम्बन्ध किसी दूसरे ग्रह के अन्तरिक्षदेवताओं से जोड़ते हैं—"स्वयं प्राचीन सुमेरका इतिहास यह कहता है कि प्राचीन सुमेरवासी लोग (जो अन्य संस्कृतियों के पूर्वज थे) ऐसे लोगों के वंशज हैं, जो मानव नहीं थे तथा अन्य ग्रहों से पृथ्वी पर आये।" (धर्मयुग, दि० १४-१०-१९८० में 'इन्टेलिजेन्ट लाइफ इन यूनिवर्स' पुस्तक से उद्धृत)। इस तथाकथित प्राचीनतमसभ्यता के अनेक राजा संस्कृत नाम धारण करते थे—

शरगर (Shargar)—सगर
मन (Man) — मनु
इस्साकु (Issaku) — इक्ष्वाकु
शरहगन (Sharagun)—सहस्रार्जुन

इसी प्रकार दशरथादि नाम भी सुमेर में प्रसिद्ध थे।

अतः भारत सुमेरियन सभ्यता का भी मूल था और प्रकट है कि उनकी भाषा भी संस्कृत का ही म्लेच्छ (विकार) रूप थी।

'अक्काद' नाम भी 'इक्ष्वाकु' का ही विकार प्रतीत होता है।

संसार की आदिम मूलजातियाँ—पंचजन या दशजन

वैदिकग्रन्थों में बहुधा पंचजन (असुर, गन्धर्व, देव, मनुष्य और नाग) जातियों का उल्लेख मिलता है।[1] ये विश्व की प्राचीनतम आदिम जातियाँ थीं।

---

(१) ऐ० ब्रा० (१३।७), निरुक्त (३।२), इत्यादि।
मनुष्याः पितरो देवा गन्धर्वोरगराक्षसाः।
गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा यक्षराक्षसाः॥
यास्कोपमन्यवावेतान् आहतुः पंच वै जनान्॥ (बृहद्देवता)
असुरों से पूर्व भी कोई पंचजन थे—'ये देवा असुरेभ्यः पूर्वे पंचजना आसन्';
(जै० उप० ब्रा० १।४।१७)।

परन्तु शतपथब्राह्मण, पारिप्लवोपाख्यान (काण्ड १३, अध्याय४, ब्राह्मण ३) में आदिम दश जातियों का उल्लेख मिलता है—इसका विवरण इस प्रकार है—

(१)	मानव—प्रथम राजा	वैवस्वत मनु	—धर्मशास्त्र—	ऋग्वेद
(२)	पितर— ,,	वैवस्वत यम	,,	यजुर्वेद
(३)	गन्धर्व— ,,	वरुण	,,	अथर्ववेद
(४)	अप्सरा— ,,	सोम	,,	आंगिरसवेद
(५)	नाग (किरात) ,,	अर्बुदकाद्रवेय	,,	सर्पविद्या (वेद)
(६)	यक्षराक्षस— ,,	वैश्रवणकुबेर	,,	देवजनविद्या
(७)	असुर (दैत्यदानव) ,,	असितधान्व	,,	मायावेद
(८)	मत्स्यजीवी (निषाद),,	मत्स्यसाम्मद	,,	इतिहासवेद
(९)	सुपर्ण—कृष्णवर्ण-निग्रो	तार्क्ष्य वैपश्यत	,,	पुराण
(१०)	देव— ,,	इन्द्र	,,	सामवेद

मिथ्याकालविभाग (युगविभाग)—

जिस प्रकार तथाकथित विकासवाद के आधार पर प्रागैतिहासिकयुगों—यथा प्रस्तरयुग, नवपाषाणकाल धातुयुग, लौहयुग, कृषियुग, पशुचारणकाल जैसे सर्वथा मिथ्यायुगों की कल्पना इतिहास में की गई, उसी प्रकार मिथ्याभाषामतों के आधार पर, पाश्चात्यलेखकों ने भारतीय इतिहास में वैदिककाल, उत्तरवैदिककाल, उपनिषद् युग, महाकाव्यकाल, पुराणकाल जैसे सर्वथा मिथ्यायुगों की कल्पना की और आज भी यही युगविभाग इतिहास में प्रायेण प्रचलित है। सम्भवतः आजतक किसी भी देश के राजनीतिक इतिहास का युग-विभाजन साहित्यिकग्रन्थों के आधार नहीं किया गया, बल्कि अन्यदेशों का साहित्यिक इतिहास भी राजनीतिकपुरुषों के आधार पर विभक्त किया गया है जैसे अंग्रेजीसाहित्य में विक्टोरियायुग, पूर्वविक्टोरियायुग आदि नामकरण किये गये हैं, परन्तु अंग्रेजों ने भारतवर्ष को, इस सम्बन्ध में अपवाद बनाया और यहाँ के इतिहास का युगविभाग साहित्यिकग्रन्थों के नाम पर किया गया, और वह भी सर्वथा मिथ्या। उपर्युक्त युगविभाग का मिथ्यात्व ही आगे प्रदर्शित किया जाएगा।

पूर्वयुगों (द्वापर, त्रेता, कृतयुग, देवयुग, पितृयुग और प्रजापतियुग) में शिक्षित व्यक्ति (विद्वान्=ब्राह्मण=द्विज) अतिभाषा देववाक् के दोनों रूपों वेदवाक् और मानुषीवाक् (संस्कृत) को बोलता था—

"तस्माद् ब्राह्मण उभे वाचौ वदति दैवीं मानुषीं च।"[१] "तस्माद् ब्राह्मण उभयीं वाचं वदति या च देवानां या च मनुष्याणाम्।"[२] अतः वैदिक और लौकिक संस्कृत का

१ काठकसंहिता (१४।५)
२. निरुक्त (१३।८)

लोक में प्रयोग अतिपुरातनकाल से हो रहा था, अतः लौकिकसंस्कृतभाषा या साहित्य को उत्तरकालीन मानना महती भ्रान्ति है। यास्क ने बताया है कि मनुष्यों और देवों की भाषा तुल्य है।[१]

लौकिकसंस्कृत या लोकभाषा की मूलशब्दराशि वही थी, जो अतिभाषा या वेदवाक् में थी, अन्तर केवल यह था कि लौकिकवाक् संकुचित थी तथा इसकी शब्दानुपूर्वी (वाक्यविन्यास) में अन्तर था। इस तथ्य का उल्लेख भरतमुनि ने इस प्रकार किया है—

अतिभाषा तु देवानामार्यभाषा भूभुजाम्।
संस्कारपाठ्यसंयुक्ता सप्तद्वीपप्रतिष्ठिता॥[२]

इसी तथ्य का कथन पतञ्जलिमुनि ने 'सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाश्चत्वारो वेदा' इत्यादि रूप में किया है।[३]

लोकभाषा या मानुषीवाक् या लौकिकसंस्कृत व्याकरणसम्मत या संस्कारयुक्त होने से ही संस्कृत कही जाती थी, इसी आधार पर यास्क ने इसे व्यावहारिकी (बोलचाल) भाषा कहा।[४] वाल्मीकि ने इसे मानुषीसंस्कृतावाक् कहा है।[५] क्योंकि इसका लोक में व्यवहार होता था इसीलिए पतञ्जलि ने बारम्बार, 'संस्कृत' के लिए 'व्यवहारकाल' का उल्लेख किया है।[६]

अतः लोकभाषा संस्कृत का व्यवहार या प्रयोग, प्रजापति स्वयम्भू, स्वायम्भुव मनु, कश्यप, इन्द्रादि से यास्क, आपस्तम्बादि एवं कालिदासपर्यन्त किंवा अद्यपर्यन्त भी होता है। इसके विपरीत, वैदिकभाषा का प्रयोग केवल वेदमन्त्र, तद्व्याख्यान (ब्राह्मणग्रंथादि) एवं कल्पसूत्रादि अन्य वैदिकग्रन्थों में होता था। लौकिकसंस्कृत का प्रयोग इतिहासपुराण, काव्य, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, अर्थशास्त्र आदि लौकिकशास्त्र प्रणयन में होता था। जिस प्रकार लौकिकशास्त्रों में वैदिकशास्त्रों का प्रामाण्य था, उसी प्रकार वैदिकशास्त्रों में लौकिकशास्त्रों, यथा, इतिहासपुराणादि का प्रामाण्य मान्य था। इस तथ्य का उल्लेख किसी अर्वाचीन विद्वान् ने नहीं, परन्तु परमप्रामाणिक न्यायविद् न्यायभाष्यकार वात्स्यायन ने किया है कि वेद में पुराणों या धर्मशास्त्र का प्रामाण्य मान्य था—

(१) "प्रामाण्येन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रमाण्यमभ्यनुज्ञायते। ते

---

१. तेषां मनुष्यवद् देवताभिधानम् (निरुक्त)
२. नाट्यशास्त्र (१७।१८।२९),
३. महाभाष्य पस्पशाह्निक,
४. चतुर्थी व्यवहारिकी (निरुक्त १३।९)
५. वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम् (वा० रा० ३।३०।१७)
६. "चतुर्भिः प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति व्यवहारकालेन इति"

वा खल्वेते अथर्वाऽऽगिरस एतदितिहासपुराणमभ्यवदन् ।।" "(न्यायभाष्य) वास्तव में ब्राह्मणग्रन्थों में इतिहासपुराण का प्रमाण मान्य है, क्योंकि अथर्वांगिरस ऋषियों ने इतिहासपुराणों का प्रवचन किया था ।" क्योंकि वेदमन्त्रों के द्रष्टा और ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रणेता ऋषि वे ही थे, जिन्होंने इतिहासपुराणों एवं धर्मशास्त्र का प्रणयन था—"द्रष्टृप्रवक्तृसामान्याच्चानुपपत्तिः । य एवं मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति (न्यायभाष्य) ।

केवल विषयव्यवस्थापन के कारण भाषा में अन्तर था, लेखक या काल के कारण नहीं ।

जब इतिहासपुराणग्रन्थ, वैदिकब्राह्मणग्रन्थों से पूर्व रचे जा चुके थे, तब पुराणरचनाकाल या महाकाव्यकाल, ब्राह्मणकाल से उत्तरकालीन कैसे हो सकता है। यह केवल वात्स्यायन की कल्पनामात्र नहीं है। शतपथब्राह्मणादि में पुराणों की गाथायें उद्धृत मिलती हैं जो लौकिकभाषा में हैं, यथा, द्रष्टव्य हैं कुछ गाथायें जो ब्राह्मणग्रंथों में किन्हीं प्राचीन इतिहासपुराणों से उद्धृत कीं, यद्यपि वे उपलब्ध भागवतादिपुराणों में भी प्राप्य हैं—यथा शतपथब्राह्मण की यह गाथायें—

मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे ।
आविक्षितस्यः क्षत्तारो विश्वेदेवाः सभासदः ।।[1]
भरतस्य महत्कर्मन पूर्वे नापरे जनाः । (श. ब्रा. १३।११।१।१)
नैवापुर्नैव प्राप्स्यन्ति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा ।[2] (श.ब्रा. १३।५।४।११)

इसी प्रकार और भी बहुत से गाथाश्लोक ब्राह्मणग्रन्थों में मिलते हैं जो पुराणों से उद्धृत हैं। महाभारत में इन्द्र, उशना, वायु, ययाति, कश्यप, अम्बरीष आदि की शतशः गाथायें मिलती हैं, ये कश्यप, उशना आदि वेदमन्त्रों के प्रसिद्ध द्रष्टा थे। अतः वेदकाल और पुराणकाल, महाकाव्यकालआदि युगविभाग सर्वथा भ्रामक और इतिहासविरुद्ध हैं। यह युगविभाग आज भारतीय इतिहास की एक महत्तमा विकृति है, जिसका परिमार्जन अवश्यम्भावी है जिसके बिना सत्य इतिहास का ज्ञान नहीं हो सकता ।

इसी प्रकार प्राचीन, अनेक अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, व्याकरणशास्त्र इत्यादि भी वेदमन्त्रों के साथ-साथ ही लौकिकभाषा में रचे गये, इसका उल्लेख यथास्थान किया जायेगा, क्योंकि अधिक उदाहरण देकर हम इस भूमिका का कलेवर नहीं बढ़ाना चाहते। केवल, उपनिषदों के प्रमाण से उपर्युक्त कालविभाग का मिथ्यात्व प्रदर्शित होगा—

ब्रह्मविद्या की परम्परा और आदिम उपनिषद्वेत्ता ऋषिगण

शतपथब्राह्मण, बृहदारण्यकोपनिषद् जैमिनीयोपनिषद्, सामविधानब्राह्मण एवं

१. भागवत पु. (९।२।२८),
२. भागवत पु० (९।२०।२९)

तैत्तिरीयोपनिषद् आदि में ब्रह्मविद्या, मधुविद्या आदि के आचार्यों की प्राचीन वंश-परम्परा (विद्यावंश) मिलती है, जिससे कि इस पाश्चात्यलेखकों की इस मिथ्या धारणा का खण्डन होता है कि वेदमन्त्रों में उपनिषद्ज्ञान नहीं है अथवा उपनिषद् सिद्धान्त अर्वाचीन है।

वरुण

ब्राह्मणग्रन्थों के अध्ययन से सिद्ध होता है कि वरुण आदित्य का एक नाम ब्रह्मा था, इसी वरुण ब्रह्मा ने आदिमयुग में वैवस्वत मनु के पिता विवस्वान् से पूर्व अपने ज्येष्ठ पुत्र भृगु या अथर्वा को ब्रह्मविद्या पढ़ाई—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता ॥
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥[1]

अन्यत्र लिखा है—"भृगुर्वै वारुणिः। वरुणः पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति।[2] इन प्रमाणों से सिद्ध है वरुण और उनके पुत्र भृगु (अथर्वा) उपनिषद्ज्ञान के आदिम आचार्यों में से थे।

कश्यप और इन्द्र

वरुण, इन्द्र आदि के जनक पितामह प्रजापति कश्यप थे। देवेन्द्र इन्द्र और कश्यपपौत्र असुरेन्द्र विरोचन दोनों ने ही ब्रह्मविद्या प्रजापति कश्यप से सीखी—"इन्द्रो देवानाम् प्रवव्राज। विरोचनोऽसुराणां·· तौ ह द्वात्रिंशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यमुषतुः।[3]

कश्यप से भी प्राचीनतर सनत्कुमार, कश्यपपुत्र देवर्षि नारद के गुरु थे। ब्रह्मविद्या सीखने नारद उनके पास गये —"ॐ अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्तं होवाच।"[4] उपससाद' क्रियापद से स्पष्ट है कृतयुग से पूर्व भी (१४००० वि०पू०), नारद और सनत्कुमार के समय 'उपनिषद्' शब्द प्रचलित था।

दर्शन की आदित्य (विवस्वान्) परम्परा

शतपथब्राह्मण (४।६।४।३३) में विवस्वान् आदित्य की प्रमुखशिष्य परम्परा उल्लिखित है। विवस्वान् पंचम व्यास थे, जिन्होंने जलप्लावन से पूर्व शुक्लयजुर्वेद एवं उपनिषद् का प्रवचन किया था। इसी परम्परा का उल्लेख वासुदेव कृष्ण ने गीता में किया है।[5]

---

१. मु० उ० (१।१।१),
२. तै० उ० ३। १),
३. छा० उ० (८।७),
४. छा० उ० (६।१।६)
५. इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकेवऽब्रवीत् ॥ (गीता ४।१)

दध्यङ् आथर्वण और मधुविद्या

बृहदारण्यकोपनिषद् (अध्याय २ ब्राह्मण ६) में मधुविद्यादर्शन की एक शिष्य परम्परा इस प्रकार है—(१) स्वयम्भू, (२) परमेष्ठी, (३) सनग, (४) सनातन, (५) सनारु, (१०) व्यष्टि, (७) विप्रचित्ति, (८) एकर्षि, (६) प्रध्वंसन, (१२) मृत्यु प्राध्वंसन, (११) अथर्वा दैव, (१२) दध्यङ् आथर्वण। ऋग्वेद में भी मधु विद्या के प्रवक्ता दध्यङ् आथर्वण है—

दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्रदीयमुवाच।[1]

अश्विनीकुमारद्वय दध्यङ् आथर्वण के शिष्य थे।

स्वयं उपनिषद्ग्रन्थों के प्रमाणों से सिद्ध है कि उपनिषद्विद्या देवासुरयुग में भी प्रचलित थी, अतः पूर्ववैदिकयुग या उत्तरवैदिक इत्यादि जैसा युगविभाग सर्वथा भ्रामक, असत्य एवं त्याज्य है। वाल्मीकिऋषि ने रामायण की मूलरचना शतपथ ब्राह्मण (वाजसनेय याज्ञवल्क्य) से २४०० वर्ष पूर्व की थी, अतः साहित्यिकग्रन्थों के आधार पर कल्पित भारतीय इतिहास का युगविभाग, इसकी विकृति का एक मूल कारण है। अतः काल्पनिक और मिथ्यायुगविभाग सर्वथा हेय एवं त्याज्य है।

भारतीय इतिहास का तिथिक्रम मनघड़न्त

पाश्चात्य लेखक गौतम बुद्ध और विम्बसार से पूर्व के पुरुषों को ऐतिहासिक मानते ही नहीं, फिर भी उन्होंने वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, पुराण एवं अन्य ग्रन्थों एवं आर्य-आगमन, द्रविड़-आगमन इत्यादि मनघड़न्त काल्पनिक घटनाओं की जो तिथियाँ घड़ दी थीं, वे ही प्रायः आजतक तथाकथित भारतीय इतिहास में प्रचलित हैं। क्योंकि बुद्ध से पूर्व के भारतीय इतिहास को वे इतिहास ही नहीं मानते, उसे प्रागैतिहासिकयुग कहते हैं तथा उन काल्पनिक तिथियों के विषय में भी सर्वसम्मत नहीं हैं तथा काल्पनिक आर्य-आगमन की तिथि १००० ई० पूर्व, १२०० ई० पू०, १५०० ई०पू०, २००० ई०पू०, २५०० ई० पू० और ३०११ई० पू० तक विभिन्न रूपमें तथाकथित इतिहासज्ञ मानते थे और अभी पाठ्यपुस्तकों में ये तिथियाँ प्रायः दुहराई जाती हैं। इसी प्रकार, यद्यपि रामायण एवं महाभारत को पाश्चात्यलेखक ऐतिहासिक नहीं मानते, फिरभी इन ग्रन्थों के रचनाकाल में भी उक्त प्रकार के मतभेद हैं, कहीं जानबूझकर कहीं अज्ञानवश।

जिस एक **आधारतिथि** के ऊपर, पाश्चात्यलेखकों ने भारतीय तिथिक्रम का सम्पूर्ण ढाँचा बनाया है, वह है चन्द्रगुप्त मौर्य और यूनानी शासक सिकन्दर की तथाकथित समकालीनता की कहानी। यह तिथि है ३२७ ई० पू०। इस समकालीनता पर आज लोगों को उसी प्रकार विश्वास है जितना विकासवाद पर, बल्कि उससे भी अधिक। इस तिथि के विरुद्ध कुछ लिखना तो दूर, मन में सोचने का भी कोई साहस नहीं करता। इस समकालीनता की कहानी पर आज लोगों को अटूट और अचल श्रद्धा-

---

१. ऋग्वेद (१।१६।१२),

विश्वास है। इस कहानी पर इस प्रकरण में विस्तार से विचार नहीं करेंगे, इसका विस्तृत विवेचन 'तिथिसम्बन्धी' अग्रिम अध्याय में होगा, परन्तु यह संकेत करना आवश्यक है कि इसी 'चन्द्रगुप्तमौर्य-सिकन्दर' की समकालीनता की मनघड़न्त कहानी के आधार पर ही प्राङ्मौर्य एवं मौर्योत्तरकाल की तिथियाँ गढ़ी गई हैं। चन्द्रगुप्तमौर्य से पूर्व के नन्द, शैशुनाग आदिवंशों महावीर, गौतम बुद्ध जैसे प्रख्यात इतिहासपुरुषों की तिथियाँ इसी 'आधारतिथि' के आधार पर निश्चित की गईं। इसी प्रकार मौर्योत्तरयुग में शुंग, काण्व, आन्ध्रसातवाहन, शक, कुषाण, हूण, वाकाटक, गुप्तवंश के शासकों की तिथियाँ भी इसी 'आधारतिथि' के अनुरूप ही घढ़ी गई। इन सब काल्पनिक और तदनन्तर वास्तविक तिथियों का उल्लेख एवं निश्चय 'तिथि सम्बन्धी' अध्याय में ही करेंगे, परन्तु एक तथ्य ध्यातव्य है कि पाश्चात्य इतिहासकार ईलियट और डासन ने अंग्रेजी में आठ भागों में, प्राचीन इतिहासकारों विशेषतः मुस्लिम इतिहासकारों के आधार पर 'इण्डियाज हिस्ट्री ऐज रिटन बाई इट्स ओन हिस्टोरियन' के प्रथम भाग, पृ० १०८, १०९ पर लिखा है कि सिकन्दर का समकालीन भारतीय राजा आन्ध्र सातवाहन 'हाल' था। इसी तथ्य से सोचा जा सकता है कि सिकन्दर का भारत पर आक्रमण किस भारतीय राजा के समय हुआ। इस सबका विस्तृत विवेचन 'तिथिसम्बन्धी' अध्याय में ही करेंगे।

भारतीय इतिहास में महावीर, बुद्ध, कनिष्क, गुप्तराजगण, और यहाँ तक कि शंकराचार्य तक की तिथियाँ विवादग्रस्त बना दी गई हैं और विक्रम शूद्रक जैसे महाप्रतापी शासकों का इतिहास में कोई उल्लेख ही नहीं, तब कल्किसदृश एवं कृष्णतुल्य महापुरुषों का वर्णन होगा ही कहाँ से ? इस ग्रन्थ में ऐसे सभी महापुरुषों की 'ऐतिहासिकता' यथास्थान प्रमाणित की जायेंगी।[1]

भारत में शकराज्य का अन्तकरनेवाला प्रसिद्ध गुप्तसम्राट् साहसांक चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य था, जिसकी पुष्टि अलबेरूनी, भारतीय ज्योतिषी और बाणभट्ट जैसे साहित्यकार करते हैं। अतः गुप्तराजाओं का उदय १३५ वि० से पूर्व विक्रमादित्य के ठीक पश्चात् प्रथमशती में हुआ था। शकसम्वत् का प्रवर्तक चन्द्रगुप्त द्वितीय ही था। इन तिथियों का प्रामाणिक निर्णय आगे किया जायेगा।

तथाकथित या आरोपित ग्रन्थकार (Attribution)—

पाश्चात्यलेखकों एवं तदनुयायी अनेक भारतीयलेखकों ने भारतीय इतिहास में अनेक इतिहास प्रसिद्ध, प्रतापी, वर्चस्वी और महाज्ञानीपुरुषों का अस्तित्व मिटाने के लिये एक घोरभ्रामक प्रवृत्ति को जन्म दिया कि अनेक प्राचीनग्रन्थों के प्रसिद्ध कर्त्ता

---

१. अरबों मुस्लिमों के सर्वोच्च तीर्थस्थल मक्का के 'काबा' मन्दिर में उत्कीर्ण प्राचीन कवि बिन्तोई (१६५ वर्ष पैगम्बर मौहम्मद से पूर्व) ने अपनी कविता में विक्रमादित्य का उल्लेख किया है—"जिसका अरबदेशों तक शासन था"। द्रष्टव्य—'भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें', (पृ० २७७)

वास्तव में हुये ही नहीं, उनके नाम से दूसरे उत्तरकालीन अज्ञातनामा लेखकों ने अनेक ग्रन्थ रचे। वैसे शतशः एवं सहस्रशः ग्रन्थों के विषय में, पाश्चात्यों ने ऐसी भ्रामक कल्पनायें की हैं, परन्तु निदर्शनार्थ यहाँ पर केवल प्रसिद्धतम कुछ ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों की संक्षिप्त चर्चा करेंगे—

(१) शुक्राचार्य
(२) इन्द्र
(३) मनु
(४) भरत
(५) पराशर
(६) पाराशर व्यास
(७) चरक अग्निवेश
(८) याज्ञवल्क्य वाजसनेय
(९) जैमिनि
(१०) शौनक
(११) कात्यायन
(१२) कौटल्य

उपर्युक्त ग्रन्थकारों के सम्बन्ध में पाश्चात्यों ने यह धारणा बनाई है कि शुक्रकृत शुक्रनीति, इन्द्रकृत ऐन्द्रव्याकरण, मनुकृत मनुस्मृति भरतकृत नाट्यशास्त्र, पराशरकृत विष्णुपुराण और ज्योतिषसंहिता, पाराशर्यव्यासकृत ब्रह्मसूत्रादिग्रंथ, चरक (अग्निवेश) कृत चरकसंहिता जैमिनिकृत मीमांसासूत्र, शौनककृत बृहद्देवताआदि ग्रन्थ, कात्यायनकृत स्मृति आदि ग्रन्थ, याज्ञवल्क्यकृत योगियज्ञवलक्य, कौटल्यकृत अर्थशास्त्र इत्यादि ग्रन्थ वास्तव में इन ग्रन्थकारों की कृतियाँ नहीं है, उत्तरकाल या अत्यन्त अर्वाचीनकाल में इनके नाम से उपर्युक्त ग्रन्थ बनाये गये। फिर हिरण्यगर्भ, स्वायम्भुव मनु, सप्तर्षि, नारद, कपिल आदि के प्रणीतग्रन्थों पर तो पाश्चात्यों का विश्वास होगा ही कहाँ से, जो ऋषिगण जलप्लावन से पूर्व हुये थे।

यह पूर्णतः सम्भव है कि अनेक प्राचीनग्रन्थों, संहितादि में समय-समय पर उपबृंहण (विस्तार), प्रक्षेपण (क्षेपक) एवं संशोधन हुआ हो, जैसा कि प्रसिद्ध महाभारत या चरकसंहिता का हुआ है। परन्तु मूललेखक मनु, भरत, शुक्र, चरकया व्यास हुये ही नहीं, ऐसा मानना महान् अज्ञान है। आज यह कोई भी दावा नहीं करता कि मनुस्मृति, शुक्रनीति, भरतनाट्यशास्त्र या चरकसंहिता अपने मूल रूप में ही उपलब्ध हैं, परन्तु जो यह माने कि कृतयुग, त्रेता या द्वापर में मनु 'या', शुक्र या भरतसंज्ञक महर्षि हुए ही नहीं या कौटल्य के नाम के तृतीयशती में किसी ने जाली अर्थशास्त्र रच दिया, वह महान् अज्ञ है और भारतीय इतिहास से पूर्णतः अनभिज्ञ है, ऐसे घोर अज्ञानी को इतिहासकार मानने वाला और भी मूढ़तम है। कुछ लेखक कपिल, शुक्र, वृहस्पति, भरत आदि को 'अतिमानव' या देवता मानकर उनकी ऐतिहासिकता उड़ाना चाहते हैं।[1] ऐसे 'अतिमानवों या देवताओं' की ऐतिहासिकता हम पुराणसाक्ष्य से सिद्ध करेंगे।

आज जर्मनलेखक जालि के इस मत को कोई नहीं मानता कि ईसा की तृतीय

---

1. The names of well known works like Manu Smriti, the yajnavalkya Smriti, Parasarasmriti and Sukraniti show that in ancient India authors often preferred incognito and attributed their works to divine or semi divine persons.

(स्टेट एण्ड गवर्नमेन्ट इन एशेन्ट इण्डिया, पृष्ठ ३, सदाशिव अल्तेकरकृत)

शती में कौटल्य के नाम से किसी ने अर्थशास्त्र को रच दिया, यद्यपि विन्टरनीत्स ने यही मत दुहराया है।[1]

निश्चय ही मनु (क) इन्द्र, वरुण, कपिल, शुक्रादि दैवीपुरुष थे, परन्तु थे ऐतिहासिक व्यक्ति। इनकी ऐतिहासिकता इसी ग्रन्थ के परायण से सिद्ध होगी।

इसी प्रकार, आयुर्वेद का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'चरकसंहिता' का प्रधान संस्कर्ता महाभारतयुद्ध से पूर्व हुआ,[2] परन्तु आधुनिकलेखक उसका मूललेखक ही कनिष्क के राजवैद्य 'चरकाह्व' उपाधिप्राप्त व्यक्ति को मानते हैं।[3]

यद्यपि, चरक उपाधि व्यासशिष्य वैशम्पायन की भी थी, परन्तु इन पंक्तियों का लेखक पं० भगवद्दत्त, और कविराज सूरमचन्द्र के इस मत को नहीं मानता कि वैशम्पायन ही आयुर्वेद की चरकसंहिता का रचयिता था। इस सम्बन्ध में भारतीय परम्परा के आधार पर अलबेरूनी का मत ही सत्य प्रतीत होता है कि ऋषि अग्निवेश का ही अपरनाम 'चरक' था।[4] प्राग्महाभारत युग में—अग्निवेश चरक ने ही यह ग्रन्थ लिखा था।

अतः पाश्चात्यों का आरोपित ग्रन्थकार (Attribution) सम्बन्धीमत सर्वथा

---

१. अर्थशास्त्र लाहौर संस्करण १९२३, जालि सम्पादित तथा समप्रोब्लम्स आफ इण्डियन लिटरेचर, (पृ० १०९),

(क) स्वायम्भुव मनु या आदम (आत्मभुव=स्वायम्भुव) तथा भारतीयग्रन्थों के समान प्राचीन यहूदी साहित्य में अनेक शास्त्रों का रचयिता बताया गया है—
"The Hebrew doctors acscribe to Adam various composition on the subjects of Ethies, theology, and Legislation, as well as a book on the creation (पुराण) of the world (Stanely on the oriental Philosophy lit. 3 chap. 3, p. 36).
"Kissalaeus, a Mohamadan writer, asserts that the Sabians possessed not only the books of Seth (वसिष्ठ) and Edris (अत्रि) but also others written by Adam himself." (वही)
प्रसिद्ध बैबीलन इतिहासकार बेरोसस ने वि०पू० तृतीय शती में बैबीलन के बलि मन्दिर में उपर्युक्त ग्रन्थों को देखा था।

२. चरकसंहिता का मूललेखक पुनर्वसु कृष्ण आत्रेय, भारतयुद्ध से कई सहस्र वर्ष पूर्व हुआ था।

3. The court of King Kanishka as believed to have been adorned-by three wise men...an experienced physician called Caraka, who was the well known author of the Carak Samhita.
(आयुर्वेद का इतिहास २९२ पर उद्धृत विमलचरण ला की पुस्तक 'अश्वघोष पृ० ५ से)

4. According to their belief, Caraka was a Rishi in the last Dwapara yuga when his name was Agnivesha, but aftewards he was called Caraka. (अलबेरूनी, पृ० १५९)

भ्रान्त निर्मूल अतएव त्याज्य है। मूलग्रन्थों के रचयिता स्वायम्भुव मनु सप्तर्षि, शुक्र, बृहस्पति आदि देवयुगीन व्यक्ति ही थे, परन्तु इन ग्रन्थों का समय-समय पर संस्कार होता रहा।

भारतीय इतिहास के मूलस्रोत

तथाकथित प्रामाणिक (अप्रामाणिक) स्रोत कितने सत्य—पाश्चात्य लेखकों ने भारतीय इतिहास के मूलस्रोत भारतीयवाङ्मय में या भारत में न ढूढ़कर भारत के बाहर देखे और उन्हीं को परमप्रमाणिक माना अथवा शिलालेख, ताम्रपत्र, अभिलेख मुद्रा आदि धातुगत प्रमाणों को अधिक प्रामाणिक माना और उनके मनमाने पाठ एवं अर्थ निकालकर भारतीय इतिहास को भली-भाँति विकृत किया।

सर्वप्रथम, विलियम जोन्स ने, विदेशी यूनानी मैगस्थनीज जैसे लेखक, जिसको न भारतीय इतिहास का अधिक ज्ञान था और न जिसके विषय में निश्चित है कि वह कभी भारत आया कि नहीं, उसको परमप्रामाणिक मानकर, भारतीय इतिहास की एक मूलतिथि ज्ञात करने का दम्भ किया। जिस प्रकार प्रारम्भ में डार्विन के विकास—मत को यूरोप या संसार ने ब्रह्मवाक्य की भाँति ग्रहण किया परन्तु अब उस पर शंका करने लगे हैं, परन्तु भारतीय विद्वान् जोन्स की मूलखोज पर अभी तक अँगुली उठाने का विचार तक नहीं करते। उनके लिए तो जोन्स के प्रतिपादन ध्रुवसत्य है। जिस पर वे अभी अटल या निश्चल हैं।

मैगस्थनीज के समान, अन्य यूनानी लेखकों हेरोडोट्स, प्लिनी, एरियन, प्लूटार्क आदि के ग्रन्थ भारतीय इतिहास में परम सहायक माने गए और एतद्देशीय लेखकों के कौटलीय अर्थशास्त्र, रघुवंश, हर्षचरित जैसे ग्रन्थों पर अधिक विश्वास नहीं किया गया। इसी प्रकार बुद्ध की तिथि के सम्बन्ध में सभी भारतीय तथा चीनीग्रन्थों के साक्ष्य को छोड़कर केवल सिंहली बौद्धग्रन्थ दीपवंश या महावंश पर पूर्ण विश्वास व्यक्त किया गया, जिनमें बुद्ध की सर्वाधिक अर्वाचीन तिथि का उल्लेख है। कल्हण की अपेक्षा तिब्बती बौद्ध लेखक तारानाथ लामा के विवरण पर अधिक विश्वास किया गया इसी प्रकार बाह्य मुस्लिमलेखकों यथा अलबेरूनी, अलमासूदी जैसे लेखकों के ग्रन्थों पर पूर्ण विश्वास किया, जिन्होंने भारतीय इतिहास में बिना अन्तरंग पैठ के केवल सुनी-सुनाई बातों के आधार या पक्षपातपूर्वक लिखा, जिन्होंने भारतीयप्रजा पर अमानुषिक अत्याचार किए ऐसे विदेशीशासकों को भारतीय इतिहास का श्रेष्ठतम नायक बताया गया जैसे सिकन्दर, मेनेन्द्र, तोरमाण, हूण मिहिरकुल, बाबर, अकबर इत्यादि। सिकन्दर की पराजय को जिन यूनानी लेखकों ने महान् विजय के रूप में प्रदर्शित किया, उन्हें ही भारतीय इतिहास का परमप्रमाणिकस्रोत माना गया।

प्राचीनभारतीयसाहित्य में वर्णित समान, एवं निश्चित तथ्यों को असद्वृतान्त या माइथोलोजी बताकर उनके प्रति घृणा एवं अश्रद्धा उत्पन्न की गई। भारतीय इतिहास का मूलाधार है पुराण एवं इतिहास (रामायण-महाभारत) ग्रन्थ, परन्तु, मैक्समूलर, मैकडानल और कीथ जैसे साम्राज्यवादी स्तम्भों ने उनको पूर्णतः अप्रामा-

णिक मानकर इतिहासनिर्माण में कोई भी मान्यता नहीं दी, यद्यपि पार्जीटर ने इस सम्बन्ध में एक प्रयत्न किया, उसे भी शासन की ओर से कोई मान्यता नहीं मिली।

प्राचीनभारतीयवाङ्मय की उपेक्षा करके, पाश्चात्यलेखकों को, विदेशी लेखकों के अतिरिक्त **सर्वाधिक प्रामाणिक द्वितीय स्रोत** दिखाई पड़ा, वह था **पथरिया प्रमाण** अर्थात् शिलालेख, ताम्रपत्र, मृत्पट्टिका लेख इत्यादि जो पत्थरों, धातुओं या मिट्टी के पात्रों आदि पर लिखे हुए थे। क्योंकि इस प्रमाण को, अस्पष्ट होने के कारण अनेक प्रकार से पढ़ा जा सकता था और उसके मनमाने अर्थ लगाये जा सकते थे। उदाहरणार्थ अशोक के शिलालेखों पर उल्लिखित 'यवन' को यूनानी माना गया। इसी प्रकार अशोक के शिलालेखों में ही पाँच 'यवनराज्यों' का उल्लेख है, उसे 'यवनराजा'[१] बनाकर मनमाने अर्थ लगाए गए। उन तथाकथित 'मग' आदि राजाओं को 'अशोक मौर्य' का समकालीन माना गया।

इसी प्रकार खारवेल के हाथीगुफा नाम प्रसिद्ध शिलालेख का पाठ अनेक प्रकार से मानकर अनेक तथाकथित इतिहासकारों ने मनमाने परिणाम निकाले। इस लेख में डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने 'दिमित' और बहसतिमित को क्रमशः ग्रीक राजा डेमेट्रियस और मगधराज बृहस्पतिमित्र (पुष्यमित्र शुंग) मानकर मनमानी कालगणना की। जायसवालजी को युगपुराण में भी डेमेट्रियस का उल्लेख प्राप्त हो गया—'धर्ममीत के रूप में।' वास्तव में युगपुराण में, जो श्री डी० आर० मनकड ने प्रकाशित किया है, वह पाठ इस प्रकार है—

"धर्मभीताः वृद्धा जनं मोक्ष्यन्ति निर्भयाः" (यु० पु० पंक्ति १११)

इसी प्रकार अनेक मुद्रालेखों, प्रस्तरलेखों, मृल्लेखों के मनमाने पाठ मानकर मनमाने परिणाम निकाले। क्योंकि पाश्चात्यों एवं तदनुयायी भारतीयों को, भारतीय इतिहास के ये ही 'परमप्रामाणिक' स्रोत जान पड़े और उन्हींका 'इतिहासनिर्माण' में आश्रय लिया।

---

१. श्रेष्ठ विद्वान् प्रथमदृष्टि में भाँप लेगा कि अशोक के शिलालेखों में 'यवन राजाओं' का नहीं 'यवनराज्यों का उल्लेख है, द्रष्टव्य एक मूलपाठ— "योजनशतेषु यच अतियोको नाम योनरज परं च तेन अतियोके न चतुरे रजनि (राज्ये) तुरमये मम अन्तकिनि नम मक नम अलिकसुन्दर नम" (अशोक का पेशावरखरोष्ठीलेख)। हरिवंशपुराण में इन पाँच म्लेच्छ (यवन) राज्यों का उल्लेख है—

यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पह्लवाः शकाः।
एतेह्यपि गणा पंच हैहयार्थे पराक्रमन् (१।१६।४)

अध्याय—द्वितीय

इतिहासविकृति के प्राचीन कारण

सामान्य

वर्तमान शिक्षणसंस्थाओं में भारतवर्ष का जो इतिहास पढ़ाया जाता है, उसकी विकृति के कारण केवल नवीन ही नहीं है, वरन् प्राचीन कारण भी पर्याप्त हैं। यह विधि का विधान ही था कि शनैः शनैः मानव इतिहास की विकृति के कारण अत्यन्त पुरातनकाल से ही उत्पन्न होते रहे। आज, विद्या के अनेक क्षेत्रों में घोर अज्ञान का एक प्रधानकारण, इतिहास की यह महत्तमाविकृति या विस्मृति ही है। यों तो सृष्टि के प्रारम्भ से ही विकृति के कारण बनते रहे। यथा, पृथ्वी पर अनेक वार सूर्यदाहों और एवं जलप्रलयों या हिमप्रलयों से अनेक बार पृथ्वी की वनस्पति, जीव-जन्तु और मानव-प्रजायें नष्ट होती रही, न जाने कितने बार, पूर्वकाल में प्रलयों से प्रजासंहार हुआ, इसकी सही-सही संख्या की स्मृति संसार के किसी देश के साहित्य में नहीं है, यदि यह इतिहास ज्ञात होता तो आज संसार पर डार्विन का मिथ्याविकासवाद न छाया रहता। इन प्रलयों में मानवसहित समस्त प्राणिवर्ग नष्ट हो गए, तब इतिहास को कौन स्मरण रखता। फिर भी, न जाने किस विज्ञान, दिव्यज्ञान या योगबल से प्राचीन ऋषियों ने अनेक प्रलयों की स्मृति सुरक्षित रखी—शतशः सहस्रशः प्रलयों और जीवोत्पत्तियों का ऋषियों को आभास था—

एतेन क्रमयोगेन कल्पमन्वन्तराणि च।
सप्रजानि व्यतीतानि शतशोऽथ सहस्रशः।
मन्वन्तरान्ते संहारः संहारान्ते च संभवः ॥ (ब्र० पु० १।२।६।२)

फिर भी इन इस संहारों (प्रलयों) और सम्भवों (उत्पत्तियों) का वास्तविक इतिहास संक्षेप में भी किसी को, आज ज्ञात नहीं हैं यह पूर्ण सम्भव है कि प्राग्भारत-काल या उससे पूर्वकाल में यह इतिहास किन्हीं इतिहासकारों (ऋषियों) को ज्ञात हो। पुराणों में इसका संकेतमात्र है, मयसभ्यता और चीनसभ्ता के पुरातन इतिहासों में भी इसका संकेत है और कालडिया के पुरातन इतिहासकार बेरोसस ने लिखा है 'जलप्रलय (प्रथम) के पश्चात् प्रथमराजवंश में ८६ राजा थे। इनका राज्य ३४०९० वर्ष था।" दृष्टव्य A history of Babylon, L. W. King p 114)।

इसी प्रकार मयसभ्यता के इतिहास में लाखों वर्षों के इतिहास का संकेत है।[1]

१. (द्रष्टव्य धर्मयुग, पृ० ३५—३ मई १९८१)—मयसभ्यतासम्बन्धी लेख।

प्रलयतुल्य अन्य प्राकृतिक आपदाओं यथा भूकम्प, तूफान बाढ़ आदि में न जाने, प्राचीन विश्व का कितना वाङ्मय और उसके साथ ही इतिहास नष्ट हो गया।

प्राचीन इतिहासों के लोप होने का द्वितीय प्रधान कारण विजेता जातियों द्वारा विजित सभ्यता, संस्कृति और साहित्य को नष्ट करना। देवासुरसंग्रामों का, हम पहले संकेत कर चुके हैं, देवों ने निश्चय ही विजित असुरों का प्राचीन इतिहास और गौरव नष्ट किया। असुरों के साथ नागों, वानरों, सुपर्णों, गन्धर्वों, यक्षों, राक्षसों एवं पितरादि जातियों का इतिहास लुप्तप्राय है। देवों में केवल आदित्यों, विशेषतः सोम और सूर्य (विवस्वान् आदित्य के वंशज वैवस्वत मनु का इतिहास ही पुराणों में मिलता हैं।[1] उत्तरयुगों में भारत पर अनेक बार असुरों, म्लेच्छों एवं शक, यवन, हूण जैसी बर्बर जातियों के आक्रमण हुए, इनके पश्चात् तुर्क, अरब, मुगोल, मंगोल आदि जातियों के आक्रमण कितने घातक एवं बर्बर थे, इसको वर्तमान ऐतिहासिक विद्वान् जानते ही हैं। इन बर्बर जातियों ने न केवल धर्म, संस्कृति और सभ्यता, बल्कि विपुल वाङ्मय को अग्निसात् किया। नालन्दा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के जलाने की घटना इतिहास प्रसिद्ध है। प्राचीनभवनों एवं मन्दिरों को मुस्लिम आक्रमणकारियों ने किस प्रकार नष्ट किया या उनके स्वरूप को परिवर्तित करके अपने महल या मस्जिदों में परिवर्तित कर दिया। ऐतिहासिक स्मारकों (भवनों या पुस्तकों) के नष्ट होने पर इतिहास स्वयं ही नष्ट हुआ या विकृत या विस्मृत हुआ। जिस प्रकार यूनानी इतिहासकारों ने सिकन्दर सम्बन्धी भ्रामक या मिथ्या या विपरीत[2] इतिहास लिखा। इसीप्रकार अनेक मुस्लिम इतिहासकारों—यथा अलबेरूनी, अबुल फजल, अलमासूदी, ज्याबरनी, सुलेमान सौदागर, इब्न खुरदादवा, अबु इसहाक, इब्नहौकल, रशीदुद्दीन, भक्करी—इत्यादि ने अपने समकालीन इतिहास को किस प्रकार भ्रामक एवं पक्षपातपूर्ण रूप से लिखा, यह विज्ञ पाठकों को अज्ञात नहीं होगा।[3]

---

१. प्रथम आदित्य (ज्येष्ठ अदितिपुत्र) वरुण ब्राह्मण था; असुरमहत् (अहुरमज्द) एवं उसके उत्तराधिकारी वैवस्वत यम का कुछ विस्तृत इतिहास पारसी धर्मग्रन्थ अवेस्ता में मिलता है। यम से पूर्व 'धर्मराज' उपाधि वरुण को प्राप्त थी। वरुणने पितृजाति के पूर्वज 'यम' को अपना उत्तराधिकारी बनाया जरथुस्त्र से अहुरमज्द (वरुण) कहते हैं—"मैंने विवनघत के पुत्र यिम को धर्मोपदेश दिया'···मैंने उसको पृथ्वी का राजा बनाया···यिम को राज्य करते ३०० वर्ष बीत गए···इस प्रकार ३००-३०० वर्ष करके उसने चार वार (कुल १२०० वर्ष) राज्य किया (अवेस्ता, फर्गद द्वितीय) टि०—दीर्घायु के सम्बन्ध में अग्रिम अध्याय में स्पष्ट किया जाएगा।

२. सिकन्दर पर पोरस की विजय को उसकी (पोरस) की पराजय के रूप में चित्रित किया, यह अब सिद्ध हो चुका है।

३. अनेक मुस्लिम शासकों ने अपने नाम से, पक्षपातपूर्ण एवं प्रशंसात्मक आत्मकथायें लिखवाईं जैसे बाबरनामा, जहाँगीरनामा इत्यादि।

भारतीय वाङ्मय, विशेषतः इतिहासपुराणों ने, प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में घोर भ्रम या अज्ञान या मिथ्याज्ञान, जिस प्रकार या जिन कारणों से उत्पन्न किया, अब इसी की विशेष मीमांसा, इस प्रकरण में करेंगे।

इतिहासपुराणों के भ्रष्टपाठ

रामायण, महाभारत और पचासों पुराणग्रन्थों में भ्रष्टपाठों की भरमार है, इसके लिए हम पाश्चात्यों यथा मैक्समूलर, विलसन, मैकडानल, वा कीथ को दोषी नहीं ठहरा सकते, न ही इस सम्बन्ध में इन लेखकों के प्रामाण्याप्रमाण्य का कोई मूल्य है। यह पाठभ्रष्टता तो उत्तरकालीनपुराणलिपिकार या प्रतिलिपिकारों या धूर्त चाटुकारों की है जो अज्ञानवश या लोभवश सत्य के साथ व्यभिचार करते थे। ग्रन्थों में क्षेपकों की भरमार है, यद्यपि सभी क्षेपक अप्रामाणिक या भ्रमोत्पादक नहीं, परन्तु भ्रामक क्षेपकों का बाहुल्य है' साम्प्रदायिक पक्षपात या मतभेद के कारण अनेक ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़ामरोडा गया। यथा ब्राह्मणों ने अनेक महापुरुषों को अपने-अपने सम्प्रदाय का अनुयायी सिद्ध करने की चेष्टा की। शैवों, वैष्णवों की भाँति जैनों और बौद्धों ने भी राम, कृष्ण, नेमिनाथ, ऋषभ, नारद आदि का विभिन्न एवं परस्पर विपरीत चरित लिखा। यदि किसी ब्राह्मण ने किसी स्त्री के साथ व्यभिचार किया तो उसको इन्द्र या वायु जैसे देवताओं के मत्थे मढ़ दिया। इसके सर्वोत्तम उदाहरण हैं—गौतम (गोत्रनाम) पत्नी अहिल्या और जनमेजय (पाण्डव) पत्नी वपुष्टमा, केसरी पत्नी अञ्जना (हनुमानमाता) और कुन्ती। यहाँ गौतम एक गोत्रनाम है, जिसका वास्तविक नाम अज्ञात है—गौतम ऋषि राजा दशरथ के समकालीन था। गौतम पत्नी के साथ छल से किसी ब्राह्मण या क्षत्रिय ने व्यभिचार किया, परन्तु पुराणसंस्कर्त्ताओं ने यह दोष इन्द्र के मत्थे मढ़ दिया—

तस्यान्तरं विदित्वा च सहस्राक्षः शचीपतिः।
मुनिवेषधरो भूत्वा अहल्यामिदमब्रवीत्॥

० ० ० ०

एवं संगम्य तु तदा निश्चक्रामोटजात् ततः।[1]

जो इन्द्र वेद में ईश्वर का प्रतिरूप है, उसको महाभारतोत्तरकाल में वैष्णव ब्राह्मणों ने किस निम्नकोटि का 'धूर्त' बनाया, यह इससे प्रकट होता है।

जनमेजय की पत्नी वपुष्टमा से अश्वमेधयज्ञ में संज्ञप्त (मृत) अश्व के साथ एक रात्रि सोने के मिथ अध्वर्यु या अन्य किसी ब्राह्मण सदस्य ने व्यभिचार किया, इस कारण जनमेजय का वैशम्पायन ब्राह्मणों से घोर संघर्ष हुआ और राज्य का विनाश भी हुआ। यहाँ भी ब्राह्मणों ने जनमेजय की पत्नी वपुष्टमा के साथ किए व्यभिचार को

---

१. रामायण (१।४८।१७,२२),

देवराज इन्द्र के मत्थे मढ़ दिया है।[1]

इसी प्रकार रामायण में कुशनाभ की १०० कन्याओं के साथ व्यभिचार को वायुदेव के मत्थे मढ़ा है।[2] हनुमान् की माता अञ्जना का वायु के संगम की कथा प्रसिद्ध ही है। कुन्ती के साथ किसी दुर्वासासंज्ञकब्राह्मण ने व्यभिचार किया, उसे सूर्य के मत्थे मढ़ दिया। इसी प्रकार पुराणों से इस प्रकार का मिथ्यापवादों के अनेक उदाहरण दिये दिये जा सकते हैं, जिससे प्राचीन इतिहास अत्यन्त विकृत एवं दूषित हो गया, जिससे कि सत्य इतिवृत का ज्ञान होना प्रायः अत्यन्त दुष्कर है।

रामायण, महाभारत, हरिवंश एवं विपुल पुराणों में भ्रष्टपाठों के विपुल उदाहरण हैं।

उदाहरणार्थ, भ्रष्टपाठों के दृष्टि से रामायण में निकृष्टतम उदाहरण दिये जा सकते हैं, इसके प्राचीन कोशों में अनेक पाठान्तरों एवं क्षेपकों में से मूल या सत्यपाठ को ग्रहण करना असंभवहीन नहीं तो अत्यन्त दुष्कर कार्य है। इसके तीन प्रधान पाठों (Recensions) दाक्षिणात्य, वंगीय एवं पश्चिमीय पाठों में कठिनाई से आठ सहस्र श्लोक समान होंगे, जबकि सम्पूर्ण रामायण में २४००० श्लोक हैं। एक प्राचीन बौद्ध ग्रंथ महाविभाषा के अनुसार वाल्मीकि ऋषि ने कुल १२००० श्लोकों की रचना की थी, उत्तरकाल में प्रक्षेप बढ़ते-बढ़ते रामायण का आकार ठीक द्विगुणित हो गया। वाल्मीकि अब से लगभग ७५०० वर्ष पूर्व हुये थे, अतः ऐसा होना प्रायः असंभव नहीं।

रामायण के उत्तरकालीन प्रतिलिपिकारों, गायकों (चारणभाटों) या प्रक्षेपकारों का अज्ञान निम्नता की किस सीमा तक जा सकता था, इसके उदाहरण रामायण में ही इक्ष्वाकुवंशावली के दो पाठ हैं। बालकांड (१।७० सर्ग) और अयोध्याकाण्ड (२।११०) में इक्ष्वाकुवंश अयोध्यशाखा की वंशावली पठित है, इस वंशावली में शासक पृथु का पुत्र षष्ठ शासक त्रिशंकु है, जो पुराणों के सर्वसम्मत पाठ के अनुसार अयोध्या का इकतीसवां शासक था, रामायण में त्रिशंकु का पुत्र धुन्धुमार पठित है जबकि उसका पुत्र प्रसिद्ध राजा हरिश्चन्द्र ३२वां शासक था। रघु का पुत्र पुरुषादक राजा कल्माषपाद बताया गया है और आगे सुदर्शन, अग्निवर्ण जैसे रघुवंशी राजा दाशरथि राम से पूर्व बताये गये हैं, अज का पिता नाभाग और उसका पिता ययाति बताया गया है। इस प्रकार की महाभ्रष्ट इक्ष्वाकुवंशावली रामायण में मिलती है। रामायण में इस प्रकार प्रक्षेपण करने वाले चारणभाट को न तो पुराणपाठों का सामान्य या स्वल्प सा भी ज्ञान था और न उसने रामायण से अर्वाचीनतर कालिदास के रघुवंशमहाकाव्य का ही परायण तो क्या, आँख से उठाकर भी नहीं देखा। इस प्रकार उत्तरकालीन प्रतिलिपिकार या चारणादि किस सीमा पर्यन्त घोर अज्ञान में आकण्ठ निमग्न थे, उससे भारतीय इतिहास का कैसे हित हो

---

१. तां तु सर्वानिवद्यागीं चकमे वासवस्तदा।
संज्ञप्तश्वमाविश्य यथा मिश्रीबभूव ह॥ (हरिवंश २।५।१३)

२. रामायण (१।३२)

सकता था, अतः इतिहास में महान् विकार आना स्वाभाविक था। इस सम्बन्ध में लेखक पं० भगवद्दत्त के इस मत से सहमत नहीं हैं "विष्वगश्व से लेकर बृहदश्व तक का पाठ रामायण में टूट गया है। इसका कारण स्पष्ट है। अत्यन्त प्राचीनकाल में किसी रामायण के प्रतिलिपिकर्त्ता ने दृष्टिदोष से विष्वगश्व के 'श्व' से पाठ छोड़ा और आगे मूलप्रति में बृहदश्व के 'श्व' से पाठ पढ़कर लिखना आरम्भ कर दिया।[१]" पाठत्रुटि का यह कारण बोधगम्य नहीं हैं। यदिसामान्य दृष्टि की भूल होती तो उस प्रतिलिपिकार ने कल्माषपाद का पुत्र शंखण, उसका पुत्र सुदर्शन, उसका पुत्र अग्निवर्ण, उसका पुत्र शीघ्रग, उसका पुत्र मरु और उसका पुत्र प्रसुश्रुत, उसका पुत्र अम्बरीष इत्यादि राजा कैसे लिख दिये। जब ये सभी राजा कुशलव के बहुत पश्चात् हुये और महाकवि कालिदास ने अग्निवर्ण[२] तक के जिन रघुवंशी राजाओं का वर्णन किया है, ये सभी रामायणपाठ में राम के पूर्वज बना दिये गये हैं, इसे प्रतिलिपिकार का सामान्य दृष्टिदोष नहीं कहा जा सकता। यह तो परममूढ़ता की घोरपराकाष्ठा है, जो दृष्टि किसी प्रमाणिकता का स्पर्श नहीं करती उसको दृष्टिदोषमात्र कैसे कहा जा सकता है। अतः रामायण के तथाकथित उक्त प्रतिलिपिकार को इतिहास का एक प्रतिशत भी ज्ञान नहीं था और न ही उसने पुराण या रघुवंश जैसे सामान्य ग्रंथों को ही आंख से देखा। यह परम अक्षम्य भूल है। ऐसी स्थिति में पाश्चात्य या कोई विदेशी कहे कि "भारतीयों को इतिहास लिखना नहीं आता था" तो यह प्रसंग अतिशयोक्ति या पक्षपात नहीं कहा जा सकता। कम से कम रामायण के प्रतिलिपिकारों के सम्बन्ध में यो यह कथन शत-प्रतिशत सत्य है कि उन्होंने ज्ञान, सत्य इतिहास को भी पूर्णतः विकृत करदिया और उसे गहन अन्धकार में डुबो दिया। यह अति खेद का विषय है।

उपरोक्त पाठत्रुटि या भ्रष्टता, प्रतिलिपिकारों का दृष्टिदोषमात्र नहीं थी, वरन् घोर मूढ़ता या परम अज्ञान का प्रतीक है, इसकी पुष्टि आगे के उदाहर्त्तव्य संकेतों से भी होगी।

हरिवंश (१।२० अध्याय) एवं अन्य पुराणों के प्रामाणिक इतिवृतों से ज्ञात होता है कि शन्तनु के पिता प्रतीप के समकालीन पाञ्चालनरेश काम्पिल्याधिपति नीपवंशी ब्रह्मदत्त थे।[३] परन्तु रामायण में चूली ब्रह्मदत्त को विश्वामित्र कौशिक के पूर्वज कुशनाभ (या कुशिक) का समकालीन बना दिया है।[४]

---

१. भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, भाग २, पृ० ७१;

२. कालिदास ने रघुवंश के अन्तिम एवं उन्नीसवें सर्ग में रघुवंश के अन्तिम राजा अग्निवर्ण का वर्णन इस प्रकार प्रारम्भ किया है—
"अग्निवर्णमभिषिच्य राघवः स्वे पदे तनयमग्नितेजसम्।" (रघुवंश १९।१)

३. प्रतीपस्य तु राजर्षेस्तुल्यकालो नराधिपः।
ब्रह्मदत्तो महाभागो योगी राजर्षिसत्तमः। (हरिवंश १।२०।११),

४. सराजा ब्रह्मदत्तस्तु पुरीमध्यवसत् तदा।
काम्पिल्यां परया लक्ष्म्या देवराजो यथा दिवम्॥
स बुद्धिं कृतवान् राजा कुशनाभः सुधार्मिकः।
ब्रह्मदत्ताय काकुत्स्थ दातुं कन्याशतं तदा॥ (रामायण १।३३।१९-२०)

इसी प्रकार बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड में अनैतिहासिकवृत्तान्तों की शतश कथायें हैं, यथा उत्तरकाण्ड में रावण का यम, वरुण आदि से युद्ध, मेघनाद का इन्द्र से युद्ध, विष्णु का सुमाल्यादि से युद्ध, रावण सहस्रार्जुन की समकालीनता, शुनःशेप को अम्बरीष का बलिपशु बनाने की कथा इत्यादि। इनमें अन्तिम इतिहास ऐतरेयब्राह्मण एवं पुराणों में प्रसिद्ध है कि शुनःशेप हरिश्चन्द्र का समकालीनता था और उसी के पुरुषमेध में वह बलि का पशु बनाया गया था, उसको अम्बरीष का समकालीन प्रदर्शित करना, उसी प्रकार घोर अज्ञानता का प्रतीक है, जिस प्रकार इक्ष्वाकुबंशावली का भ्रष्टपाठनिर्माण।

इस प्रकरण में हम सम्पूर्ण वंशावलियों की शुद्धता का परीक्षण नहीं कर रहे हैं, केवल भ्रष्टपाठों का उदाहरण संकेतित है, जिससे ज्ञात हो कि इतिहासविकृति में इन भ्रष्टपाठों का कितना भीषण योगदान है।

महाभारत, हरिवंश और पुराणों में विपुल पाठभ्रष्टता की न्यूनता नहीं है वरन् बाहुल्य ही है, यहाँ पर दो-चार उदाहरणों से ही इसकी पुष्टि करेंगे, सम्पूर्ण भ्रष्टपाठों का संकलन करने के लिए तो अनेक पृथुलग्रन्थों की आवश्यकता होगी और ऐसा संकलन करना यहाँ असम्भव ही है।

महाभारतग्रन्थ की रचना के समय और लेखकत्वादि के विषय में यहाँ विचार नहीं करना है, यहाँ पर केवल यह देखना है कि वर्तमानपाठों में कितनी समरूपता एवं निर्भ्रान्ति है, इस सम्बन्ध में दो-चार वातों पर ही विचार करेंगे।

सर्वप्रथम, यह बात काल्पनिक प्रतीत होती है कि देवयुग के पुरुषों यथा, इन्द्र, वरुण, भृगु, सप्तर्षि, वायु, अग्नि, यम आदि शतश पुरुषों को पाण्डवादि के समकालीन दिखाया गया है। नारदादि[1] सम्बन्धी एक-दो पुरुषों को छोड़कर इन्द्रादिसम्बन्धी समकालीन पूर्णतः काल्पनिक प्रतीत होते हैं। इन्द्र की कृष्ण या अर्जुन से तथाकथित भेंटों में ऐतिहासिकता नहीं है। देवयुगीन नागों और सुपर्णों का सम्बन्ध जनमेजय के नागयज्ञ से जोड़ा गया है, यह समकालीनता भी काल्पनिक है। हाँ मय, बाण, नरक, (असुर), तक्षक, वासुकि जैसे वंशनाम हैं, क्योंकि मयादि असुर और तक्षकादि नाग देवासुरयुग में हुए थे, उनके वंशज महाभारतयुग में इसी नाम से अभिहित किए जाते थे। प्रथम मय, शुक्राचार्य का पौत्र और त्वष्टा का पुत्र था। इसके वंशज भी मय ही कहलाते थे, एक मय का वध[2] दशरथ के समकालीन देवासुरयुद्ध में हुआ था, जिसकी पत्नी हेमा थी और पुत्र दुन्दुभि तथा मायावी थे, इन दोनों मयपुत्रों का वध वानर-राज बालि ने किया था। मय के वंशज किसी मय असुर ने युधिष्ठिर की सभा का

१. नारद निश्चय ही, अतिदीर्घजीवी पुरुष थे, जो दक्ष प्रजापति से पाण्डवों तक विद्यमान रहे, इसी प्रकार परशुराम भी दीर्घजीवी थे, इसका विवरण अन्यत्र लिखा जायेगा।

२. मयो नाम महातेजा मायावी वानरर्षभ।
विक्रम्यैवाशनिं गृह्य जघानेशः पुरन्दरः॥ (रामा० ३।५१।१०,१५)

निर्माण किया था। अतः मय, वासुकि आदि वंशनाम या जातिनाम थे। देवासुर युगीनऔर महाभारतकालीन सनामा पुरुषों में भ्रम होना स्वाभाविक है, परन्तु ये पृथक-पृथक् थे।

महाभारत, आदिपर्व में पुरुवंश की वंशावली दो स्थलों पर मिलती है, यथा अध्याय १४ और १५ में इनमें पर्याप्त अन्तर है। एक ही ग्रन्थ के दो क्रमिक अध्यायों में वंशावली का भेद होना निश्चय ही चिन्त्य है और इसे केवल प्रतिलिपिकार की भूल नहीं कहा जा सकता।

हरिवंशपुराण में क्षेपकों का बाहुल्य है, यद्यपि इस पुराण को पाठ पर्याप्त प्राचीन है, परन्तु अनेक भाग प्रक्षिप्त है, यह सहज ही ज्ञात हो सकता है। हरिवंश मूल में केवल १२ सहस्र श्लोक थे[1] अब श्लोक संख्या १६ सहस्र से भी अधिक है, स्पष्ट है, न्यूनतम चार सहस्र श्लोक क्षेपक हैं। इस पुराण में अनेक कथाओं की द्विरुक्ति है, वे निश्चय ही क्षेपक हैं, इसी प्रकार अनेक असम्भव वर्णनों के क्षेपक माना जाना चाहिए, यथा बालकृष्ण के शरीर से भेड़ियों की उत्पत्ति इत्यादि।[2]

इसी प्रकार समस्त पुराणों में क्षेपकों एवं भ्रष्टपाठों, साम्प्रदायिककल्पनाओं, असम्भवघटनाओं एवं अविश्वसनीय वर्णनों का बाहुल्य है, इसका संकेत तत्तत्प्रकरण में ही किया जाएगा। यहाँ पर सभी का संकेत करने पर भी ग्रन्थ का कलेवर अति वृद्ध हो जायेगा। केवल उन कारणों का सामान्य उल्लेख करेंगे, जिनके कारण ऐतिहासिक विभ्रम उत्पन्न हुये।

विभ्रमों का प्रारम्भ वेदों से

दिव्य-मानुष-इतिहास—वेदमन्त्रों एवं इतिहासपुराण में भ्रम का मुख्य कारण नामसाम्य, नामपर्याय, सदृशनाम, गोत्रनाम, पक्षिनाम, पशुनाम, ग्रहनाम, नक्षत्र-नाम, बहुव्रीहिसमास नाम एवं इसी प्रकार के अनेक कारणों से हुआ। इन समस्तविषयों का सोदाहरण स्पष्टीकरण इसी प्रकरण में करेंगे। परन्तु यह ध्यातव्य है कि इतिहास पुराणों में इन विविध विभ्रमों का बीज वेदमन्त्रों में ही बो दिया गया था। उदाहरणार्थ वेद में ऋषि प्रायः गोत्रनाम से ही अपना उल्लेख करता है, जैसे गौतम, कण्व, वसिष्ठ, कौशिक इत्यादि, इन गोत्रनामों से इतिहास में जितना भ्रम उत्पन्न हुआ, उतना भ्रम सम्भवतः और किसी कारण से नहीं हुआ। वेद में वसिष्ठगोत्र का ऋषि अपने को वशिष्ठ ही कहता है और विश्वामित्र का वंशज अपने को विश्वामित्र या कौशिक कहता है, इससे सर्वत्र आदिविश्वामित्र, जो इन्द्र का शिष्य और गुरु था, उसका भ्रम होता है, अतः इस प्रकरण में प्रत्येक प्रसिद्ध गोत्रप्रवरनामों की सोदाहरण मीमांसा

---

१. दशश्लोकसहस्राणि विंशच्छ्लोकशतानि च।
खिलेषु हरिवंशे च संख्यातानि महर्षिणा। (आदिपर्व २।३८०),

२. घोराश्चिन्तयतस्तस्य स्वतनूरुहजास्तथा।
विनिष्पेतुर्भयंकराः सर्वतः शतशो वृकाः॥ (हरि० २।८।३१)

करेंगे। उससे पूर्व वेद में दिव्यमानुष इतिहास की चर्चा करेंगे।

हम, इस मत को नहीं मानते कि वेदों में इतिहास नहीं है, प्राचीन ऋषियों ब्राह्मणकर्त्ता ऐतरेय, तैतिरीयादि यास्क, शौनक एवं सायणादि वेदभाष्यकारों ने वेद मन्त्रों में इतिहास माना है, और स्वयं वेदमन्त्रों में मन्त्रकर्त्ता ऋषि अपना नाम लेता है, इसका अपलाप किसी प्रकार भी नहीं किया जा सकता।[1] तर्क के द्वारा भी वेदमन्त्रों में इतिहास सिद्ध है। परन्तु इन सबके बावजूद कुछ विद्वानों की यह मान्यता निर्मूल नही है "इतिहासशास्त्र के आधार पर वेद-पाठ करने वाले के हृदय में अनायास ही यह सत्यता प्रकट होगी कि वेदमंत्रों के आश्रय पर ही अनेक व्यक्तियों के नाम रखे या बपले थे। इसीलिए भगवान् मनु के भृगुप्रोक्त शास्त्र १।२१ में कहा गया है—

" सर्वेषां तु नामामि कर्माणि च पृथक्-पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥

अर्थात् वेद के शब्दों से ही आदि में अनेक पदार्थों के नाम रखे गये।[2]" वाजसनेय याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि "मन्त्र में उस देवासुरयुद्ध का वर्णन नहीं है, जो इतिहास में वर्णित है[3]", स्वयं वेद मन्त्र में यही बात कही गई है 'हे इन्द्र ! तुमने न किसी से युद्ध किया और न मघवन्' तुम्हारा कोई शत्रु है, जो युद्ध कहे जाते हैं वे सब माया है, तुम पूर्वकाल में शत्रुओं से लड़े नहीं[4]।

ऋग्वेद और शतपथब्राह्मण के उक्त मन्तव्यों से यह भाव स्पष्टता से निकल रहा है कि मायायुद्धों एवं दिव्य इन्द्र के अतिरिक्त ऐतिहासिक देवासुर संग्राम निश्चयपूर्वक हुये थे, परन्तु उनका आशय यह है कि मन्त्र में सर्वत्र ऐतिहासिक वर्णन ही नहीं है, परन्तु उसकी छाया अवश्य है जैसा कि यास्क ने अनेकत्र माना है—'तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्रमृङ्मिश्रं गाथामिश्रं भवति" (नि० ४।६; "मन्त्र, इतिहास मिश्रित, ऋङ्मिश्र और गाथामिश्र होते हैं। यास्क ने यह भी लिखा है कि 'आख्यानयुक्त मन्त्रार्थ (पदार्थ) कथन में ऋषि को प्रीति होती है। भला, जहाँ ऋषि को मन्त्र में इतिहास कथन में प्रीति या आनन्द मिलता हो, वहाँ यह मानना कि मंत्रों में इतिहास नहीं कितनी विडम्बना है।

शब्द की निरुक्ति या निर्वचन से पुरुष का ऐतिहासिक अस्तित्व नहीं नहीं मिटाया जा सकता और यह नहीं समझना चाहिए चाहिए कि अमुक व्यक्ति से पूर्व अमुक पद था ही नहीं—यथा दशरथ, राम, इन्द्र, विभीषण, सुग्रीव, वृत्र,

---

१. शुनःशेपो यमह्वद् गृभीतः सोऽस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु। (ऋ० १।३३।१२)
२. वैदिक वाङ्मय का इतिहास, पृ० ३५८ भगवद्दत्त कृत;
३ तस्मादाहुर्नैतदस्ति यद्देवासुरं यदिदमन्वाख्याने त्वदुद्यत इतिहासे त्वत्
(श० ब्रा० ११।१। १६। ६);
४. न त्वं युयुत्से कतमच्चनाह न तेऽमित्रो मघवन् कश्चनास्ति।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाथ शत्रून्ननु पुरा युयुत्से। (ऋग्वेद)
५. ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवति आख्यानसंयुक्ता (नि० १०।१०),

विष्णु अदिति, कश्यप, गौतम, कण्व भरद्वाज, विश्वामित्र, वसिष्ठ, शुक्र, जमदग्नि, इत्यादि सहस्रों पदों के निर्वचन करने का यह तात्पर्य नहीं है कि कश्यप, इन्द्र आदि के जन्म से पूर्व कश्यपादि शब्द थे ही नहीं। पुरुषों के नाम लोक-वेद से ही रखे जाते हैं, इसका अर्थ यह नहीं है कि 'राम' शब्द दाशरथि राम से पूर्व था ही नहीं, आखिर यही नाम राम दाशरथि से पूर्व लोक में था, तभी तो यह नाम रखा गया। यही बात इन्द्र, अदिति, वसिष्ठ, कश्यपादि के सम्बन्ध में समझना चाहिए। भाव यह है कि वेदमन्त्र में कहीं इन्द्रादिपदों का ऐतिहासिक अर्थ हो सकता है और कहीं नहीं भी हो सकता। वेद में वृत्र, उर्वशी, आयु, नहुष, ययाति पुरु (पुरुष ?), आङ्गिरस, भृगु आदि शब्द ऐतिहासिक (मानुष) भी हो सकते हैं।[1] और दिव्य (द्युलोक सम्बन्धी) पदार्थ के बोधक भी हो सकते हैं। अतः पं० भगवद्दत्त का मत आंशिक रूप से सत्य है" विश्वामित्र, विश्वरथ, अत्रि, भरद्वाज, श्रद्धा, इला नहुष आदि नाम सामान्य श्रुतियाँ है। ऋषियों ने ये नाम वेदमन्त्रों से लेकर रख लिए।" साथ ही यह भी सत्य है कि वेद में केवल दिव्य नाम ही नहीं, मानुषनामों का उल्लेख है। स्वयं पं० भगवद्दत्त जी ने अनेक वेद के दिव्य-मानुषनामों की चर्चा की है, परन्तु वे इस गुत्थी को सुलझा नहीं पाये।[2]

दिव्य और मानुष निश्चय ही पृथक्-पृथक् पदार्थ थे। दिव्य का सामान्य अर्थ है—द्युलोक या सूर्य या आकाशसम्बन्धी (वस्तु) और मानुष का अर्थ है मनुष्य या पृथ्वी सम्बन्धी वस्तु। निम्न मन्त्रों में दिव्यमानुष का उल्लेख द्रष्टव्य है—

तदूचिषे मानुषेमा युगानि।[3]
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः।[4]
या ओषधीःपूर्वा जाता देवभ्यस्त्रियुगं पुरा।[5]
दैव्यं मानुषा युगाः।[6]
नाहुषा युगा मह्ना।[7]
सुदास इन्द्रः सुतुकाँ अमित्रानरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः।[8]

---

१. निरुक्त का यही भाव है—'तत्कोवृत्रः ? मेघ इति नैरुक्ताः त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः।" (नि० २।५।१६),।
निम्न मन्त्र में नहुषादिपदों के भी ये दोनों दिव्यमानुष अर्थ सम्भव हैं—
'त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन् नहुषस्स्य विश्वपतिम्।
इलामकृण्वन् मनुषस्य शासनीम्।' (ऋ० १।३२।२)

२. "दुःख है कि इस समय वेदविद्या लुप्तप्रायः है। अतः इन सबका यथार्थ अर्थ करना यत्नसाध्य है" (भा० बृ० इ० भाग २ पृ० १२५)।

३. ऋ० (१।१०३।४),

४. ऋ० (५।५२।४),

५. ऋ० (१०।९७।१),

६. शु० यजु० (१२।१११),

७. ऋ० (५।७३।३) (वेद में नहुष, पुरु, आयु आदि का अर्थ मनुष्य भी है।)

८. ऋ० (७।१८।९),

जैमिनीयब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है कि वेदमंत्रोक्त 'दाशराज्ञयुद्ध' मानुष[1] भी था। 'दिव्यदाशराज्ञयुद्ध' भी सम्भव है, जिसका मनुष्य या पृथ्वीलोक से सम्बन्ध नहीं।" वेद में मानुषीप्रजा का उल्लेख है।[2]

दिव्य का एक अर्थ होता सौर या सूर्यसम्बन्धी अतः, दिव्यवर्ष या दिव्ययुग का अर्थ हुआ सूर्यसम्बन्धी वर्ष या युग। मूल में सौरवर्ष ३६० या ३६५ दिन का होता है। इस 'दिव्य' शब्द से इतिहास में इतना बड़ा भ्रम उत्पन्न हुआ कि चतुर्युग के १२००० (द्वादश सहस्र) मानुषवर्षों को पुराणों में ४३२०००० (तेंतालीस लाख बीस हजार) मानुषवर्ष बना दिया गया जो मानव इतिहास में पूर्णतः असम्भव है। तात्पर्य यह है कि वेद के मानुष और दिव्य शब्दों ने इतिहास में ऐसा अप्रतिम और महान् भ्रम को जन्म दिया, जिससे कि भारतयुद्ध से पूर्व की ऐतिहासिकतिथियों का आधुनिक या प्राचीन इतिहासकार निर्णय ही नहीं कर सके।[3] इतिहास में एक शब्द[4] से ही कितना विकार हो सकता है, यह ज्वलन्त उदाहरण इसका प्रमाण है दिव्यशब्द।

नामसाम्य से इतिहास में विकृति

उपाधिनाम से भ्रम—अर्वाचीन या उत्तरकालीन इतिहास में जिस प्रकार विक्रम (विक्रमादित्य), साहसांक, शक, शंकराचार्य, कालिदास जैसे नाम उपाधि बन गये और और इतिहास में भ्रम उत्पन्न करने लगे, उसी प्रकार पुराणों (किंवा वेदों) में भी प्रजापति, ब्रह्मा, प्रचेता, इन्द्र, व्यास, सप्तर्षि, आदित्य, बृहस्पति, पञ्चजन जैसे उपाधिबोधक शब्द महान् भ्रमोत्पादक बन गए।

प्रजापतिपद—सर्वप्रथम 'प्रजापति' शब्द को ही लें, पुराण या रामायण, महाभारत में 'प्रजापति' का सामान्यतः अर्थ चतुरानन ब्रह्मा या स्वयम्भू अर्थ लिया जाता है। इसी प्रकार ब्राह्मणग्रंथों में बहुधा 'प्रजापति' का बिना विशेषनाम लिए सामान्य निर्देश किया गया है, जबकि प्रमुख प्रजापति २१ या इससे भी अधिक हुये थे। मुण्डको-

---

१. "क्षत्रं वै प्रातर्दनं दाशराज्ञो दश राजानः पर्यतन्त मानुषे,"
(जै० ब्रा० ३।२४५);
"एवं क्षत्रस्य मानुषात् व्युपापतत शत्रवः (जै० ब्र० ३।२४८)

२. पावकोऽग्निर्दीदाय मानुषीषु विक्षु (ऋ० ६।७)

३. मानुषयुग का अर्थ है १०० वर्ष और दिव्ययुग का अर्थ है ३६० वर्ष। दिव्य (सौर) और चान्द्रवर्ष में स्वल्प अन्तर था, इसका आभास पं० भगवद्दत्त को हो गया था। पाश्चात्यलेखक तो 'मानुषयुग' का अर्थ समझ ही नहीं पाये एतदर्थ द्रष्टव्य—लोकमांन्यतिलक कृत—आर्कटिक होम ऑफ दी वेदाज (पृ० १४०-१४८ मानुषयुगसम्बन्धी विवेचन); इसका (युग का) विशेष परिशीलन युगसम्बन्धी अध्याय में करेंगे।

४. इसीलिए वैयाकरणों ने कहा "एक ही सुप्रयुक्त शब्द स्वर्गलोक में कामदुघ होता है।" "एकः शब्द. सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुक् भवति"

पनिषद् (१।१।१) में 'ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव' में 'ब्रह्मा' शब्द 'आदित्य वरुण प्रजापति' का बोधक है, क्योंकि अथर्वा या भृगु ऋषि ही वरुण के ज्येष्ठपुत्र थे, परन्तु सामान्य पाठक यहाँ 'ब्रह्मा' का अर्थ स्वयम्भू या चतुरानन (प्रथम प्रजापति) ग्रहण करेगा। इसी प्रकार निम्न ब्राह्मणप्रवचनों में 'प्रजापति' शब्द भ्रमोत्पादक है—(१) प्रजापतिरिन्द्रमसृजत आनुजावरं देवानाम् (तै० ब्रा० २।२।१०।६१), (२) इन्द्रो हैव देवानाम् अभिप्रवव्राज विरोचनोऽसुराणाम्······तौ समित्पाणी प्रजापतिसकाशमाजग्मतुः (छा० ५।८।७); सामान्यतः जिस पाठक को इतिहास का ज्ञान नहीं होगा, वह यहां 'प्रजापति' शब्द से 'ब्रह्मा' का ही ग्रहण करेगा, परन्तु इतिहासविज्ञ ही जान सकता है कि यहां देवासुरों के जनक 'कश्यप मारीच' प्रजापति का उल्लेख है। पुराणों के वर्तमानपाठों में इस भ्रम की पुनरावृत्ति 'ब्राह्मणग्रन्थों' के कारण भी हुई है, जहां वे प्रजापतिविशेष का नामनिर्देश नहीं करते।

इसी प्रकार दक्ष के पिता का नाम 'प्रचेता' था, जो एक महान् प्रजापति हुए और 'वरुण आदित्य' को भी 'प्रचेता' कहते हैं, सप्तर्षियों के 'जन्मद्वयी' के सम्बन्ध में 'प्रचेता' या वरुण (ब्रह्मा) शब्द से यह भ्रम उत्पन्न हुआ है, स्वयं पुराणकार इस भ्रम में फंस गये, फिर सामान्य पाठक इस प्रसंग में सत्य इतिहास को कैसे जान सकता है।

आदित्यपद—आदित्य, सूर्य, विवस्वान् और देवादि शब्द भी इतिहास में घोर भ्रम उत्पन्न करते हैं। कश्यप और अदिति के द्वादशवरुणइन्द्रादिपुत्र 'आदित्य' कहे जाते हैं। 'मार्तण्ड', आकाशस्थ सूर्य को विवस्वान् या आदित्य भी कहते हैं। वेदार्थ में इसी दिव्य (सूर्य) और मानुष विवस्वान् से महान् भ्रान्ति होती है और वही भ्रान्ति इतिहासपुराणों में यथावत् विद्यमान है। इतिहास में यम और मनु का पिता विवस्वान् पृथ्वी का राजा और मनुष्य था। आकाश के विवस्वान् या सूर्य और आदित्य को हम प्रत्यक्ष देखते हैं। ऐतिहासिक वरुण, इन्द्र, विष्णु आदि सबकी 'आदित्य' संज्ञा प्रसिद्ध थी। बिना व्यक्तिविशेष का नाम लिए केवल 'आदित्य' कहने से इतिहास में भ्रम के लिए महान् अवकाश है और ऐसा भ्रम वेदमंत्रों और इतिहासपुराणों में है ही। इस भ्रान्ति का निराकरण अतिदुष्कर कर्म है, तथापि इस ग्रंथ में यथाप्रसंग यथार्थ 'आदित्य' का यथार्थ ऐतिहासिक उल्लेख किया जायेगा।

इन्द्रपद—इन्द्र भी अनेक हुए हैं, पुराणों में चौदह मन्वन्तरों के इन्द्रादिदेवों का पृथक् निर्देश है। वैदिकग्रन्थों में काश्यप इन्द्र के अतिरिक्त अन्य इन्द्रों का भी उल्लेख है।[1] सामान्यतः लोग एक ही इन्द्र को जानते हैं।

व्यास-उपाधि—भारतीय इतिहास में २८ या ३० व्यास हुये हैं, पुराणों में इनका बहुधा वर्णन है, सामान्यजन क्या बड़े-बड़े संस्कृतज्ञ भी केवल एक ही व्यास पराशर्य कृष्णद्वैयायन से परिचित हैं अतः अनभिज्ञ व्यक्ति निश्चय ही भ्रम में पड़

---

१. यथा बृहद्देवता (७।४९-६०) में वैकुण्ठ इन्द्र का वर्णन—

प्राजापत्यासुरी त्वासीद् विकुण्ठा नाम नामतः।
तस्यां चेन्द्रः स्वयं जज्ञे जिघांसुर्दैत्यदानवान्॥

जाएगा, अतः 'व्यास' पदवी से यत्र तत्र सर्वत्र पाराशर्य व्यास का भ्रम होता है, कुछ विद्वानों के मत में गीता के निम्न श्लोक में चौबीसवें व्यास ऋक्ष वाल्मीकि का उल्लेख है—

मुनीनामहं व्यासो कवीनामुशना कविः ।[1]

सप्तर्षिपद-उपाधि—व्यासपदवी के समान 'सप्तर्षि' एक महती पदवी थी। १४ मन्वन्तरों में १४ सप्तर्षिगण हुए। अतः बिना विशिष्ट मन्वन्तर के उल्लेख के यह ज्ञात नहीं हो सकता कि किस सप्तर्षिगण का उल्लेख है। प्रत्येक मन्वन्तर में इन सात ऋषियों का एक प्रधानवंशज सप्तर्षि हुआ—अत्रि, भृगु, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु और वसिष्ठ। यथा दशम मन्वन्तर में पुलह पुत्र हविष्मान् भृगुवंशी सुकृति, अत्रिवंशी आपोमूर्ति, वसिष्ठवंशी अष्टम, पुलस्त्यपुत्र प्रमिति, कश्यपगोत्रीय नभोग और अंगिरावंशी नभस नाम के सप्तर्षि थे।[2] यहाँ पर सप्तर्षियों के नाम दे दिये हैं, यदि केवल इनको वसिष्ठ, अत्रि आदि ही कहा जाए जैसा कि पुराणों में बहुधा कहा गया है, तब भ्रम के लिए पूर्ण स्थान रहता है।

चाक्षुषमन्वन्तर (षष्ठ) में पृथुवैन्य के राज्यकाल में अत्रि आदि सप्तर्षियों के वंशज चित्रशिखण्डी नाम के सप्तर्षि थे, किन्होंने लक्षश्लोकात्मकधर्मशास्त्र बनाया। नामों से आदिम अत्रि आदि का भ्रम पूर्णसंभव है।

इसी प्रकार 'पंचजन' संज्ञक अनेक जातियाँ विभिन्न कालों में हुई यथा देवयुग में—असुर, देव, गंधर्व, सुपर्ण और नाग पंचजन थे, ययाति के पाँच पुत्रों के वंशजों यथा यादव, पौरव आदि भी पंचजन थे, भार्म्यश्व के मुद्गल आदि पाँच पुत्र भी पंचजन या पांचाल कहलाये। इस प्रकार की तुल्य या सामान्य संज्ञाओं से इतिहास में भ्रम हुआ है।

इसी प्रकार ब्रह्मा, बृहस्पति आदि भी पदवियाँ थी, यह पदवी किसी भी विशिष्ट विद्वान् की हो सकती थी। वरुण प्रजापति को भी 'ब्रह्मा' पदवी प्राप्त थी, यज्ञ में ब्रह्मा एक ऋत्विक् होता था। अतः इन पदों ने भी इतिहास में भ्रमोत्पादन में सहयोग दिया।

नामसादृश्य से भ्रम—एक ही नाम के अनेक राजा, ऋषि या अन्य पुरुष विभिन्न समयों में होते हैं और हुए हैं, पुराण के एक श्लोक[3] में बताया गया है कि

---

१. श्रीमद्भगवद्गीता (१०।३६), द्रष्टव्य श्री रामशंकर भट्टाचार्यकृत इतिहास पुराण अनुशीलन

२. दशमे त्वथ पर्याये द्वितीयस्यान्तरे मनोः ।
हविष्मान् पौलहश्चैव सुकृतिश्चैव भार्गवः ।
आपोमूर्तिस्तथात्रेयो वासिष्ठाश्चाष्टमः स्मृतः ।
पौलस्त्यः प्रमितिश्चैव नभोगश्चैव काश्यपः ।
अंगिरा नभसः सप्तैते परमर्षयः ।। (हरिवंश० १।७।६५,६६)

३. शतं ब्रह्मदत्ताणामशीतिर्जनमेजयाः ।
शतं वैप्रतिविन्ध्यानां शतं नागाः सहैहयाः ।। (ब्रह्माण्ड २।३।७४।२६६-६७)

ब्रह्मदत्त, जनमेजय, भीम इत्यादि नामों के सौ-सौ राजा हो चुके हैं, अतः जबतक उसका वंश, कालादि ठीक-ठीक ज्ञात नहीं हो तो भ्रम उत्पन्न होता है। इसी प्रकार 'राम' नाम के अनेक पुरुष या महापुरुष हुये हैं। अतः बिना विशेषण के भ्रम के लिए पूर्ण स्थान है, यथा गीता के निम्न श्लोकार्थ में उल्लिखित राम से टीकाकार 'दाशरथि राम' और 'परशुराम भार्गव' दोनों ही अर्थ लेते हैं। "रामः शस्त्रभृतामहम्[1]"

दोनों ही श्रेष्ठ शस्त्रविद् थे, परन्तु इतिहास से ज्ञात है कि भार्गव राम ही विशेष अस्त्रविद् या धनुर्वेदपारग थे, अतः गीता में उन्हीं का उल्लेख माना जाना चाहिये। यह रहस्य सत्य इतिहासवेत्ता ही ज्ञात कर सकता है।

इसी प्रकार दशरथ, कृष्ण, अर्जुन, भीम आदि शतशः उदाहरण नामसादृश्य के दिये जा सकते हैं। परन्तु इतने ही पर्याप्त हैं।

नामपर्याय से भ्रम—पुराणों में पृथु के एक पुत्र के अन्तर्धि का नाम अर्न्तधान भी मिलता है।[2] इसी प्रकार 'अरिमर्दन' नाम के राजा को 'शत्रुवर्धन' भी कहा गया है।[3] पिप्पलाद को पिप्पलाशन, कणाद को कणभक्ष, शिलाद को शिलाशन कहा गया हैं।[4] इसी प्रकार हिरण्याक्ष के लिए हिरण्यचक्षु[5] अग्निवेश को वह्निवेश हुताशवेश आदि नाम-पर्याय पुराणों में मिलते हैं। कहीं-कहीं नाम के आदिम भाग में किंचित् परिवर्तन से भी भ्रम हो सकता है यथा नेदिष्ट के लिए दिष्ट, सुबाहु के लिए बाहु, परशुराम के लिए पर्शुराम।[6] नाम के साथ विशेषण का सांकर्य भी सम्यग् इतिहासबोध में बाधक होता है, यथा कृष्णात्रेय, श्वेतात्रेय, पीतात्रेय अथवा दृप्त बालाकि गार्ग्य (श० ब्रा० १४।१।१।१), सौर्यायणि गार्ग्य (प्रश्नोपनिषद्), शैशिरायण गार्ग्य यत्र-तत्र इतिहास पुराणों में वाष्कल को ही वाष्कलि (वि० पु० ३।४।१६-१७), उत्तम को औत्तमि (वि० पु० ३।१।१२) अगस्त्य को अगस्ति, पुलस्त्य को पुलस्ति, कुशिक को कौशिक, कात्यायन को कात्य, मार्कण्ड को मार्कण्डेय, च्यवन को च्यावनेय, यम को मृत्यु, धर्मराज यमराज या अन्तक, बुध को वीरसोम, शुक्र को भृगु, भृगुपति या भार्गवमात्र, परशुराम को भृगु या भार्गव या भृगुपति कहा गया है। ये सभी नाम पर्याय इतिहास में भ्रमोत्पादक अथवा इतिहासबाधक बन सकते हैं, यदि पाठक सम्यक् रूप से इतिहास का गम्भीर-ज्ञाता न हो। परन्तु ऐसी स्थिति में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ विद्वान् को भ्रम हो सकता है और स्वयं पुराणकारों या प्रतिलिपिकारों ने पुराणपाठों में अनेक भ्रमों या कल्पनाओं को जन्म दिया, जिससे इतिहास विकृत हुआ है और जिसका संशोधन आज अतिदुष्कर एवं

---

१. गीता (१०।३१)
२. द्रष्टव्य विष्णुपुराण (१।१४।१)
३. मार्कण्डेयपुराण (२६।६, २६।९, २६।२०)
४. द्रष्टव्य—इतिहासपुराण अनुशीलन पुस्तक में—पौराणिकव्यक्तिनामघटित समस्यायें शीर्षक लेख।
५. वामनपु० (१०।४५)
६. ब्रह्माण्ड २।५०।१४, विष्णु ४।१।५ और ब्रह्मवैवर्त० (३।२५।२०)

कष्टसाध्य कर्म प्रतीत होता है।

समासनाम—समासनामों से भी इतिहास में बाधा होती है, जैसाकि 'इन्द्रशत्रु-र्वर्धस्व' का उदाहरण तैत्तिरीयसंहिता एवं व्याकरणशिक्षा ग्रन्थों में दिया जाता है, इसी प्रकार षण्मुख, षाण्मातुर पतंजलि, चक्रधर, पीताम्बर, हलायुध वृकोदर, कानीन, मेघनाद, इन्द्रजित् कश्यप, पश्यक, प्रज्ञाचक्षु जैसे अनेकविध समासनाम इतिहास में कभी-कभी महान् बाधा उत्पन्न करते हैं। पुराणों में इस प्रकार के नाम बहुधा प्रयुक्त हुए हैं।

गोत्रनामों से महती भ्रान्ति—जैसाकि पूर्व संकेतित है कि गोत्रनामों द्वारा ऐतिहासिक भ्रान्ति का बीज वेदमन्त्रों में ही बो दिया गया था और इतिहासों एवं पुराणों में इसकी पूरी फसल काटी गई है। इस भ्रान्ति के शिकार यास्क जैसे वेदाचार्य और उनसे पूर्व जैमिनीयब्राह्मण के कर्त्ता व्यासशिष्य जैमिनि ऋषि तक हो गये। इसका सर्वप्रसिद्ध उदाहरण 'विश्वामित्र' या 'वसिष्ठ' के गोत्रनामों से दिया जा सकता है। निम्न ब्राह्मणवाक्य में 'विश्वामित्रजमदग्नी' पद निश्चय ही इन ऋषियों के किन्हीं वंशजों के लिए आया है, जो कुरु के पिता संवरण के समय हुये थे—

'भरता ह वै सिन्धोरपतार आसुः इक्ष्वाकुभिरुद्बाढाः।
तेषु ह विश्वामित्रजमदग्नी ऊषतुः॥' (जै०ब्रा० ३।२३८)

यहाँ पर स्वयं 'भरत' और 'इक्ष्वाकु' शब्द इन्हीं राजाओं के वंशजों के लिए प्रयुक्त हैं, इसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है। वेदमन्त्रों और इतिहासपुराणों में गोत्रनामों पर विचार करने से पूर्व पाणिनिव्याकरण के निम्न सूत्र द्रष्टव्य है—

(१) अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमांगिरोभ्यश्च।[1]
(२) यस्कादिभ्यो गोत्रे।[2]
(३) बह्वच इञः प्राच्यभरतेषु।[3]
(४) आगस्त्यकौण्डिन्ययोरगस्तिकुण्डिन च।[4]

इन सूत्रों का अर्थ है—(१) अत्रि आदि के गोत्रप्रत्यय का बहुवचन में लुक् होगा अर्थात् अत्रिदि के वंशज भी अत्रयः (या अत्रिः), भृगुः (भृगवः), कुत्सः (कुत्साः) वसिष्ठः (वसिष्ठाः), गौतमः (गौतमाः), अंगिरसः (अंगिराः) कहलाएँगे। (२) यस्कादि गोत्रे में बहुवचन में प्रत्ययलुक् होगा—यथा यस्क के वंशज भी यस्काः, मित्रयु के वंशज मित्रयवः, कहलाएँगे। (३) प्राच्यगोत्रों एवं भरतगोत्र में बह्वच के परे इञन्त प्रत्यय का लुक् होगा यथा युधिष्ठिर के वंश भी युधिष्ठिरः या युधिष्ठिराः या भरतः के भरताः कहे जाएँगे। (४) आगस्त्य (अगस्त्यवंशज) और कौण्डिन्य (कुण्डिन वंशज) क्रमशः अगस्ति या अगस्त्यः, कुण्डिन या कुण्डिनाः कहलाएँगे। इसी प्रकार

---

१. अष्टाध्यायी (२।४।६५),
२. वही, (२।४।६३),
३. वही, (२।४।६६,
४. वही, (२।४।६०),

पुलस्त्य (पौलस्त्य) वंशज पुलस्ति या पुलस्तयः कहलायेंगे।

ये उदाहरण मात्र है। इनके प्रकाश में निम्न वेदमंत्र द्रष्टव्य है :—

(१) त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने।[1]

(२) द्युम्नवद् ब्रह्म कुशिकास एरिरे।[2]

(३) भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः।[3]

(४) प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः।[4]

(५) कण्वा इन्द्रं यदक्रत।[5]

उपर्युक्त मन्त्रों में गृत्समद, कुशिक, भरद्वाज, वसिष्ठ और कण्व शब्द बहुवचन में प्रयुक्त हुये हैं, स्पष्ट है ये शब्द तत्तद् ऋषिवंशजों के लिए प्रयुक्त हुये हैं। वेद, उपनिषद् एवं इतिहासपुराणों में अनेकत्र एकवचन में भी ऋषि, प्रायः अपने वास्तविक नाम के स्थान पर गोत्रनाम को लेता है। जैसे वसिष्ठ या विश्वामित्र या कण्व या भरद्वाज का कोई वंशज, चाहे उनसे पचास या सौ पीढ़ी के अनन्तर, अपने को वसिष्ठ या वासिष्ठ, विश्वामित्र या कौशिक, कण्व या काण्व, भरद्वाज या भारद्वाज कहे तो उसका वास्तविक परिचय या इतिहास ज्ञात नहीं हो सकेगा और वह इतिहास तिमिरावृत्त ही होता चला जायेगा। आज भी वसिष्ठ, भरद्वाज, पराशर, कश्यप गोत्रनामधारी शतशः सहस्रशः व्यक्ति (ब्राह्मण) मिलेंगे। स्पष्ट है, यदि हम केवल गोत्रनाम या जातिनाम लेंगे तो निश्चय ही उत्तरकाल में भ्रम उत्पन्न होगा। कुछ पुराणों के प्राचीन पाठों में यथा वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराण तथा बृहदारण्यकोपनिषद् जैसे कुछ उपनिषदों में पिता के साथ पुत्र का नाम उल्लिखित हैं, वहाँ इतिहासबोध में सुविधा या सौकर्य रहता है, यथा बृहदारण्योकपनिषद् में द्रष्टव्य है—नैध्रुविकाश्यप, शिल्पकाश्यप, हरितकाश्यप (१।६।४) इत्यादि विशिष्ट काश्यप ऋषियों का सम्यक् बोध होता है। इसी प्रकार जैमिनिपायनिषद् में ऋष्यश्रृंगकाश्यप, पुलुष प्राचीनयोग्य, सत्ययज्ञ पौलुषि इत्यादि नामों में पितासहित ऋषिनाम है। पुराणों में एतादृश निदर्शन द्रष्टव्य हैं—रोमहर्षण के षट् शिष्यों के नाम हैं—

आत्रेयः सुमतिर्धीमान् काश्यपोह्यकृतव्रणः।
भारद्वाजोऽग्निवर्चाश्च वासिष्ठो मित्रयुश्च यः।
सावर्णिः सौमदत्तिस्तु सुशर्मा शांशपायनः।।

(वायु० पु० ६।१५५-५६)

---

१. ऋ०, (२।४।६),
२. ऋ०, (३।२६।१५),
३. ऋ०, (६।२३।१०);
४. ऋ०, (७।३३।३),
५. ऋ०, (८।६।३),
मूल गोत्र प्रवर्तक ऋषि ये थे—मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ। अन्यत्र भृगु को प्रधानता दी है। गोत्रप्रवर्तक ऋषि शतशः हुये, जिनका परिचय अन्यत्र लिखा जायेगा।

गोत्रनाम से इतिहास में भ्रान्ति के चार निदर्शन उदाहृत करके गोत्रभ्रान्ति प्रकरण को समाप्त करेंगे—(१) आगस्त्यः (२) पुलस्त्य (३) वशिष्ठ और विश्वामित्र कौशिक।

अगस्त्य—प्रथम या आदिम अगस्त्य मैत्रावरुण अर्थात् मित्र और वरुण के पुत्र और वसिष्ठ के सहोदर भ्राता थे, इन्होंने ही नहुष को शाप दिया था, जिससे वह दस सहस्रवर्ष अजगरयोनि में पड़ा रहा।[१] एक अगस्त्य लोपामुद्रा के पति विदर्भराज के समय में हुये, तृतीय अगस्त्य दाशरथि राम के समकालीन थे। अतः सभी अगस्त्य एक नहीं हो सकते। इनके समयों में सहस्रों वर्षों का महदन्तर था। पाणिनि के सूत्र से स्पष्ट है कि अगस्त्य के वंशज भी अगस्त्य या अगस्ति कहलाते थे, जो कुछ 'अगस्त्य' पर लागू है, वही 'पुलस्त्य' पर लागू होता है। आदिम पुलस्त्य, अगस्त्य से भी प्राचीनतर ऋषि थे और स्वायम्भुव मनु, मरीचि आदि ब्रह्मा (स्वयम्भू) के दश मानसपुत्रों में से एक थे। स्पष्ट है वे उन आदिम सप्त ऋषियों में से एक थे जिनसे पृथ्वी पर समस्त प्रजा उत्पन्न हुई।[२] कुबेर वैश्रवण और रावण के पितामह तथा विश्रवा के पिता पुलस्त्य आदिम पुलस्त्य नहीं हो सकते। दोनों पुलस्त्यों में न्यून से न्यून दशसहस्रवर्षों का अन्तर था। दशसहस्रवर्ष की आयु प्रायः असम्भव है और यदि सम्भव भी हो तो इतनी वृद्धायु में कोई ऋषि सन्तान उत्पन्न नहीं करेगा। अतः निश्चय दोनों पुलस्त्य भिन्न-भिन्न थे। सत्य यह है कि पुलस्त्य के वंशज भी 'पुलस्त्य' या पुलस्ति कहे जाते थे।

वसिष्ठ—इसी प्रकार ब्रह्मा के मानसपुत्र वसिष्ठ और मैत्रावरुणि वसिष्ठ एक ही नहीं थे, यह तो पुराणों में ही स्पष्ट लिखा है कि वरुण के यज्ञ में भृगु, वसिष्ठादि सप्तर्षियों का द्वितीय जन्म हुआ था।[३] इसी यज्ञ में वसिष्ठ के साथ अगस्त्य का जन्म हुआ।[४] इक्ष्वाकुवंशियों का पुरोहित कम से कम वैवस्वत मनु से दाशरथि राम तक मैत्रावरुणि वसिष्ठ को कहा गया है। परन्तु यह एक वसिष्ठ नहीं था, स्पष्ट है वसिष्ठ के वंशज भी वसिष्ठ ही कहे जाते थे जैसा कि वेदमन्त्र से भी सिद्ध होता है—

"प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः।" (ऋ० ७।३३।३),

इसी प्रकार, वसिष्ठ के समान विश्वामित्र के वंशज विश्वामित्र या 'कौशिक' कहे जाते थे। इस गोत्रनाम के कारण, सम्भवतः यास्क भी भ्रम में पड़ गये और आदिम

---

१. दशवर्षसहस्राणि सर्परूपधरो महान्।
विचरिष्यसि पूर्णेषु पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि। (उद्योगपर्व १७।१५)

२. महर्षयः सप्तपूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः॥ (गीता १०।६),

३. भृगुर्महर्षिर्भगवान् ब्रह्मणा वै स्वयम्भुवा।
वरुणस्य क्रतौ जातः पावकादिति नः श्रुतम्॥ (आदिपर्व ५।८)

४. स्थले वसिष्ठस्तु मुनिसंभूतः ऋषिसत्तमः।
कुम्भे त्वगस्त्यः संभूतोजज्ञेमत्स्यो महाद्युतिः॥ (बृहद्देवता ५।१५१)

विश्वामित्र और सुदास पांचाल पुरोहित विश्वामित्र को एक ही माना,[1] यद्यपि उन्होंने ऐसा स्पष्ट नहीं लिखा, परन्तु प्रतीति ऐसी ही होती है। परन्तु इस भ्रांति का मूल बीज वेदमंत्र में ही है जैसा कि हम पहले संकेत कर चुके हैं।[2] यह भ्रांति गोत्रनाम विश्वामित्र और कौशिक से होती है। रामायण में वर्णित प्रसिद्ध कौशिक या विश्वामित्र के सम्बन्ध में भी यही भ्रान्ति है।[3] इन सभी भ्रान्तियों का विस्तृत निराकरण 'ऋषिवंश' प्रकरण में ही होगा। यहाँ पर इन सबका संक्षिप्त उल्लेख इसलिए किया गया है कि पाठकों को ज्ञात हो कि इतिहासविकृति के प्राचीन कारण कौन-कौन से हैं।

मनुष्य के नक्षत्रनाम

वेदमन्त्रों के समान पुराणों में मनुष्यों और नक्षत्रों के नाम समान हैं, उदाहरणार्थ ध्रुव, आदित्य सूर्य (विवस्वान्), सोम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, रोहिणी आदि २७ सोमपत्नियाँ, सप्तर्षि, इसी प्रकार चान्द्र तिथियों के नाम कुहू, सिनीवाली इत्यादि, भूतेश (रुद्र), कार्तिकेय (कृत्तिका देवियाँ, नक्षत्र), अगस्त्य, कश्यप इत्यादि शतशः नाम हैं जो भ्रमों की सृष्टि करते हैं। वेदों और पुराणों में इस नामसाम्य के आधार पर दिव्य या पार्थिव घटनाओं का ऐतिह्यदोहन असंभव नहीं तो अत्यन्त दुष्कर अवश्य है। इस भ्रान्ति के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

वैदिकग्रन्थों में ध्रुव और ध्रुवग्रह (सोमपात्र) का बहुधा उल्लेख है ध्रुववंश-वर्णन के प्रसंग में श्रीमद्भागवतपुराण में यह वर्णन द्रष्टव्य है[4]—

प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः।
उपयेमे भ्रमिं नाम तत्सुतौ कल्पवत्सरौ॥
स्वर्वीथिर्वत्सरस्येष्टा भार्यासूत षडात्मजान्।
पुष्पार्णं तिग्मकेतुं च इषमूर्जं वसुं जयम्॥
पुष्पार्णस्य प्रभा भार्या दोषा च द्वे बभूवतुः।
प्रातर्मध्यदिनं सायमिति ह्यासन् प्रभासुताः।

---

१. "विश्वामित्र ऋषि : सुदासः पैजवनस्य पुरोहित आस," (निरुक्त २।७।२४)

२. प्रसिन्धुमच्छा बृहती मनीषाऽवस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः (ऋ० ३।३३।५),
द्रष्टव्य है कि जमदग्नि के वंशज 'जमदग्नयः' कहे जाते थे—
'सूर्यक्षयादिहाहृत्य ददुस्ते जमदग्नयः।' (बृहद्दे० ४।११४)
स्पष्ट है—जमदग्नि के वंशज भी जमदग्नयः या जमदग्नि कहे जाते थे।

३. शीघ्रमाख्यात मां प्राप्तं कौशिकं गाधिनः सुतम्। (रामा० ।१८।४०)
कुशिकस्य सुनुः और 'कौशिक' शब्द भ्रान्तिजनक है। सुनु शब्द भी वंशज के अर्थ में है। वेद में विश्वामित्र के वंशजों को भी 'विश्वामित्र' ही कहा जाता था।

४. द्रष्टव्य—भारतीय खगोलविज्ञान पृ० ७७ पं० जगन्नाथ भारद्वाज

प्रदोषो निशीथो व्युष्ट इति दोषासुतास्त्रयः ।
व्युष्टः सुतः पुष्करिण्यां सर्वतेजमादधे ।।
(भागवत ४।१३।११-१४)

उपर्युक्त वर्णन में 'ध्रुव' निश्चय ही स्वायम्भुव मनुपुत्र उत्तानपाद का पुत्र था, शेष के विषय में यह निश्चय करना कठिन है कि भ्रमि, वत्सर आदि वास्तव में मानव (या मानवी) थे या द्युलोक या अन्तरिक्ष के नक्षत्रादि । 'भ्रमि' के विषय में पं०जगन्नाथ भारद्वाज का व्याख्यान है' "पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, इसीलिये पृथ्वी को 'भ्रमि' कहा गया है ।"[1]

खगोलविज्ञान में ध्रुव, भ्रमि, शिशुमार, स्वर्वीथि आदि शब्द भले ही आकाशीय नक्षत्रादि हों, परन्तु इतिहास में ध्रुवादि निश्चय ही ऐतिहासिक पुरुष थे। परन्तु मानव इतिहास और ज्योतिष के नाम समान हो जाने पर भ्रान्ति के लिए पूर्ण अवसर है और इससे यह समझना कठिन है कि यह ज्योतिष का वर्णन है या मानव इतिहास का । इसके कुछ और उदाहरण द्रष्टव्य है...

(१) अभिजित् स्पर्धमाना तु रोहिण्याः कन्यसी स्वसा ।
इच्छन्ती ज्येष्ठतां देवी तपस्तप्तुं वनं गता ।
तत्र मूढ़ाऽस्मि भद्रं ते नक्षत्रं गगनात् च्युतम् ।
कालं त्विमं परं स्कन्द ब्रह्मणा सह चिन्तय ।
धनिष्ठादिस्तदा कालो ब्रह्मणा परिकल्पितः ।
रोहिणी ह्यभवत् पूर्वमेवं संख्या समाभवत् ।
एवमुक्ते तु शक्रेण कृत्तिकास्त्रिदिवं गता ।
नक्षत्रं सप्तशीर्षाभं भाति तद्वह्निदैवतम् ।।[2]

इन श्लोकों के अर्थ के सम्बन्ध में श्री शंकर बालकृष्णादीक्षित ने लिखा है— "ये श्लोक स्कन्दाख्यान के हैं । सब वाक्यों का भावार्थ समझ में नहीं आता । अभिजित्, धनिष्ठा, रोहिणी, और कृत्तिका नक्षत्रों से सम्बन्ध रखनेवाली भिन्न-भिन्न प्रचलित कथायें यहाँ गुँथी हुई-सी दिखाई देती हैं । इससे इनके पारस्परिक सम्बन्ध का ठीक पता नहीं चलता ।"[3] (परन्तु इतना स्पष्ट है कि सोम और उसकी रोहिणी आदि पत्नियाँ ऐतिहासिक व्यक्ति थे और आकाशी पिण्ड भी हैं) ।

(२) वेदों और पुराणों में अदिति के आठ या बारह पुत्रों की उत्पत्ति की कथा है। इसमें मार्तण्ड (सूर्य या विवस्वान्) के जन्म का विशेष उल्लेख

---

१. भारतीयखगोलविज्ञान (पृ० ७४) (२) वनपर्व (२३०।८-११),
दक्ष की अट्ठाइस कन्याओं के नाम पर २८ नक्षत्रों (रोहिणी आदि) के नाम पड़े, वे सभी सोम (अत्रिपुत्र) की पत्नियाँ थीं—
२. अष्टाविंशतिर्याः कन्या दक्षः सोमाय ता ददौ ।
सर्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्योतिषे परिकीर्तिता; ।। (ब्रह्माण्ड० ३।२।५३)
३. भारतीय ज्योतिष—(पृ० १५६),

है।[1] इस कथा में भी मानव इतिहास और ज्योतिष का घोर समिश्रण है। वायुपुराणादि में इसका ऐतिहासिक घटना (मानवइतिहास) के रूप में ही वर्णन है।[2]

(३) रुद्र (महादेव) के द्वारा तारामृग (मृगशीर्ष या यज्ञियमृग) के पीछे दौड़ने की घटना का इस प्रकार उल्लेख इतिहासपुराणों में मिलता है...

अन्वधावन्मृगं रामो रुद्रस्तारामृगं यथा।[3]

शुक्रग्रह को भृगुपुत्र कहा जाता है—

भृगुसुनुधरापुत्रौ शशिजेन समन्वितौ।[4]

तथ्य यह है कि देवयुग में, आज से लगभग १५ या १४ सहस्र वर्ष पूर्व जब दैत्यदानव (असुर) भारतवर्ष में देवों के साथ ही रहते थे, उसी समय ऋषिमुनियों के नाम पर ग्रहों, ताराओं और नक्षत्रों के नाम रखे गये। यथा कश्यपपुत्र विवस्वान् के नाम पर सूर्य की आदित्य या विवस्वान् संज्ञा प्रथित हुई, भृगुपुत्र शुक्र के नाम पर शुक्रग्रह का नाम रखा गया। पुनः ग्रहों के नाम पर सात वारों के नाम रखे गये।

यह नामकरण, उसी समय हुआ, जैसा कि हमने ऊपर बताया है, जब असुर और देव भारतवर्ष में रहते थे, तदनन्तर ही बलिकाल में असुरों ने पाताल (योरोप, अफ्रीका, अमेरिका) में पलायन कर उपनिवेश बसाये।

इस कालनिर्धारण का प्रमाण है, इन संज्ञाओं की असुरों और देवों में साम्यता। अत्रिपुत्र सोम या चन्द्रमा के नाम से पृथ्वी के उपग्रह को चन्द्र कहा गया, अंग्रेजी का मून (Moon) शब्द चन्द्रमा या सोम शब्द का ही अपभ्रंश है, इसी प्रकार सोमपुत्र बुध के नाम पर अंग्रेजी का वेडनेसडे (Wednesday) आज तक प्रसिद्ध है। 'वेडन' शब्द 'बुध' शब्द का विकार है, इसको प्रत्येक मनुष्य मानेगा।

अपने मत की पुष्टि में हम दो-तीन और उदाहरण देकर नक्षत्रनामसाम्य प्रकरण को समाप्त करेंगे।

ज्योतिष में लघु और गुरु सप्तर्षि विख्यात हैं। अत्यन्त प्राचीनकाल में भारत में सप्तर्षियों को 'ऋक्ष' कहते थे।

सप्तर्षीनु ह स्म वै पुरर्क्ष इत्याचक्षते।[5]
अमी ह ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तम्।[6]

---

१. अष्टौ पुत्रासौ अदितेर्ये जातास्तन्वस्परि।
देवाँ उपप्रैत्सप्तभिः परा मार्तण्डमास्यत्।
सप्तभिः पुत्रैरदितिरुपप्रैत्पूर्व्यं युगम्।
प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुनर्मार्तण्डमाभरत्॥ (ऋ० १०।७२।५-६)

२. अष्टानां देवमुख्यानामिन्द्रादीनां महात्मनाम्॥ (वायु० ३४।९२)

३. वनपर्व (२७८।२०),

४. शल्यपर्व (११।१८)

५. श० ब्रा० (२।१।२।४)

६. ऋ० (१।२४।१०),

गुरु सप्तर्षि को यूरोप में ग्रेट बीयर (Great Bear) कहते हैं। अतः सप्तर्षियों का ऋक्ष या बीयर (भालू) नामकरण उस समय का संकेत करता है, जब असुर और देव साथ-साथ भारत में रहते थे।

यूरोपियन ज्योतिष में नौविस (Novis) नक्षत्र का उल्लेख वेद में हिरण्यमयीनौ के नाम से उल्लेख है। 'हिरण्यमयी नौश्चरद् हिरण्यबन्धना दिवि' अथर्व, (५।४।४)।

कालकञ्ज दैत्यों के नाम ही दो दिव्य श्वानों का वेद में उल्लेख है, जिनको यूरोपियन Canis Major और Canis Minor कहते हैं। यहाँ 'कैनिस' नाम कालकञ्ज का ही विकार है—

शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना हविषा विधेम।
ये त्रयः कालकञ्जा दिवि देवा इव श्रिताः।[१]
यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ।[२]

इसी प्रकार यूरोपियन ज्योतिष का 'कैसोपिया' नक्षत्र प्रसिद्ध प्रजापति ऋषि कश्यप के नाम से नाम प्रसिद्ध हुआ। स्वाति नक्षत्र के निकट ऊपर यूरोपियन ज्योतिष में 'बूटेश' नक्षत्र है जो 'भूतेश' (रुद्र) का अपभ्रंश है।[३]

ये सभी प्रमाण हमारे इस मत को पुष्ट करते हैं कि देवासुरयुग में नक्षत्रों का नामकरण उसी समय हुआ जब देवासुरगण भारत में ही साथ-साथ रहते थे।

वेदपुराणों में कुहू, सिनीवाली आदि देवपत्नियाँ भी हैं[४] और ज्योतिष में ये अमावस्या की संज्ञा है।

स्पष्ट है उपर्युक्त नक्षत्रनामकरण मानव इतिहास में भ्रान्तिजनक है।

पशुपक्षिनाम से मानवनामसादृश्य-भ्रमजनक

वेदों और इतिहासपुराणों में अनेक पशुपक्षियों के नामों के साथ ऐतिहासिक पुरुषों के नाम में सादृश्य है यथा :

पशुनाम—मत्स्य, वराह, कश्यप, महिष, खर, आखु (आखुराज), हिरण (हिरण्य), मण्डूक, नाग, अश्व, अश्वतर, श्वेताश्वतर इत्यादि।

पक्षिनाम—शुक, भरद्वाज, तित्तिरि, कपिञ्जल, कपोत, हंस इत्यादि। वरुण का एक पुत्र मत्स्य (महामत्स्य)[५] था—

उपरिचरवसु के एक पुत्र का नाम मत्स्य था, जिनसे जनपद का नाम 'मत्स्य'

---

१. कालकञ्जा वै नामासुरा आसन्...ते दिव्यौ श्वानावभवताम् (तै० ब्रा० १।१।२);

२. ऋ० (१०।१४।११)

३. द्रष्टव्य—भा० ख० वि० (पृ० ४१)

४. सिनीवाली कुहूरिति देवपत्न्याविति नैरुक्ता अमावस्येति याज्ञिकाः।" (नि० ११।३१);

५. कुम्भेत्वगस्त्यः संभूतो जले त्स्यो ममहाद्युतिः (बृहद्दे० ५।१५२)

पड़ा। विराट मत्स्यों का राजा था जो अभिमन्यु का श्वसुर और उत्तरा का पिता था।

'वराह' नाम का एक दैत्य, जो हिरण्यकशिपु का भ्राता, अपरनाम हिरण्याक्ष था। कश्यप कच्छप (कछुआ) को भी कहते हैं। प्रसिद्ध प्रजापति ऋषि का नाम भी कश्यप ही था, महिष एक दैत्य हुआ, अथवा अनेक असुरों का यह प्रसिद्ध नाम था, जिसके नाम से माहिष्मती नगरी और महिषपुर (मैसूर) प्रथित हुये, एक महिषासुर का वध दुर्गा ने किया था, जिसका दुर्गासप्तशती में वर्णन है। एक महिष रामायणकाल में हुआ जो मयवंशी था, इसका वध बालि ने किया था। रामायण में खर राक्षस का विशेष आख्यान है। महिष और खर पशुओं (भैंसा और गधा) के नाम भी हैं। उत्तरकाल में अज्ञानीजन उपर्युक्त असुरों को पशु ही समझने की भ्रान्ति में पड़ गये। प्राचीन मन्दिरों में महिषासुर की मूर्तियों को भैंसे के रूप में ही बनाया गया है। यही बात खरादि के सम्बन्ध में समझनी चाहिये।

वेदमन्त्रों में आखुओं के एक राजा चित्र का उल्लेख है।[१] महाभारत वनपर्व में मण्डूकों के राजा का वर्णन है। शौनकऋषिवंश में एक ऋषि का नाम मण्डूक था, जिसने माण्डूक्योपनिषद् रचा। ऋषभ नाम प्रसिद्ध है जो अनेक मनुष्यों ने धारण किया। सूर्य (विवस्वान्) या नक्षत्रों को 'अश्व' या सर्प या 'नाग' भी कहते थे। अनेक राजाओं के नाम अश्वान्त थे...यथा हर्यश्व, हरिदश्व, भार्म्यश्व, हिरण्याश्व, युवनाश्व इत्यादि। इस प्रकार के नामों से मनुष्य को घोड़ा समझने की भूल हो सकती है। एक ऋषि का नाम श्वेताश्वतर था, संस्कृत में अश्वतर खच्चर को कहते हैं। एक या अनेक राजाओं का नाम हस्ती था। हस्ती हाथी को कहा जाता है। हस्ती के नाम से हस्तिनापुर प्रथित हुआ। महाभारत में हस्तिनापुर को 'नागपुर' भी कहा गया है। हस्ती का पर्याय नाग है, इसीलिये पर्यायनाम का प्रयोग किया गया। इन पर्यायनामों से भी भ्रान्ति होती है। इसी प्रकार नकुल नेवले को कहते हैं परन्तु एक पाण्डव का नाम नकुल था। इस प्रकार बभ्रु (नकुल) नाम के अनेक व्यक्ति हुये थे। इसी प्रकार अनेक पुरुषों के नाम पक्षिनामसदृश थे, यथा—शुक, कपोत, भारद्वाज, हंस, तित्तिरि, कपिञ्जल, श्येन इत्यादि।

वैयासकि पाराशर्यपुत्र का नाम शुक प्रसिद्ध था अनेक कथाओं में वैयासकि शुक को तोतारूप में चित्रित किया है। एक ऋषि का नाम कपोत था।[२] वेद में कपिञ्जल आदि भी ऋषियों के तुल्य प्रतीत होते हैं।[३] कपिञ्जल तीतर को कहते हैं। व्यासशिष्य प्रसिद्ध वैदिक ऋषि वैशम्पायन के एक प्रधान शिष्य तित्तिरि थे। इससे विष्णुपुराण[४]

---

१. आखुराजोऽभिमानाच्च प्रहर्षितमनाः स्वयम्।
संस्तुतो देववत् चित्र ऋषये तु गवां ददौ। (बृहद्देवता ६।६०)

२. आसीत् दीर्घतपाः कपोतो नाम नैऋतः। (बृह० ८।६७)

३. स्तुतिं तु पुनरेवेच्छन्निन्द्रो भूत्वा कपिञ्जलः। (वही ४।९३)

४. यजूंष्यथ विसृष्टानि याज्ञवल्क्येन वै द्विज।
जगृहुस्तित्तिरा भूत्वा तैत्तिरीयास्तु ते ततः॥ (वि० पु० ३।५।१२)

में एक भ्रान्तिजनक कथा घड़ ली। भरद्वाज एकपक्षी का नाम होता है, जिसे हिन्दी में भारदूल कहते हैं।

इसी प्रकार अनेक अन्य पशुपक्षियों के नामवाले पुरुषों के नाम विशाल संस्कृत वाङ्मय में मृग्य है, जिससे भ्रान्तिनिराकरण में सहायता हो। यहाँ थोड़े से उदाहरण ही दिये गये हैं।

पर्वतनदीस्थाननामसाम्य से भ्रम

अनेक पर्वतों, नदियों, सरोवरों, तीर्थस्थानादि के नाम अनेक पुरुषों या स्त्रियों के नाम पर रखे गये और सभी जनपदों के नाम—यथा अंग, वंग, कलिंग, विदर्भ, अश्मक, अवन्ति, केरल, चोल, आन्ध्र, पुलिन्दादि सभी राजपुरुषों के नाम पर रखे गये, अनेक नगरों या राजधानियों के नाम भी राजाओं (शासकों) के नाम पर रखे गये, यथा श्रावस्त से श्रावस्ती, कुशाम्ब से कौशाम्बी, काशि से काशी, मधु से मथुरा इत्यादि। इन सभी का राजवंशों के प्रकरण में उल्लेख होगा। स्थाननामों में सर्वाधिक भ्रम नदीनामसाम्य और पर्वतनामसाम्य से होता है—यथा हिमालय (पर्वत) जो, शिव के श्वसुर, पार्वती के पिता और नारद के मातुलेय (मामा के पुत्र) थे। पुराणों और कालिदास ने हिमालय पर्वतराज का ऐसा भ्रामक वर्णन किया है कि सामान्य पाठक ही नहीं अत्यन्त विज्ञजन भी 'पर्वतराज' को पहाड़ ही समझते हैं—

"अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।"[1]

वास्तव में यह 'पर्वत' पत्थर का पहाड़ नहीं, दक्ष प्रजापति का वंशज हिमालय-प्रदेश का 'राजा' था। शतपथब्राह्मण (२।४।४।१-६) में एक राजा—दक्षपार्वति का उल्लेख है, यह दक्ष, इसी पर्वतराज का पुत्र था। पर्वतप्रदेश का राजा होने से राजा का नाम भी 'पर्वत' पड़ गया और उत्तरयुगों में यह भ्रम हो गया कि पर्वतसंज्ञकपुरुष पहाड़ ही था। राजा पर्वत की पुत्री होने से भवानी (भवपत्नी) का नाम पार्वती (उमा) प्रसिद्ध हुआ। यही पार्वतीपिता पर्वतऋषि होकर नारद के साथ भ्रमण करता था, यथा षोडशराजोपाख्यान (द्रोणपर्व महाभारत) में इन्हीं पर्वतनारद का उल्लेख है। ऐतरेयब्राह्मण के वर्णन के अनुसार पर्वतनारद ऋषिद्वयी ने हरिश्चन्द्र[2] को उपदेश दिया, इन्हीं दोनों ऋषियों ने आम्बष्ठ्य राजा और औग्रसैनि युधांश्रौष्टि[3] का यज्ञ कराया।

नदियों के नाम यथा नर्मदा, गंगा (भागीरथी), यमुना, कौशिकी, सरस्वती इत्यादि अनेक नदियों के नाम राजकन्याओं या ऋषिकन्याओं के नाम पर प्रथित हुये। यथा दध्यङ् आथर्वण (दधीचि) की पत्नी[4] का नाम सरस्वती था जिसके नाम पर

---

१. कुमारसम्भव (१।१)
२. ऐ० ब्रा० (७।१३),
३. ऐ० ब्रा० (८।२१)
४. तथाङ्गिरा रागपरीतचेतः सरस्वतीं ब्रह्मसुतः सिषेवे।
सारस्वतो यत्र सुतोऽस्य जज्ञे नष्टस्यवेदस्य पुनः प्रवक्ता।। (बु० च०)

संभवतः नदी का नाम पड़ा। सरस्वती के पुत्र होने के कारण नवम व्यास अपान्तरतमा 'सारस्वत' कहलाये, जो शिशु अंगिरस भी कहलाते थे, वे ही सारस्वतवेद के उद्धारक या शैशवसामसंहिता के भी प्रवर्तक थे।[1]

वैवस्वत यम की भगिनी यमी या यमुना थी, जिससे यमुना नदी का नाम पड़ा। विश्वामित्र की भगिनी कौशिकी के नाम से कौशिकी नदी का नाम पड़ा। मान्धाता ऐक्ष्वाकपुत्र पुरुकुत्स का नाम तपस्या करते हुये पड़ा, पर्वतकन्या या नागकन्या नर्मदा से विवाह किया, इसलिए कुत्सित (निन्दित) कर्म करने के कारण राजा का नाम पुरुकुत्स हुआ।[2] नर्मदा के नाम से नदी का नाम पड़ा। मूर्खजन इन नामसाम्यों से भ्रम में पड़ जाते हैं।

नदीनामों में सर्वाधिक भ्रम गंगा या भागीरथी के नाम से होता है, जो कौरव राज शान्तनु की पत्नी और भीष्म की माता थी, इसको महाभारत में ही इस प्रकार चित्रित किया है, जैसे कि वह जलमयी नदी हो,[3] वास्तव में वह कोई राजकन्या थी, जिसका नाम गंगा था, जिससे भीष्म गांगेय कहलाते थे। इसी का नाम दृषद्वती या माधवी भी था।

पुराणों में निम्नलिखित विचित्र या अद्‌भुत वर्णनों से इतिहास में भ्रम या बाधा या अश्रद्धा (अविश्वास) होती है, अतः इनका समाधान आवश्यक है—

(१) योनिसमस्या।
(२) पंचजनसमस्या।
(३) वरदानशापसमस्या।
(४) भविष्यकथनादिसमस्या।
(५) अद्‌भुत या असंभव घटना।
(६) आयुसमस्या
(७) मन्वन्तर-युगसमस्या-दिव्यमानुषयुग।
(८) राज्यकालसमस्या।
(९) संवत्‌समस्या।

अब इन समस्यों का संक्षेप उल्लेख कर समाधान करेंगे।

योनिसमस्या

प्राचीन भारतीय इतिहास की एक विकट समस्या है कि नाग, किंनर, वानर, सुपर्ण, ऋक्ष, कपि, प्लवंगम, किम्पुरुष गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य, दानव, देव जैसी जातियों को मनुष्येतर समझा जाता है। परन्तु, अब प्रायः सभी एकमत हैं कि पुराणादि में वर्णित नागादि सभी मनुष्य ही थे और मनुष्यों के समान ग्रामों एवं नगरों में बस्तियाँ बसाकर और भवनादि बनाकर रहते थे।

---

१. तथा द्रष्टव्य हर्षचरित में बाणवंशवर्णन।

२. पुरुकुत्सः कुत्सितं कर्म तपस्यन्नपि मेकलकन्यामकरोत्
(हर्षचरित ३ उच्छ्वास)।

३. अथ गंगा सरिच्छ्रेष्ठा समुपायात् पितामहम् (महाभारत १।९६।४)
महाभिषं तु तं दृष्ट्वा नदी…। (१।९६।९ वही)
तामूचुर्वसवो देवाः शप्ता स्मो वै महानदि। (१।९६।१२, वही)

नागजाति निश्चय ही मनुष्यतुल्य प्राणी थी, वे साँप नहीं थे, इसका प्रमाण है अनेक नागकन्याओं का विवाह अनेक राजर्षियों एवं ऋषियों से हुआ। कुछ प्रसिद्ध उदाहरण हैं नागकन्या नर्मदा का विवाह ऐक्ष्वाक पुरुकुत्स से, रामपुत्र कुश का विवाह नागकन्या कुमुद्वती से और वासुकिनाग की भगिनी का विवाह जरत्कारु ऋषि से हुआ। इसी प्रकार के अनेक तथ्य इतिहासपुराणों में उल्लिखित हैं। जनमेजय का नागयज्ञ इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना थी, जिसमें सहस्रों नागपुरुषों का वध हुआ। श्रीकृष्ण ने बाल्यकाल में यमुनातट पर प्रसिद्ध कालियनाग का दमन किया। नागों राजाओं ने अनेक नगर बसाये। गुप्तकाल तक नागों का इतिहास ज्ञात होता है। महाभारतयुग में गंगातट पर नागों के बस्तियाँ थीं, जहाँ वे घर बनाकर रहते थे—

बहूनि नागवेश्मानि गंगायास्तीर उत्तरे।
यस्य वासः कुरुक्षेत्रे खाण्डवे चाभवत् पुरा॥
कुरुक्षेत्रं च वसतां नदीमिक्षुमतीमनु।
जघन्यजस्तक्षकस्य श्रुतसेनेति विश्रुतः॥[1]

नाग इन्द्रप्रस्थ (खाण्डवप्रस्थ=दिल्ली) में यज्ञ किया करते थे—'एते वै सर्पाणां राजानश्च राजपुत्राश्च खाण्डवप्रस्थे सत्रमासत पुरुषरूपेण विषकामाः।"[2] आज भी दिल्ली के निकट 'नांगलोई' नाम का ग्राम है, जो 'नागलोक' शब्द का विकार है, इसी 'नागलोक' में दुर्योधन ने भीम को विष के लड्डू खिलाये थे, जहाँ नागों ने भीम पर आक्रमण किया, परन्तु भीम बच गये।[3] आज भी भारत में नागजाति प्रसिद्ध है। बंगाल में पुरुषों के नागनामान्तगोत्र हैं।

रामायण महाभारत में वर्णित वानर, ऋक्ष, कपि, हरि, प्लवंगम, किन्नर, किंपुरुष, यक्षराक्षस, गन्धर्वादि एवं सुपर्ण (गरुड़-जटायु आदि) भी मनुष्यजाति की विभिन्न नस्लें प्रतीत होती हैं। यह सम्भव है कि इन जातियों में कुछ जातियाँ 'कामरूप' हों अर्थात् इच्छानुसार रूप बना सकती थी, यथा नागों के विषय में कहा गया है कि वे कामरूप अर्थात् इच्छानुसार रूप बना सकते थे। अथवा वानरों का पूरा शरीर तो मनुष्यतुल्य ही था, केवल पूँछ उनमें अतिरिक्त विशेषता थी, क्योंकि इतिहासपुराणों में वानरों की पूंछ का इस प्रकार उल्लेख है कि उस पर सहसा अविश्वास नहीं किया जा सकता। अभी हाल में, १२ मई ८२ के नवभारत टाइम्स में 'क्या पूंछ वाले मानव का अस्तित्व है' लेख श्री सुरेन्द्र श्रीवास्तव का प्रकाशित हुआ है, जिसमें बताया गया है कि मलाया, लाओस इत्यादि हिन्दचीन के देशों में पूँछवाले मनुष्यों की चर्चा बहुधा सुनी जाती है, तिब्बत, लंका आदि में भी ऐसे मनुष्यों का अस्तित्व देखने सुनने में आया है। प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलो ने लिखा है—"यहाँ के निवासियों की पूँछें हैं कुत्तों जैसी, पर

---

१. महा (१।३।१३६, १४१),
२. बौधायनश्रौतसूत्र (१७।१८),
३. आक्रामन्नागभवने तदा नागकुमारकान्।
पोथयमास तान् सर्वान् केचिद्भीताः प्रदुद्रुवुः॥ महा० १।१२७।५५, ५६

उन पर बाल बिल्कुल नहीं हैं।" टर्नर नामक यात्री ने तिब्बत में पूँछवाले जंगली मनुष्य देखे थे, जिनकी पूँछ इतनी सख्त थी कि उन्हें भूमि पर बैठने से पहिले गड्ढा खोदना पड़ता था। महाभारत में वर्णित है कि भीम ने हिमालय प्रदेश (तिब्बत) में पूँछ बिछाये हुये हनुमान् के दर्शन किये थे—

जृम्भमाणः सुविपुलं शक्रध्वजमिवोच्छ्रितम्।
आस्फोटयच्च लांगूलमिन्द्राशनिसमस्वनम्॥[1]

वानरों को पीला रंग होने से कारण हरि और कपि कहा जाता था, वे तैरना विशेषरूप से जानते थे, अतः उन्हें 'प्लवंगम' कहा जाता था। ये मनुष्य के तुल्य ही थे अतः वानर, किनर और किंपुरुष कहा जाता था। इनमें केवल पूँछ की विशेषता थी, शेष सभी प्रवृत्तियाँ भाषा बोलना, विवाह करना, घरों में रहना इत्यादि सब कुछ मनुष्यों की भाँति था, अतः रामायणकाल में पूँछ वाले मानव (वानर) पृथ्वी पर बहुसंख्या में, विशेषतः नगर बसाकर पर्वतों एवं जंगलों में रहते थे।[2] ऋक्ष भी वानरों का एक कुल था। रामायण में ऋक्षराज जाम्बवान् को बहुधा (वानर) भी कहा गया है—

·········प्लवगर्षभः॥
जाम्बवानुत्तमं वाक्यं प्रोवाचेवं ततोऽङ्गदम्॥
संचोदयामास हरिप्रवीरो हरिप्रवीरं हनुमन्तमेव॥
ततः कपीनामृषभेण चोदितः प्रतीतवेगः पवनात्मजः कपिः।[3]

उपर्युक्त श्लोकों में प्लवगर्षभः, हरिप्रवीर, कपिऋषभ जाम्बवान् के विशेषण हैंअतः ऋक्षों और वानरों में कोई विशेष अन्तर नहीं था, वे भी मनुष्यतुल्य ही थे।

यही सम्भव है कि देवयुगीन सुपर्णजाति भी पक्षयुक्त मनुष्य ही हों। सुमेर आदि अन्य प्राचीनदेशों की पौराणिक कथाओं में पंखयुक्त देवों या मनुष्यों की कथायें वर्णित हैं, अतः सम्भावना है कि सुपर्ण पक्षयुक्त मानव थे, देवयुग में गरुड़ सुपर्णों का राजा था, शतपथब्राह्मण में तार्क्ष्य वैपश्यत (गरुड़ के वंशज विपश्यत का पुत्र) को सुपर्णों का राजा कहा गया है।[4] रामयुग में इस जाति के इक्का-दुक्का निदर्शनमात्र प्रतिनिधि अवशिष्ट रह गये थे—जटायु और सम्पाति। सुपर्णों के उड़ने के अतिरिक्त शेषकार्य मनुष्यतुल्य ही थे—यथा मानुषीवाक् में बोलना।[5]

यक्ष, राक्षस, दैत्य, दानव, नाग, गन्धर्व आदि सभी मनुष्य ही थे, इसी प्रकार

---

१. महाभारत (३।१४६।७०),

२. हृष्टपुष्टजनाकीर्णा पताकाध्वजशोभिता।
बभूवनगरी रम्या किष्किन्धा गिरिगह्वरे॥ (रामा० ४।२६।४१)

३. रामा० (४।६५, ३३, ३५), वही (४।६६।३८),

४. श० ब्रा० (१३।४।३।१३)
"तार्क्ष्यो वैपश्यतो राजेत्याह तथा वयांसि विशः।"
"तानुपदिशति पुराणं···वेदः।" (श० ब्रा०)

५. रामा० (३।६७)।

इन्द्रादिदेव भी पृथ्वीवासी मनुष्य थे, यह सब इतिहास, विस्तार से अग्रिम अध्यायों में, उनका कालनिर्णय करते समय लिखा ही जायेगा।

उत्तरकाल में इन्हीं यक्षादि की संज्ञा किरात, निषाद आदि हुई। इनमें किरात वर्तमान मंगोलनस्ल के थे, निषाद हब्सी, पिग्मी जैसी जाति थी। निषादों के साथ यक्ष राक्षस अफ्रीका एवं पूर्वी द्वीपसमूह तथा लंका, अण्डमान निकोबार आदि देशों में रहते थे।

यक्षराक्षसों की उत्पत्ति के साथ उनके मूलनिवासस्थान का निर्णय करना भी कठिन समस्या है।

इस बात की पूर्ण सम्भावना है कि वर्तमान सिंहल या सीलोन (Ceylon) प्राचीन लंका नहीं है। रामायण में राक्षसों के द्वीप या देश का नाम कहीं नहीं मिलता, केवल द्वीप की राजधानी लंका का बारम्बार उल्लेख है।[1] रामायण में सुन्दरकाण्ड के नामकरण का यह रहस्य प्रतीत होता है कि द्वीप का नाम 'सुन्दद्वीप' था क्योंकि रावण से पूर्व राक्षसेन्द्र 'सुन्द' उस द्वीप का अधिपति था। प्राचीनपाठों में काण्ड का नाम 'सुन्द-काण्ड होना चाहिए, क्योंकि प्रायः शेषकाण्डों के नाम भौगोलिक स्थानों के नाम पर हैं, सुन्दरता से सुन्दरकाण्ड का कोई सम्बन्ध नहीं। उत्तरकाल में सुन्दद्वीप की विस्मृति होने से इस काण्ड को सुन्दरकाण्ड कहने लगे। लंका और सिंहल का पार्थक्य हिन्दी कवि जायसी तक को ज्ञात था, अतः सिंहल और लंका पृथक्-पृथक् द्वीप थे। ऐसी सम्भावना है, लंकानगरी, सम्भवतः पूर्वी द्वीपसमूह में कोई में द्वीप थी, क्योंकि हनुमान् का लंका की ओर प्रयाण महेन्द्र पर्वत[2] (उड़ीसा) से प्रारम्भ हुआ था, इधर से पूर्वी द्वीपसमूह निकट है, न कि सिंहलद्वीप। यद्यपि सिंहलद्वीप लंका भी हो सकती है।

अगस्त्य की स्मृति भी पूर्वी द्वीपसमूह में विद्यमान है जहाँ 'भट्टगुरु' के नाम से उनकी पूजा होती है। राम से पूर्व अगस्त्य और पौलस्त्य ब्राह्मणों ने अनेक पूर्वी द्वीपसमूहों की राजा तृणबिन्दु के साथ यात्रा की थी। अगस्त्य द्वारा समुद्र को पीने का तात्पर्य यही है कि उन्होंने दक्षिणी समुद्र (हिन्दमहासागर) की दूर-दूर यात्रायें की थीं, और असुरसंहार में देवों की सहायता की।[3] अगस्त्य ने अपने दक्षिणाभियान में यक्षराक्षसों को सुसंस्कृत किया। पुलस्त्य ने यक्षराक्षसों से वैवाहिक सम्बन्ध भी

---

१. अध्यास्ते नगरीं लंकां रावणो नाम राक्षसः।
इतो द्वीपे समुद्रस्य सम्पूर्णे शतयोजने।
तस्मिल्लंका पुरीरम्या निर्मिता विश्वकर्मणा॥ (रा० ४,५८।१९, २०)

२. ततस्तु मारुतप्रख्यः स हरिर्मारुतात्मजः।
आरुरोह नगश्रेष्ठं महेन्द्रमरिमर्दनः। (रामा० ४।६७।३९)

३. समुद्रं स समासाद्य वारुणिर्भगवानृषिः।
समुद्रमपिबत् क्रुद्धः सर्वलोकस्य पश्यतः॥ (महा १।१०५।१, ३)

स्थापित किये।[1] पुलस्त्य के वंश में वैश्रवण कुबेर यक्षराज और राक्षसराज रावणादि उत्पन्न हुये।

पंचजन या दशजन

इस समस्या का पूर्व पृष्ठ ५५ पर उल्लेख कर चुके हैं, इन जातियों का अधिक विस्तृत वर्णन आगामी अध्यायों में करेंगे।

वरदान-शाप समस्या

इतिहासपुराणों में वरदानों और शापों की शतशः घटनायें उल्लिखित हैं, जिन सबकी सत्यता पर विश्वास होना कठिन है। वरदानों और शापों की समस्त घटनाओं का उल्लेख न तो यहाँ पर सम्भव है और न हमारा यह उद्देश्य है। हमारा उद्देश्य केवल इस समस्या की ओर ध्यान आकर्षित करना है।

वरदान का मुख्य या मूल अर्थ था कि प्रसन्न होकर श्रेष्ठ वस्तु का दान देना, जैसे राजा दशरथ ने देवासुरसंगाम में कैकयी की सहायता से प्रसन्न होकर दो वर दिये।[2] वरदान की यह घटना सत्य है। परन्तु ब्रह्मा द्वारा रावणादि को अवध्यतादि[3] के वरदान अथवा देवों द्वारा हनुमान् को वरदान[4] अथवा परशुराम की प्रार्थना पर जमदग्नि द्वारा रेणुका को पुनर्जीवित[5] करने का वरदानादि असत्य प्रतीत होते हैं।

सत्यहृदय से निकली आह कभी-कभी सत्य हो जाती है जैसे दशरथ के प्रति श्रमणकुमार के पिता की वाणी सत्य सिद्ध हुई कि तुम भी पुत्रवियोग में मेरे समान प्राण त्यागोगे।[6] परन्तु कुछ ऐसे अद्भुत शाप केवल गप्प प्रतीत होते हैं, जैसे देवयुग में कद्रू ने अपने पुत्र नागों को यह शाप दिया कि तुम कलियुग में जनमेजय के यज्ञ में अग्नि में जलाये जाओगे—

तत पुत्रसहस्रं तु कद्रूर्जिह्मं चिकीर्षती।
नावपद्यन्त ये वाक्यं ताञ्छशाप भुजंगमान्।

---

१. पुलस्त्यो नाम महर्षिः साक्षादिव पितामहः।
तृणबिन्दुस्तु राजर्षिस्तपसा द्योतितप्रभः।
दत्त्वा तु तनयां राजा स्वाश्रमपदंगतः। (रामा० ७।२।४, २८)

२. पुरा देवासुरे युद्धे सह राजर्षिभिः पति ।
तुष्टेन तेन दत्तौ ते द्वौवरौ शुभदर्शने॥ (अयो० ९ सर्ग)

३. अवध्योऽहं प्रजाध्यक्ष देवतानां च शाश्वत (उत्तर० १०।१९),

४. वही (सर्ग ३६);

५. स वव्रे मातुरुत्थानमस्मृतिं च वधस्य वै (महा० ३।११६।१७);

६. तेन त्वामपि शप्स्येऽहं सुदुःखमतिदारुणम्।
एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन् कालं करिष्यसि॥ (रामा० २।६४।५३, ५४)

सर्पसत्रे वर्तमाने पावको वः प्रधक्ष्यति ।
जनमेजयस्य राजर्षेः पाण्डवेयस्य धीमतः ॥

महा० (१।२०।६, ७, ८)

परन्तु कुछ ऐसे शापों के विषय में निर्णय करना कठिन है, जैसेअगस्त्य द्वारा नहुष को दशसहस्रवर्ष अजगर होने का शाप देना, यद्यपि युधिष्ठिरादि की अजगर से भेंट हुई, परन्तु यह पूर्वजन्म का नहुष था, यह दिव्यदृष्टि से ही जाना जा सकता है—

सोऽहंशापादगस्त्यस्य च ब्राह्मणानवमत्य च ।
इमामवस्थामापन्नः··· (वनपर्व १७९।१४) ।

शाप का मूलार्थ था 'क्रुद्ध होकर गाली देना', परन्तु पुराणों में शापों का जिस रूप में वर्णन है, उसी रूप में आज के युग में उन पर विश्वास करना कठिन है। परन्तु जिस प्रकार के वरदान और शाप तथ्य हो सकते हैं, उसका संकेत पूर्व किया जा चुका है। सभी शापों या वरदानों पर विचार तत्तत्प्रकरण में ही होगा।

भविष्यकथनादिसमस्या

भविष्यकथन, यद्यपि असंभव नहीं है, आज के युग में भी दिव्यज्ञानसम्पन्न योगी या अतीन्द्रियपुरुष सत्य भविष्यवाणी कर देता है, अनेक सच्चे ज्योतिषी भी भविष्य जान लेते हैं। परन्तु पुराणों में महाभारतोत्तरयुग के जिन कलियुगीन राजवंशों[1] का वर्णन है वह भविष्यकथन नहीं होकर बाद में जोड़ा गया प्रक्षेप ही प्रतीत होता है। आज निश्चय ही भविष्यकथनसम्बन्धी वर्णन प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं, परन्तु प्राचीनयुगों में भविष्यज्ञ श्रुतर्षि एवं भविष्यपुराण की परम्परा सत्य प्रतीत होती है। पाराशर्यव्यास या पूर्व के श्रुतर्षियों द्वारा कल्कि अवतार की भविष्यवाणी सत्य प्रतीत होती है,[2] यह भविष्यवाणी महाभारत काल में ही कर दी गई थी। परन्तु वर्तमानपुराणों के उत्तर-काल में अनेक बार संस्करण या प्रक्षेपण हो चुके हैं।

भविष्यकथन की एक बड़ी घटना सत्य नहीं होती तो आज मानवजाति उस जल प्रलय से नहीं बच सकती, जिसमें एक मत्स्य ने अथवा भविष्यज्ञों ने प्रलय से अनेकवर्ष पूर्व वैवस्वतमनु को जलप्रलय से बचने की तैयारी करने का[3] निर्देश दे दिया था। अत दिव्यज्ञानी सत्यभविष्यकथन अवश्य करते थे, यह माननापड़ेगा।

महाभारतयुग से पूर्व ही एक या अनेक भविष्यपुराण रचे जा चुके थे, जिनमें भविष्यज्ञश्रुतर्षिगण भविष्य की घटनाओं का वर्णन कर दिया करते थे। स्वयं वाल्मीकि ऋषि के प्रमाण से ज्ञात होता है कि ऋषि द्वारा रामायण रचना से बहुत पूर्व निशाकर

---

१. एतत्कालान्तरं भाव्यमाँध्रान्ताद्याः प्रकीर्तिताः ।
भविष्यज्ञैस्तत्र संख्याताः पुराणज्ञैः श्रुतर्षिभिः । (ब्रह्माण्ड ३।७४।२२९);

२. कल्की विष्णुयशानाम द्विजः कालप्रचोदितः ।
उत्पत्स्यते महावीर्यो महाबुद्धिपराक्रमः । (वनपर्व १९०।९३)

३. द्रष्टव्य वनपर्व (१८७ अध्याय), श० ब्रा (१।८।१)

ऋषि ने सम्पाति को रामाविर्भाव का इतिहास बता दिया था—

"पुराणे सुमहत्कार्यं भविष्यं हि मया श्रुतम् ।
दृष्टं मे तपसा चैवश्रुत्वा च विदितं मम ।।"
राजा दशरथो नाम कश्चिदिक्ष्वाकुवर्धनः ।
तस्य पुत्रो महातेजा रामो नाम भविष्यति ।।
आख्येया राममहिषी त्वया तेभ्यो विहंगम ।
देशकालौ प्रतीक्षस्व पक्षौ त्वं प्रतिपत्स्यसे ।।[1]

रामायण का यह वर्णन काल्पनिक प्रतीत नहीं होता, अतः इससे भविष्यकथन की पुष्टि होती है। तथापि भविष्यपुराण के सभी भविष्यवर्णनों को वास्तविक भविष्य कथन नहीं माना जा सकता, वह प्रायः धूर्तवंचना ही है।

अद्भुत एवं असम्भव घटनायें

पुराणों में ऐसी अनेक अद्भुत, विचित्र एवं असम्भव-सी प्रतीत होने वाली घटनाओं का वर्णन है, जिनपर तथाकथित आधुनिक वैज्ञानिक विश्वास नहीं करते। निश्चय ही अनेक घटनाओं को तोड़ा मरोड़ा गया है, कुछ को बढ़ा चढ़ाकर वर्णित किया है, परन्तु सभी अद्भुत घटनायें असम्भव हों, ऐसा आवश्यक नहीं हैं। जैसे कुछ प्राणियों का कामरूप (इच्छानुसार रूप) होना, स्वयम्भू से मानसी या अमैथुनी सृष्टि,[2] पुंख या पक्षयुक्त मानव[3] (देव) या पुच्छयुक्त मनुष्य[4] (वानर), षडक्ष त्रिशिरा की उत्पत्ति[5], चतुर्भुज मनुष्य की उत्पत्ति[6] (यथा वामन विष्णु) त्र्यक्ष-मनुष्य[7] (यथा शिशुपाल) का जन्म, युवनाश्व के उदर से मान्धाता का जन्म[8] कुम्भकर्ण जैसे विशाल शरीरवाला राक्षस[9], कबन्ध[10] या कुबेर, या अष्टावक्र जैसे विचित्र

---

१. रामायण (३।सर्ग ६२)
२. ततोऽभिध्यायतस्तस्य मानस्यो जज्ञिरे प्रजाः । (ब्रह्माण्ड पु० १।८।१);
३. महाभारत आदिपर्व में नाग और सुपर्ण का जन्म (अध्याय १६);
४. रामायण में वानरों की उत्पत्ति;
५. त्वष्टुर्ह वै पुत्रः । त्रिशीर्षा षडक्ष आस···विश्वरूपो नाम
(श० ब्रा० १।६।३।१)
६. चेदिराजकुले जातस्त्र्यक्ष एष चतुर्भुजः । (महा० २।४३।१);
७. त्र्यक्षं चतुर्भुजं श्रुत्वा तथा च समुदाहृतम् (महा० २।४३।११);
८. वामं पार्श्वं विनिर्भिद्य सुतः सूर्य इव स्थितः (महा० ३।१२६।२७);
९. कुम्भकर्णो महाबलः । प्रमाणाद् यस्य विपुलं प्रमाणं नेह विद्यते ।
(रामा० ७।६।३४)
१०. सक्थिनी च शिरश्चैव शरीरे संप्रवेशितम् । (रामा० ३।७१।११)
विवृद्धमाशिरोग्रीवं कबन्धमुरेमुखम् (रामा० ३।६९।२७);

शरीर, कुम्भकर्ण का षण्मासशयन, पुष्पकादि विमानों का अस्तित्व।[1] ऐसी अनेक घटनाओं का पूर्ण या आंशिकरूप सत्य था, क्योंकि आज के युग में भी मनुष्ययोनि (स्त्री) से विचित्र आकार के प्राणी उत्पन्न होते देखे गए हैं, भले ही वे अधिक समय तक जीवित नहीं रहे हों। आज भी समाचारपत्रों में यह समाचार पढ़ते हैं कि अमुक युवक या युवती का योनिपरिवर्तन (यानी लड़की का लड़का होना या लड़के की लड़की होना) हो गया या हो रहा है जबकि सुद्युम्न का इला होने पर और शिखण्डी का शिखण्डिनी होने पर हम अविश्वास करते हैं। मानुष उदर से भ्रूण उत्पन्न होने के समाचार भी प्रकाशित हुए हैं।

ऐसी अनेक सत्य घटनाओं की सम्भावना के बावजूद पुराणों में अनेक अतिरंजित काल्पनिक घटनाओं का वर्णन है, जैसे कुम्भकर्ण द्वारा दो सौ महिषों का मांस[2] भक्षण, वसिष्ठ की गौशबली से शकयवनादिम्लेच्छों की उत्पत्ति, इल्वलवातपि द्वारा मेष बनना, मारीच का मृग बनना इत्यादि घटनायें असम्भव हैं, परन्तु अन्तिम दो घटनाओं में आंशिक सत्यता यह है कि वे राक्षस माया (या कौशल) से पशु का चर्म आदि ओढ़कर पशुरूपधारण कर सकते थे, जैसे मारीच का हिरणरूप धारण करना।

अतः इतिहासपुराण की समस्त ऐसी विचित्रघटनाओं का नीरक्षीरविवेक करना आवश्यक है।

कालगणनासमस्या

इतिहासरूपीभवन की भित्ति है युगगणना और तिथियाँ या कालगणना, बिना सही कालगणना के पौराणिक इतिहास प्रायः मिथ्या ही समझा जाता है, यही एक महती बाधा है जिसको भगवद्दत्त जैसे विद्वान् पूरी तरह सुलझा नहीं सके और अधर में ही लटके रहे। इस समस्या को हमने पर्याप्तरूप में हल कर लिया है, जिसका दिग्दर्शन कराना ही इस शोधग्रन्थ का प्रमुख विषय रहेगा। कालगणनासम्बन्धी प्रमुखतः ये समस्यायें हैं। (१) दीर्घायुष्ट्व, (२) कल्प, मन्वन्तर, और युग, वर्ष (दिव्यमानुष युग-वर्ष), राज्यकालगणना एवं संवत्-कलिसंवदादि-निर्णय।

इस प्रकरण में कालगणनासम्बन्धी समस्याओं के प्रति उनकी विकटता या काठिन्य का संकेतमात्र करना भर है, इन समस्याओं का विस्तृत विवेचन और समाधान अग्रिम अध्यायों ही होगा।

---

१. पुष्पकं तस्य जग्राह विमानं जयलक्षणम्।
मनोजवं कामगमं कामरूपं विहंगमम् (रामा० ७।१५।३८,३९);

२. पीत्वा घटसहस्रे द्वे (रा० ६।६०।६३)

३. असृजत् पह्लवान् पुच्छात् प्रस्रवाद् द्रविडाञ्छकान्।
योनिदेशाच्च यवनान् शकृतः शबरान् बहून्॥ (महा० २।१७४।३६)

४. भ्रातरं संस्कृतं कृत्वाततस्वं मेषरूपिणम् (रामा० ३।११।५७)
मेषरूपी च वातापिः कामरूप्यभवत् क्षणात् (महा० ३।९६।८)

वर्तमानपुराणपाठों के अनुसार न केवल कल्पमन्वन्तरयुगादि लाखों, करोड़ों किंवा अरबों वर्षों के थे, वरन् ऋषिमुनियों का जीवन भी लाखों करोड़ों वर्षों का था, दश-दश सहस्र या लाख-लाख वर्ष तपस्या करना तो उनके लिए पलक झपने के तुल्य था, और एक-एक राजा का राज्यकाल दस हजार से कम तो होता ही नहीं, किसी-किसी राजा का राज्यकाल साठ हजार वर्ष, अस्सी या नब्बे, हजार वर्ष, यहाँ तक कि हिरण्यकशिपु जैसों का राज्यकाल लाखों वर्ष का होना बताया गया है, उसने तप ही एक लाख वर्ष तक किया।[1] ऐसे अतिरंजित एवं असम्भाव्य वर्णनों में किसी भी सचेता मनुष्य की अश्रद्धा होना स्वाभाविक है। परन्तु, ऐसे अविश्वसनीय वर्णनों का कारण क्या है, यह पुराणकारों ने जानबूझकर किया या किसी भ्रमवश किया या अज्ञानवश किया। अधिकांशतः ऐसे वर्णन भ्रम या संशयज्ञान की उत्पत्ति है, जान बूझकर ऐसे वर्णन प्रायः नहीं किये गये। केवल साम्प्रदायिक मतान्धवर्णन ही जान बूझकर किये गये हैं।

इस संशयज्ञान या भ्रम के मूल में था—दिव्य, दैवी या दैव वर्षों या युगों की कल्पना। अब इस मूलभ्रान्ति पर प्रहार करेंगे, जिससे कि घोरतम का निवारण होकर सूर्यरूपी निर्मलज्ञान का प्रकाश प्रस्फुटित होगा।

दिव्यकालगणना से भ्रान्ति

वर्षगणना में भ्रम का मूल तैत्तिरीयब्राह्मण का यह वाक्य था—"वर्षं देवानांयदहः।[2]" मनुस्मृति में १२००० वर्षों का दैवयुग माना हैं।[3] यहाँ ये वर्ष मानुषवर्ष ही हैं। पुराणों की मूलगणना (मूलपाठों में) मानुषवर्षों में ही थी—जैसा कि बार-बार उल्लिखित है—

त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः।
त्रिशंद्यानि तु वर्षाणि मतः सप्तर्षिवत्सरः।
पित्र्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते।

मूल में 'दिव्यसंवत्सर' 'सौरवर्ष' का नाम था, क्योंकि सूर्य को ही 'द्यु' कहते हैं। सूर्य या 'देव' से सम्बन्धित वर्ष ही 'दिव्यसंवत्सर' था, सप्तर्षियों का युग २७०० वर्ष का होता था, उसे भी 'दिव्यगणना' के अनुसार कहा गया है—'सप्तर्षीणां युगं ह्येतद्दिव्यया संख्यया स्मृतम्।'[5] उत्तरकाल में इस 'दिव्यवर्ष (सौरवर्ष) को भ्रम से

---

१. शतं वर्षसहस्राणां निराहारो ह्यधशिराः।
वरयामास ब्रह्माणं तुष्टं दैत्यो वरेण ह॥ (ब्रह्माण्ड० २।३।३।१४);

२. तै० ब्रा०

३. एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते (मनु० १।७१)

४. वायुपुराण (५७।१७,

५. वायु० (९९।४१९),

३६० वर्षों का माना गया—

त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणियानि तु ।
दिव्यसंवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः ।।[1] (पाठत्रुटि)

पुराणों के उपर्युक्त प्रमाणों को देखकर पं० भगवद्दत्त ने लिखा—'इस प्रकरण के सब प्रमाणों से मानुष और दिव्य संख्या का स्वल्प सा अन्तर दिखाई पड़ता है।[2] भ्रम का मूल यही 'दैव'—या 'दिव्य' शब्द था जो मूल्य में 'सौर' वर्ष था। मनुस्मृति में साधारण मानुषवर्षों का ही दैवयुग माना गया है, उसको उत्तरकालीनटीकाकारों ने भ्रमवश ३६० का गुणा करके भ्रामक एवं मिथ्यागणना की। आर्यभट्ट के समय तक 'युग' और 'युगपाद' समान (१२०० वर्ष) के माने जाते थे, प्राचीन ईरानी साहित्य में द्वादशवर्षसहस्रात्मकदैवयुग को समानकालिक (३००० वर्ष के) चार युगों में विभक्त किया गया था—"Four ages or periods of Trimillannia...according to the Budohishan Time was for Twelve thousand years (A Dict. of comp. Relegion by S. G. F. Brandon p. 47).

बैबीलन देश में दिव्यवर्ष गणना

In Eridu Aliulum became king and rcigned 28800 years, Alalagar reingned 36000 years.

Five Cities were they. Eight Kings reigned 211200 years.

(The greatness that was Babylon p. 35 by. H. W. F. Saggs).

आर्यभट्ट के समय 'युग' और युगपाद (१२०० वर्ष) समान माने जाते थे, परन्तु ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट्ट का खंडन किया।[3] वास्तव में ब्रह्मगुप्त ने युगपादों के रहस्य को समझा नहीं। आर्यभट्ट का मत ठीक था प्राचीनयुगों में युगपाद समान थे। बैरोसस के अनुसार ८६ राजाओं ने ३४०९० वर्ष राज्य किया और १० राजाओं (या राजवंशों) ने ४ लाख ३ हजार वर्ष राज्य किया।

(विश्व की प्रा० सभ्यता पृ० ५०)

दशराजाओं का राज्यकाल=४०३००० वर्ष (दिन)=१११० वर्ष; पुराणों और बेरोसस की 'दिव्यवर्षगणना' का ऐतिहासिक अर्थ इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। अथर्ववेद[4], मनुस्मृति[5] और वायुपुराणादि से ज्ञात होना है चतुर्युग साधारण

---

१. ब्रह्माण्ड० (१।२।२८।१६),
२. भा० वृ० इ० प्र० भाग पृ० १६५।
३. न समा युगमनुकल्पाः काल्पादिमतं कृतादियुगानि तंच।
स्मृत्युक्तैरार्यभटो नातो जानाति मध्यगतिम् ।। (ब्रह्मस्फुटसि०)
४. अथर्व (८।२।२१) तेयुतं हायनान्'''।।
५. मनुस्मृति (१।६९-७१) इत्यादि श्लोक चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां कृतं युगम् ।

वर्षों (क्रमशः एक सहस्र, द्विसहस्र, त्रिसहस्र और चतुःसहस्र) वर्षों के थे।[1] महाभारत में स्पष्ट लिखा है कि नहुष, जो कृतयुग के आदि में हुए, से युधिष्ठिर, जो द्वापर के अन्त और कलियुग के आरम्भ में हुए, केवल दशसहस्रवर्ष व्यतीत हुए।[2] यदि ये युग तथा कथित दिव्यवर्षों के होते तो नहुष से युधिष्ठिरपर्यन्त लाखों मानुषवर्ष व्यतीत होते।

पुराणों में भ्रामकगणना का एक और महान् कारण है, जिसका अनुसंधान महती सूक्ष्मेक्षिका का कार्य है।

पुराणों में २८ किंवा युगों या परिवर्तों (परिवर्तनों) में २८ या ३० व्यास हुए, ये २८ या व्यास क्रमशः युगानुयुग होते रहे। एकयुग में एकव्यास का अवतरण हुआ। वेदों में दिव्य और मानुष युगों का उल्लेख है इसमें दिव्ययुग ३०० या ३६० वर्ष का और मानुषयुग १०० वर्ष का होता था। यह हमारी कल्पना नहीं, ब्राह्मणग्रन्थों में लिखा है—कि प्रजापति (कश्यप) ने देवों से कहा है कि तुम्हारी आयु ३०० वर्ष की होती है अतः यह सत्र ३०० वर्षों में समाप्त करोगे—"देवान्नब्रवीदेतानि यूयं त्रीणि शतानि वर्षाणां समापयथेति।[3] ऋग्वेद में लिखा है—'दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे।[4] अर्थात् दीर्घतमा दश (मानुष) युग जीवित रहा। इसकी व्याख्या शाँख्यायन ने इस प्रकार की है—"तत उ ह दीर्घतमा दश पुरुषायुषाणि जिजीव" (शां० ब्रा २।१७), मनुष्यायु (पुरुषायु मानुषयुग) १०० वर्ष होती है—

शतं वर्षाणि पुरुषायुषो भवन्ति (ऐ० ब्रा०)
"शतायुर्वै पुरुषः।" (श० ब्रा० १३।४।११।१५)

स्पष्ट है कि दश पुरुषायु = दश मानुषयुग = १००० वर्ष तक दीर्घतमा जीवित रहा। इसका कोई दूसरा अर्थ हो ही नहीं सकता। अतः मानुषयुग १०० वर्ष का था और देवयुग ३६० वर्ष का था और इस प्रकार ३० व्यास ३० युगों (३६० × ३० = १००८० + ७२० = १०८०० वर्ष) में हुए। अतः नहुषादि युधिष्ठिर से ठीक १०००० वर्ष पूर्व हुए थे।

पुराणों में उपर्युक्त परिवर्त या युग का मान ३६० वर्ष था, जो वेदों में एक दिव्य या देव युग कहा जाता था। 'देवयुग' शब्द से पुनः भ्रम उत्पन्न हुआ जिससे महायुग = चतुर्युग = १२००० (द्वादशसहस्र) वर्षों में ३६० का गुणा किया जाने लगा। इसी महान् भ्रम के कारण आजकल वैवस्वतमन्वन्तर का २८वाँ कलियुग माना जाता है।[5] जबकि वैवस्वत मनु महाभारतकाल से केवल ११ सहस्रवर्ष पूर्व हुए

१. वायु० (५७।२२-२६) अत्र संवत्सरासृष्टा मानुषेण प्रमाणतः)।
२. दशवर्षसहस्राणि सर्परूपधरो महान्। विचरिष्यसि पूर्णेषु पुन. स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ (उद्योगपर्व १७।१५)
३. जै० ब्रा० (१।३),
४. ऋ० (१।१५८।६)।
५. अष्टविंशाद्युगमस्मात् यातमेतत्कृतं युगम् (सूर्यसिद्धान्त (१।२३)

थे, २८ चतुर्युगों को बीतने की बात भ्रममात्र है।

'युगसमस्या' का पूर्ण समाधान अन्यत्र होगा। अतः यह विस्तार केवल स्पष्ट करने के लिये लिखा गया है कि युग, मन्वन्तर और कल्प की वर्षगणना में क्यों भ्रम उत्पन्न हुआ।

१३ मनु, वैवस्वत मनु से पूर्व हो चुके थे अथवा कुछ मनु वैवस्वत के समकालीन थे, अत १४ मनुओं में लाखों वर्ष का अन्तर नहीं था, कुछ शताब्दियों का अन्तर ही था, यह 'विकासवाद' के खण्डनप्रसंग में लिख चुके हैं। अतः कल्प का वर्षमान केवल एक करोड़ बीस लाख वर्ष था न कि चार अरब वर्ष, जैसा कि वर्तमान पुराणों के आधार पर कुछ आधुनिक लेखक पृथ्वी की आयु मानने लगे हैं। यह भी सब भ्रम है, जिसका पूर्वप्रतिवाद हो चुका है।

उपर्युक्त दिव्यवर्षसम्बन्धी भ्रमनिवारण के साथ राजाओं के राज्यकाल-सम्बन्धी समस्या सुलझ जाती है। सर्वप्रथम दाशरथिराम के राज्यकाल[1] को ही लीजिए। उपर्युक्त भ्रम के प्रयास में ३० वर्ष ६ मास और २० दिन को दिव्य मानकर उनको ११००० मानुषवर्षों में परिणित कर दिया, वास्तव में उनका राज्यकाल ३० वर्ष (मानुष) ६ मास और २० दिन था।

बैबीलनदेश में दिव्यगणना सम्बन्धी परिपाटी या भ्रान्ति

भारतवर्ष में इतिहासपुराणों एवं ज्योतिषग्रन्थों (यथा सूर्यसिद्धान्त) में यह 'दिव्यगणनासम्बन्धी' परिपाटी प्रविष्ट किस काल में की गई इसका समय ठीक ज्ञात नहीं होता, तथापि बौद्ध और जैनग्रन्थों में भी यह गणनापद्धति प्रचलित थी, यथा निदानसंज्ञक ग्रन्थ में बुद्धघोष २४ बुद्धों की आयु इस प्रकार बताता है—

प्रथम बुद्ध—दीपंकर—आयु—एकलाख वर्ष (दिन)=२७७ वर्ष
द्वितीयबुद्ध कौडिन्य " " " =२७७ वर्ष

परन्तु कनिष्क समकालिक अश्वघोष के समय तक यह 'दिव्यगणना' पद्धति प्रचलित नहीं हुई थी, अतः उसने सामान्य मानुषवर्षों में पौराणिक व्यक्तियों का समय लिखा है—

विश्वामित्रो महर्षिश्च विगाढ़ोऽपि महत्तपः।
दशवर्षाण्यहर्मेने घृताच्याप्सरसा हृतः ॥ (बुद्धचरित ४।२०)

परन्तु सूर्यसिद्धान्त में दिव्यवर्षगणनापद्धति मिलती है, और मनुस्मृति, महाभारत में नहीं। परन्तु पुराणों में यह पद्धति प्रविष्ट कर दी गई—न्यूनतम विक्रम से पूर्व तीन शती पूर्व। क्योंकि बैबीलन के प्रसिद्ध इतिहासकार बैरोसिस ने जो विक्रम से लगभग तीन शतीपूर्व हुआ, राजाओं का राज्यकाल, भारतीयपुराणों के सदृश 'दिव्यवर्षों' में लिखा है। पूर्व पृ० ९३ पर आधुनिक इतिहासकार सेग्जस (Saggs) के

---

१. दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति।

सन्दर्भ से लिखा जा चुका है कि बैबीलन के दो राजाओं ने कुल ६४८०० वर्ष राज्य किया—राज्य एललम (इलिल २८८०० वर्ष दिन
भरतपूर्वज ?)

राजा अलालगर दिन = ३६००० "
६४८०० वर्ष = १८० वर्ष

दाशरथिराम के उदाहरण से समझा जा सकता है कि २८८०० दिनों (के) ८० वर्ष और ३६००० दिन के १०० वर्ष होते हैं अत: दोनों राजाओं का कुल राज्यकाल केवल १८० वर्ष (सौरवर्ष) था।

इसी प्रकार बैरोसस ने प्रलयपूर्व के ८ राजाओं का राज्यकाल २४१२०० वर्ष (दिन) बताया है, अत: उनका राज्यकाल केवल ६७० वर्ष हुआ।

अत: उपर्युक्त गणना भारत और बैबीलन में अश्वघोष के पश्चात् प्रचलित हुई अत: इस प्रकार से अश्वघोष का समय बैरोसस के पूर्व, लगभग चार शती विक्रमपूर्व निश्चित होता है।

इसी महती भ्रान्ति के कारण, रामायण में १५ वर्ष के एक बालक की आयु पाँच सहस्र वर्ष[1] बताई है, भला बालक भी पाँच हजार वर्ष का हो सकता है, इससे प्रक्षेपकारों की भ्रान्ति उद्घाटित होती है।

कुछ अन्य राजाओं का राज्यकाल पुराणों में इस प्रकार उल्लिखित है—
भरत दौष्यन्ति का राज्यकाल = २७००० वर्ष = ७५ वर्ष, ४ मास
सगर ,, = ३०००० वर्ष = ८३ वर्ष, ४ मास

अत: भरत दौष्यन्ति ने लगभग ७५ वर्ष और सगर ने ८३ वर्ष राज्य किया। यह राज्यकाल प्राचीनयुग के मानव के लिए पूर्ण सम्भव, अत: सत्य है। सुमेर और बैबीलन के अनेक प्रारम्भिक राजाओं का राज्यकाल भी इसी प्रकार लगभग १००-१०० वर्ष के आसपास था, द्रष्टव्य पृष्ठ ६६;

ऋषियों का दीर्घायुष्ट्व

योगसिद्धि एवं रसायनविद्या के अभाव में दीर्घायुष्ट् के रहस्य को नहीं समझा जा सकता। प्राचीनयुगों में मनुष्य विशेषत: देवसंज्ञकमनुष्य और ऋषि दीर्घजीवी होते थे। वेद, पुराण, अवेस्ता और बाइबिल में दीर्घायुष्ट्व के प्रमाण मिलते हैं। आज रूस में लगभग २०० वर्ष आयु के अनेक पुरुष जीवित हैं। अत: दीर्घजीवन में अविश्वास करना सर्वथा अलीक है। दीर्घायु पूर्णत: सम्भव एवं सत्य ऐतिहासिक तथ्य था।

नारद, परशुराम, अगस्त्य, मार्कण्डेय, लोमश, दीर्घतमा, भरद्वाज आदि की दीर्घायु आज के तथाकथित वैज्ञानिकों के लिए दुर्गम समस्या हैं। पाश्चात्यलेखकगण

---

१. अप्राप्तयौवनं बालं पंचवर्षसहस्रकम्। अकाले कालमापन्नम्...॥
(अप्राप्तयौवन का अर्थ है यौवन के निकट, यह १५ वर्ष का ही सम्भव है, पाँच वर्ष का नहीं) (रामा. ७।७३।५)

तो पुराणों के इतिहास पर विश्वास ही नहीं करते, परन्तु जो विश्वास करते थे, वे भी दीर्घजीवन के रहस्य को न समझकर मिथ्यालेखन करते रहे, यथा पार्जीटर का मत द्रष्टव्य है—"प्रायः ऋषि अनेक कालों (युगों) में दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु क्षत्रिय-राजा कालक्रम को भंग कर उपस्थित नहीं होता।"[1]

वेदमन्त्र के प्रमाण (ऋ० १।१५८।६) से पिछले पृष्ठ पर लिखा जा चुका है कि दीर्घतमा एकसहस्रवर्ष तक जीवित रहा। वैदिककल्पसूत्रों एवं ब्राह्मणग्रन्थों में उल्लिखित है कि दश विश्वस्रज (प्रजापतियों) ने वर्षसहस्रात्मक सत्र किया था। कश्यप प्रजापति ने ७०० वर्ष का यज्ञ किया—"स सप्त शतानि वर्षाणां समाप्येमामेव जितिमजयत्।[2] प्रजापति ने सहस्रवर्ष तप किया—"स तपोऽतप्यत सहस्रपरिवत्सरान्।"[3] नारदादि एवं भरद्वाजादि ऋषियों की दीर्घायु का वैदिकग्रन्थों एवं पौराणिक ग्रन्थों में बहुधा उल्लेख है, अतः दीर्घजीवीपुरुषों का इतिहास एक पृथक् अध्याय में संकलित करेंगे। परन्तु दीर्घजीवन के घटाटोप में गोत्रनामों से भ्रम होता है, वह जगत्प्रसिद्ध है: जैसा कि वशिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त्य, अत्रि इत्यादि के गोत्रनामों से इनके वंशजों को भी वशिष्ठ या वासिष्ठ, विश्वामित्र या कौशिक, अगस्त्य या अगस्ति, अत्रि या आत्रेय कहते थे। यह नियम प्रायः सभी गोत्रप्रवर्तक ऋषियों यथा याज्ञवल्क्यादि सभी पर लागू होता है। आदिम यज्ञवल्क्य या याज्ञवल्क्य आदिम विश्वामित्र के पुत्र थे, जो कृतयुग में हरिश्चन्द्र ऐक्ष्वाक से पूर्व हुये, परन्तु पाण्डवकालीन वाजसनेय याज्ञवल्क्य का गोत्रनामसाम्य होने से सर्वत्र एक ही याज्ञवल्क्य का भ्रम होता है, यह दीर्घजीवन का उदाहरण नहीं है केवल गोत्रनामसाम्य से भ्रम होता है। इसी प्रकार का भ्रम पं० भगवद्दत्त को भरद्वाज ऋषि के विषय में होगया, जबकि पण्डित जी को ज्ञात होगा कि भरद्वाजगोत्र के प्रत्येक व्यक्तिको भरद्वाज या भारद्वाज कहा जाता था और इतिहासपुराणों एवं चरक-संहिता में उनका पृथक्-पृथक् नामत उल्लेख भी है। यदि बृहस्पतिपुत्र भरद्वाज और द्रोणाचार्य के पिता भरद्वाज (भारद्वाज) को एक माना जाय तो उन दोनों में ६००० (छ सहस्र) वर्ष का अन्तर है, इतनी वृद्धावस्था में आदिम भरद्वाज का द्रोणाचार्यपुत्र को उत्पन्न करना, न केवल असंभव, किंच हास्यास्पद भी है, जो शरीरविज्ञानी किंवा योगी के लिए भी अनुचित है।[4] तैत्तिरीयब्राह्मण[5] के अनुसार इन्द्र ने भरद्वाज बार्हस्पत्य को तीन पुरुषायु (३०० वर्ष की आयु) प्रदान की और चतुर्थ पुरुषायु का प्रस्ताव किया था। भला, जो भरद्वाज इन्द्र की कृपा (रसायनसेवन) से ४०० वर्षमात्र

1. It is generally rishis who appear on such Occasions in defiance of chronology, and rarely that Kings so appear (A. I, H, T. by Pargiter p. 141),
२. जै० ब्रा० (१।३),
३. श० ब्रा० (१०।४।४।१);
४. द्र० भा० वृ० इ० भाग १, अध्यायदीर्घजीवीपुरुष, पृ० १४६;
५. द्र० तै० ब्रा० का मूल उद्धरण, (३।१०।११।४५)

जीवित रहा, उसका ६००० वर्ष की आयु में पुत्र उत्पन्न करना केवल गोत्रनामसाम्य का भ्रममात्र के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। अतः भरद्वाज एक नहीं, उनके वंशज अनेक (शतशोऽथ सहस्रशः) हुए, जो सभी भरद्वाज या भारद्वाज कहलाते थे। अतः वास्तविक दीर्घजीवन और गोत्रनामसाम्यभ्रम के भेद का ध्यान रखकर असद्ग्राहों से बचना चाहिए।

सम्वत्समस्या

केवल कलिसम्वत् का उल्लेख ही पुराणों में है। परन्तु काण्वोत्तरकालीन या भारतोत्तरकालीन भारतीय इतिहास में सम्वतों का इतना बाहुल्य है कि, सहज ही भ्रमोत्पत्ति होती है। प्राचीन भारत में अनेक संवत् थे, जिनमें अनेक सम्वतों को 'शकसम्वत्' कहा जाता था और शकसम्वत् का प्रारम्भ और अन्त भी शक कहलाता था। एक शकसम्वत् आन्ध्रसातवाहनों के राज्यकाल के मध्य में शकराज्योत्पत्ति के समय अर्थात् २४५ वि० पू० से प्रारम्भ हुआ, शकों का राज्य ३८० वर्ष रहा, पुनः जब चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय, सांहसाक ने १३५ वि० सं० में शकराज्य का अन्त किया, तक द्वितीय शकसम्वत् चला, जैसा कि ज्योतिषियों ने लिखा है—"शका नाम म्लेच्छजातयो राजानस्ते यस्मिन् काले विक्रमादित्यदेवेन व्यापादिताः स कालो लोके शक इति प्रसिद्धः।"[1] आधुनिक लेखक शकसम्वत् का सम्बन्ध कुषाण-शासक कनिष्क से स्थापित करते हैं, यह सर्वथा मिथ्या है। शकों, कुषाणों, हूणों, तुषारों, मुरुण्डशकों आदि सभी के राज्यवर्ष या सम्वत् पृथक्-२ शिलालेखादि पर उल्लिखित है, इसी प्रकार मालवगणसम्वत् शूद्रकसम्वत्, हर्षसम्वत्, विक्रमसम्वत् आदि सभी पृथक्-पृथक् सम्वत् थे, आधुनिक लेखक, इन सभी सम्वतों को एक मानकर इतिहास के साथ घोर व्यभिचार और अनाचार करते हैं। इसी प्रकार गुप्तसम्वत् दो थे, एक गुप्तसम्वत्, गुप्तराज्य प्रारम्भ के से और द्वितीय गुप्तसम्वत् गुप्तराज्य के अन्त के वर्ष से चला। इन दोनों में २४२ वर्षों का अन्तर था, आधुनिक ऐतिहासिकलेखकों ने गुप्तराज्य का प्रारम्भ उस समय से माना, जब गुप्तराज्य का अन्त हो गया था। इससे गणना में २४२ वर्ष का अन्तर उत्पन्न किया गया।

अतः सम्वत्बाहुल्य से कुछ भ्रम उत्पन्न हुआ और कुछ भ्रम जानबूझकर फ्लीट आदि लेखकों ने किया। इन सभी भ्रमों एवं समस्याओं का निराकरण आगामी अध्यायों में किया जायेगा।

---

१. वृहत्संहिता भट्टोत्पलटीका (८।२०), शिलालेखों में उल्लिखित 'शकनृपकालातीतसंवत्सरः' का ही यह भाव है कि शकसम्वत् शकराज्य के अन्त से प्रवर्तित हुआ। भास्कराचार्य ने भी यही लिखा है—"शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सराः" (सि० शि० कालमानाध्याय १।२८),

अध्याय—तृतीय

भारतीय ऐतिहासिक कालमान

कालमान एवं तिथिगणना किसी भी देश के इतिहास की सुषुम्नानाड़ी या रीढ की हड्डी है, जिस पर इतिहासरूपीशरीर निलंबित रहता हैं। आधुनिक तथाकथित इतिहासकारों ने मिस्र, सुमेर चीन, बेबीलन, मयसभ्यतासहित प्राचीन इतिहास की सभी तिथियाँ बिना किसी प्रमाण के अपने मनमानी कल्पना के आधार पर निश्चित की, सर्वाधिक भ्रष्ट कल्पनायें भारतीय इतिहास की कालगणना में की गई और सर्वाधिकप्रसिद्ध काल्पनिक या असत्य या भ्रामकतिथि, जो भारतीय इतिहास में घढ़ी गई वह है चन्द्रगुप्त और सिकन्दर यूनानी की समकालीनता की कहानी। सन् ३२७ ई० पू० में सिकन्दर के भारत आक्रमण की तुच्छतम घटना को मूलाधार बनाकर अंग्रेजों ने प्राचीनभारतीय इतिहास का मूल ढाँचा बनाया। हमारा उद्देश्य इस भ्रष्ट या असद् ढ़ाचे को तोड़कर सत्य की भित्ति पर इतिहासभवन बनाना है।

प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक कालगणना का मूलाधार युगगणना हैं, युगगणना के अनेक प्रकार थे। महाभारतकाल से पूर्व परिवर्तयुगगणना (या वैदिक 'दिव्य-मानुषयुग' गणना) प्रचलित थी।[1] महाभारतकाल से कुछ शती पूर्व 'द्वादशसहस्रात्मक चतुर्युगगणना' पद्धति का प्राबल्य हो गया।

युगगणनापद्धतियों के सम्यग् बोधार्थ, सर्वप्रथम, संक्षेप में भारतीयकालमिति (कालविज्ञान) या कालमानों की सारणी प्रस्तुत करेंगे।

प्राचीन भारत और मयसभ्यता (मध्यअमेरिका-मैक्सिको)...ये दो ही ऐसे प्राचीनतम देश थे, जहाँ आधुनिक सैकेण्ड से सूक्ष्मतर और प्रकाशवर्ष (Light Year) से महत्तर कालमान प्रचलित थे। मयसंस्कृति में शुक्रग्रह के आधार पर कालगणना विशेषरूप से प्रचलित थी, क्योंकि विश्वकर्मा मय, स्वयं शुक्राचार्य का पौत्र और त्वष्टा (शिल्पी) का पुत्र था। मय के वंशजों ने अनेक देशों में अपनी सभ्यता स्थापित की। इस सभ्यता की मुख्य दो विशेषतायें थी, स्थापत्यकला (भवननिर्माण) और सूक्ष्म ज्योतिषगणना। प्राय: अब सभी इतिहासविद् मानने लगे हैं कि प्राचीन विश्व में सर्वोच्चकोटि के भवनों का निर्माण मयजाति के लोगों (शिल्पियों) ने किया था, यथा मिस्र, भारत और मध्य अमेरिका में मैक्सिको, होण्डूरान्स, द० अमेरिका में प्राचीन पेरू, बोलवीया इत्यादि देशों में।

---

१. वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराण के प्राचीनपाठों में 'परिवर्त' या पर्याययुगगणना का ही मुख्यत: उल्लेख मिलता है।

मयासुरों के कालगणनासम्बन्धी वैशिष्ट्य का उल्लेख करते हुए एक विद्वान् लिखा है—"उनके अभिलेखों में ९००००००० (नौ करोड़) और ४००००००० (चार करोड़) वर्ष पूर्व की ठोस संगणनाओं द्वारा निर्धारित तिथियों का वर्णन है, उन्होंने पृथ्वी के सौरवर्ष की ही संगणना नहीं की, चन्द्रलोक का परिशुद्ध पंचाग भी तैयार किया, और शुक्रग्रह की संयुक्त परिक्रमाओं का भी अचूक परिकलन किया।"[1] मयासुरों की कालगणना २० या कौड़ी के आधार पर चलती थी और २३०४००००००० दिनों का एक अलाउटुन नाम का 'युग' होता था, जो २० कालावटुन के तुल्य था। कालमानों के नाम थे—२० किन = १ यूइनल (मास—शुक्रमास), १८ यूइनल = १ टुन (३६० दिन = वर्ष) २० टुन = १ काटुन (७२०० दिन), २० काटुन = १ वाक्टुन, २० वाक्टुन = १ पिकटुन। मयलोग शुक्र[2] (ग्रह या शुक्राचार्य) की विशेष पूजा करते थे,क्योंकि वही उनके पूर्वज थे। आदि मयासुर को ज्योतिषज्ञान उसके बहनोई (सुरेण्पति) विवस्वान् ने दिया था, जैसा कि सूर्यसिद्धान्त में लिखा है—"ग्रहाणां चरितं प्रादान्मयाय सविता स्वयम्"। अतः मयजाति का गुरु भारत ही था। यहाँ पर, प्राचीन काल में युग, मन्वन्तर, कल्प जैसे महत्तम और सूक्ष्मतम कालांश (सेकेण्ड का पंचम भाग तक) प्रचलित थे—'यावन्तो निमेषास्तावन्तो लोमगर्ता यावन्तो लोमगर्तास्तावन्तो स्वेदायनानि यावन्ति स्वेदायनानि तावन्त एते स्तोका वर्षन्ति।" (श० ब्रा० १२।३।२।४-५), शतपथब्राह्मण (१२।३।२।४-५) में ही मुहूर्त क्षिप्र, एतर्हि, इदानि और प्राणसंज्ञक सूक्ष्मतम कालांशों का उल्लेख है।

द्वादशसहस्रात्मक या दशसहस्रात्मक महायुग का मूलाधार—प्राचीन वैज्ञानिक उक्तियाँ है—

'योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म' (ई० उ० १७)

'यावन्तः पुरुषे तावन्तो लोक इति (चरससंहिता ४।१३)

'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' ब्रह्माण्ड या सूर्यलोकसम्मित ही मनुष्यशरीर है। एक दिन (अहोरात्र = २४ घण्टे) में मनुष्य १०८०० प्राण और इतने ही अपान ग्रहण करता है—

शत शतानि पुरुषः समेनाष्टौ शता यन्मितं तद्वदन्ति।
अहोरात्राभ्यां पुरुषः, समेन तावत्कृत्वः प्राणिति चानिति॥[3]

अग्निचयन नाम के अतियज्ञ में इतनी ही (१०८००) इष्टिकायें रखी जाती थीं। अथर्ववेद में शतमानुषयुगों में दशसहस्रवर्ष बताये गये हैं, और इनको चार भागों में विभक्त किया गया है—(कृत, त्रेता, द्वापर और कलि)—

---

१. दी इग्जैक्ट साइंसेस इन ऐंटिक्विटि, ले० न्यूगे बाफ़र से धर्मयुग (३ मई, १९८१) में उद्धृत।

२. मयलोग शुक्र को भगवान् कुकुलकन (कवि उशना = शुक्र) कहते थे और इसकी मूर्ति पूजते थे।

३. श० ब्रा० (१२।३।२।८).

"शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः ।"[१]

प्राचीन भारत में बहुधा प्रचलित क्रमिक और सूक्ष्म कालांश इस प्रकार थे

१/४ निमेष = १ तुट	१५ मुहूर्त = १ अहोरात्र
२ तुट = १ लव	१५ अहोरात्र = १ पक्ष
२ लव = १ निमेष	७ अहोरात्र १ सप्ताह
५ निमेष = १ काष्ठा	२ सप्ताह = १ पक्ष
३० काष्ठा १ कला	२ पक्ष = १ मास
४० कला = १ नाडिका	१२ मास = १ वर्ष
२ नाडिका = १ मुहूर्त	३० दिन = १ मास

लोक और वेद में चन्द्रमा या प्रजापतिपुरुष की षोडशकलायें प्रसिद्ध हैं। 'कला' और 'काल' शब्द 'कल' धातु (गणना) से व्युत्पन्न हैं । कलाओं का सुपरिणाम काल है ।[२]

प्राचीन भारत में होरा (घण्टा), मुहूर्त, रात्रि-दिन, पक्ष, मास तथा वर्षों के नाम भी रख दिये गए थे ।[३] नक्षत्र, वार, और ग्रहों के नाम वेद के आधार पर प्राचीन-विश्व में रखे गये थे, इसकी एक लघु झाँकी यहाँ प्रस्तुत की जा रही है । यूरोप में १५, ३० और ६० का विभाजन प्राचीन भारत से ही बेबीलन और ग्रीस के माध्यम से गया । पुराणों का प्रसिद्ध श्लोक है—

काष्ठा निमेषा दश पंचैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत् कलान्तम् ।
त्रिंशत्कलाश्चैव भवेन्मुहूर्तस्तैस्त्रिंशतो राव्यहनी समेते ।।[४]

"१५ निमेष की एक काष्ठा होती है, ३० काष्ठा की एक कला और ३० कलाओं का एक मुहूर्त और ३० मुहूर्त का एक अहोरात्र होता है । महीने में ६० अहोरात्र होते हैं ।"

ग्रहवारनाम

आधुनिक लेखक प्रायः यह उद्घोष करते हैं कि प्राचीन भारत में राशियों और वारों के नाम अज्ञात थे, परन्तु जिन ऋषियों या राजर्षियों के नाम पर ग्रहों और वारों के नाम रखे गए थे, वे सभी देवासुरयुगीन भारतीयपुरुष थे, यह हम पहले ही संकेत कर चुके हैं कि यह नामकरण वामनविष्णु द्वारा असुरेन्द्रबलि की पराजय एवं भारतपलायन से पूर्व ही हो चुका था, हमारे मत की पुष्टि वारनामों से भी होती है, यथा भारतीय-नाम—आदित्य (सूर्य) वार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार, शुक्रवार और शनिवार । अदितिपुत्र विवस्वान् (सूर्य या आदित्य) के नाम पर रविवार

१. अथर्ववेद (८।२।२१),
२. 'कलानांसुपरीणामात् काल इत्यभिधीयते' (वायुपु० १००।२२५),
४. तैत्तिरीयब्राह्मण (३।१०) में शुक्लपक्षादि के मुहूर्तों के नामादि द्रष्टव्य हैं ।
५. वा० पु० (५०।१६९),

(आदित्यवार=ऐतवार) को यूरोप में 'सनडें' अत्रिपुत्र सोम या चन्द्रमा के नाम से मूनडें (मनडे), भौम मंगल या वैदिकदेवता 'मरुत्' (मार्स) नाम से ट्यूजडे, सोमपुत्र रार्जषि बुध के नाम पर बुधवार (वेडनेसडे), देवपुरोहित बृहस्पति (आंगिरस) के नाम पर थर्स्डडे, शुक्र के नाम पर शुक्रवार (फ्राईडे) और सूर्यपुत्र शनि से नाम से शनिवार (Saturday) रखा गया। पुरूरवा का पिता बुध जब भारत में ही रहता था, तभी बार का नाम 'बुधवार' रख दिया गया था, जब दैत्य भारत से भाग कर यूरोप में बसे तब इसी नाम को वहाँ ले गये, यह प्रत्यक्ष है इसको अन्य प्रमाण की क्या आवश्यकता है।[१] 'शनि और 'सेटर्न' शब्दों का साम्य स्पष्ट है। ट्यूज (मंगल) 'मरुत्' शब्द का और 'थर्स्ड' बृहस्पति (बृहस) शब्द का विकार है।

वैदिकग्रन्थों में त्रिविध मासनाम मिलते हैं, इनमें प्रथम, चैत्रादि नाम अर्वाचीन और अधिक प्रचलित हैं, 'मधुमाधव' आदि नाम केवल वैदिक हैं तथा अरुणादि नाम केवल तैत्तिरीयब्राह्मण (३।१०) में ही मिलते हैं। १२ मासों का 'सम्वत्सर' वा वर्ष जगत्प्रसिद्ध हैं। वर्ष को वैदिकग्रन्थों में सम्वत्सर आदि कहा जाता था और ऋतुओं के नाम पर शरद्, हिम, वर्ष, इत्यादि भी कहा जाता था। वर्ष का प्राचीनतम नाम वेद में 'हिम था, क्योंकि 'हिमयुग' में 'हेमन्त' ऋतु या 'शरदृतु' का प्राबल्य था।

विश्वइतिहास का समान प्रारम्भ

आधुनिक साम्राज्यवादी पाश्चात्य लेखकों ने न केवल भारतवर्ष के इतिहास के साथ ही नहीं बल्कि समस्त प्राचीनदेशों के इतिहास के साथ घोर षड्यन्त्र किया था। प्राचीनदेशों के साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उनके प्रारम्भिक इतिहास की अनेक बातें समान थी, क्योंकि पाश्चात्य साम्राज्यवादियों को सर्वाधिक भय भारत की प्राचीन सभ्यता और साहित्य से था, अतः उन्होंने भारतीय इतिहास के साथ सर्वाधिक घोर व्यभिचार किया। निम्नलिखित **प्राचीन देशों का इतिहास विक्रम से लगभग बीस सहस्रवर्ष पूर्व प्रारम्भ होता है—**

१. भारत	४. मिस्र
२. सुमेर, बैबीलन	५. हिब्रू (यहूदी)
३. पारस	६. क्रीट

परन्तु पाश्चात्यलेखकगण प्राचीनदेशों के इतिहास को तीन ता साढ़ेतीन सहस्राब्दी से अधिक पूर्व प्रारम्भ नहीं करते। कालडिया (बैबीलन) के इतिहास को वे

---

१. वैदिक मरुत् को यूरोप में मार्स (मृत्युदेव) कहते हैं, वेद में भी मरुत्गण या मंगल विघ्नेश मृत्युदेव हैं। 'बृहस्पति' के 'बृहस्' का विकार 'थर्स' रूप बन गया। बुध का 'वेडन' रूप स्पष्ट विकार है। शुक्र का ही एक नाम 'प्रिय' था, यह प्रेम (काम) या विवाह का देवता भी था। 'प्रिय' (प्रेम) शब्द ही बिगड़कर फ्राई (डे) गया। विवाह शुक्रोदय में ही होते हैं।

२८०० ई० पू० से प्रारम्भ करते हैं, जबकि प्राचीन अभिलेखों के अनुसार वहाँ का प्रसिद्ध सम्राट् सारगोन ३८०० ई० पू० हुआ था। किंग आदि पाश्चात्य लेखक इस समय को घटाकर २८०० ई० पू० मानने लगे। बेरोसस द्वारा वर्णित जलप्रलय के पूर्व और पश्चात् के राजाओं और इतिहास को पाश्चात्यलेखक ऐतिहासिक मानते ही नहीं।

मिस्र के सम्बन्ध में ब्रेस्टेड, हाल आदि पाश्चात्यलेखक यह मत रखते थे कि मिस्र के प्रथमवंश की स्थापना चतुर्थ सहस्राब्दी ई० पू० के मध्य अर्थात् ३५०० ई० पू० हुई। इस प्रकार उनकी गणना से मिस्र के प्रथम राजा मनु का समय ३५०० ई० पू० के लगभग था।

इसी प्रकार पारस (ईरान) के इतिहास को वे पश्चात्यलेखक दो-तीन सहस्राब्दी ई० पू० से ही प्रारम्भ करते हैं।

भारत के इतिहास को उन्होंने तथाकथित आर्यआव्रजन लगभग १००० ई० पू० तथा तिथिपूर्वक इतिहास लगभग ५०० ई० पू० गौतमबुद्ध और बिम्बसार से प्रारम्भ किया।

उपर्युक्त सात प्राचीन देशों के इतिहास में निम्न तथ्य समानरूप से पाये जाते है :—

१. जलप्रलय और मनु
२. युगविभाग और कालगणना
३. देवासुरवृत्त
४. वर्णव्यवस्था
५. यज्ञसंस्था
६. भाषासाम्य
७. सर्प और पाताल
८. अप्सरा

अब देशानुसार क्रमशः उपर्युक्त कुछ तथ्यों का उच्चावच यथाकथा संक्षप में संकेत करेंगे।

भारत में

जलप्रलय और मनु से अप्सरा तक आठ बातों का भारत से घनिष्ठ सम्बन्ध है, इनका वर्णन इसी ग्रन्थ के अनेक स्थलों पर बिखरा हुआ है, अतः इसकी यहाँ आवृत्ति ग्रंथ-कलेवरवृद्धि के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा।

सुमेर

कालडिया और बैबीलन के प्राचीन इतिहासकार बैरोसस ने जलप्रलयपूर्व और पश्चात् के राजाओं का उनके राज्यकालसहित उल्लेख किया है, यह वृत्त (इतिहास) उसको कालडिया में बलिमंदिर में मिला था।[1]

१. It was from these writings deposited in the temple of Belus at Babylon that Berosus copied the outlines of his history as the ante diluvian Sovereigns of chaldea (History of Hindustan T. Mauric, p. 399),

इन्साइक्लोपीडिया और रिलीजन एण्ड एथिक्स के 'युग' सम्बन्धी लेख में भी इस तथ्य का उल्लेख है।

हम अन्यत्र लिख चुके हैं कि बेरोसस को दिव्यकालगणना का पता था जिसके कारण उसने बैबीलन के राजाओं का राज्यकाल सहस्रोंवर्ष लिखा था। सूर्यसिद्धान्त का सम्बन्ध असुरमय से था, उसमें लिखा है कि मानुषवर्ष को दिव्यवर्ष बनाने की प्रथा आसुर देशों में भी थी —

सुरासुराणामन्योऽन्यमहोरात्रं विपर्ययात्।
तत्षष्टिषड्गुणदिव्यं वर्षमासुरमेवच।[1]

बैबीलन अभिलेखों में 'ज़िसुद्र' या जिसुध्रु' जलप्रलयकथा का नायक था। यह शब्द निश्चय ही 'वैवस्वत' का अपभ्रंश है, इसमें कोई सन्देह नहीं। एक अन्यवृत के अनुसार सुमेर का 'ओआनिज वंश (आदित्य ?) के अन्तिम राजा 'एक्सीसूथ्रोज' के राज्यकाल में जलप्रलय हुआ। यह 'एकसीसूथ्रोज' शब्द भी वैवस्वत का ही विकार प्रतीत होता है।

वाडैल आदि पाश्चात्यलेखकों ने सुमेर और भारत की भाषा का साम्य अनेक उदाहरणों मे प्रसिद्ध किया है, इनमें कुछ द्रष्टव्य हैं—

सुमेरियन नाम	संस्कृत भारतीयनाम
पुरुकजी	पुरुकुत्स
उसन्निन्ना	वरुण
मेस्सनिपाद	महाशनिपाद
एललु	इल्वल
बिल्वल	वातापि
निपुर	हिरण्यपुर
उर	और्व
शूरिपाक	शूर्पारक
बेल	बलि
मुही	मही
मारीक	मारीच
मार्डीक	मृडीक (रुद्र)
नरमसिन्	नृसिंह
सिन	सिनीवाली
एललम	ऐल
आओनिज्	मनु या आदित्य ?

देवसाम्य और भाषासाम्य के उपर्युक्त उदाहरण ही पर्याप्त है।

१. सूर्यसिद्धान्त (१।१४)

पारस (ईरान)

यहाँ पर केवल ईरानसम्बन्धी देववंश और युगगणना का संकेत करेंगे। प्राचीन ईरान में अदिति के द्वादशपुत्रों को 'पिश्दादियन' = 'पश्चाद्देव' कहते थे, जबकि असुर दैत्य 'पूर्वदेव' थे। हिरण्यकशिपु के समय वरुण और विवस्वान् ईरान के प्राथमिक शासक थे, जो दोनों ही अदितिपुत्र और पश्चाद्देव थे। वरुण का असुरों से घनिष्ठ सम्बन्ध था, वरुणपौत्र मय की भगिनी सरण्यू विवस्वान् की पत्नी थी, मय ने ज्योतिष विद्या विवस्वान् से सीखी थी। वरुण के पुत्र भृगु, पौत्र शुक्र, प्रपौत्र शण्ड, मर्क और वरूत्री का भी असुरों से घनिष्ठ सम्बन्ध था। वरुण के वंशजों ने ही अरब में राज्य स्थापित किया, जहां उसको 'ताज' कहा जाता था। 'गंधर्व' ही 'अरब' थे, जिनकी स्त्रियाँ अप्सरा ईरान और अरब में 'हूर' कहलाती थीं, यह शब्द 'अप्सरा' का ही विकार है। ईरान के निकट वरूत्री ने 'बेरूत' नगर बसाया, जो उस असुर पुरोहित के नाम से प्रसिद्धहुआ, वरूत्री के भ्राता शण्ड और मर्क ने योरोप में स्केण्डेनेविया और डेनमार्क में राज्य स्थापित किया। लीबिया और लेबनान प्रह्लाद के भ्राता 'ह्लाद' आदि के नाम से प्रसिद्ध हुये।

अवेस्ता में त्वष्टापुत्र 'विश्वरूप' को विवरस्प कहते हैं। अहिदानव (वृत्रासुर) को अजिदहाक, भृगु को विराफ या बग, मर्क को मह्लक, काव्य उशना को केकोश, (प्रह्लाद) कायाधव को कयाध, यम वैवस्वत को जमशेद या यिम विवह्वन्त, वृषपर्वा को अफरासियाव कहा गया है।

शाहनामा में फिरदौसी ने जिन प्रारम्भिक ईरानी राजाओं का वर्णन किया है, वे इस प्रकार थे—

शाहनामा		पुराण
१. कयोमार्ज (Keiomarg)	=	कश्यप मारीच
२. हुशंग	=	विवस्वान्
३. तहमुर्ज	=	वरुण
४. जमशेद	=	यम वैवस्वत
५. अजिदहाक	=	अहिदानव (वृत्रासुर)
६. फेरूदन	=	वरूत्री असुर
७. सेलम	=	शालावृक ,,
८. इरिज	=	रंजन ,,
९. तुर	=	पृथुरश्मि ,,
१०. मेनुचर	=	मानव इक्ष्वाकु ?
११. सरन	=	शशाद ?
१२. जोल	=	विकुक्षि ?
१३. रुदाबह	=	ऋषभ[1] ककुत्स्थ (पुरंजय)

१. पुराणों के अनुसार राजा ककुत्स्थ का इन्द्र ऋषभ (वाहक बैल) बना—
इन्द्रस्य वृषभूतस्य ककुत्स्थो जयते पुरा। (ब्रह्माण्ड० २।३।६३।२५)

१४. रुस्तम	=	विष्ट्राश्व
१५. नोजार	=	युवनाश्व (प्रथम)
१६. अफरासियाव	=	वृषपर्वा
१७. सियावुश	=	श्रावस्त
१८. केरअसप	=	कुवलाश्व
१९. लोहरास्प	=	हर्यश्व
२०. गुस्तास्प	=	कृशाश्व
२१. इसफेन्डिर	=	मान्धातृ
२२. आर्देशियर	=	पुरुकुत्स आर्द्र
२३. दुआजदस्त	=	त्रसदस्यु

इस गणना से पारस (ईरान) का इतिहास विक्रम से लगभग १४००० वि०पू० प्रारम्भ होता है जो कश्यप, मारीच, वरुण, विवस्वान् आदि का समय था। वैवस्वत यम के समय की जलप्रलय का पारसीधर्मग्रन्थ अवेस्ता में उल्लेख है।

जरदुष्ट्र का समय

आधुनिक लेखक बिना किसी प्रमाण के प्रसिद्ध जरदुष्ट्र का समय लगभग एक सहस्रवर्ष ईस्वी पूर्व मानते हैं। लेकिन एक पाश्चात्य विद्वान् जैकब ब्रायन्ट ने प्लिनी, प्लूटार्क, यूडाकसस का मत उद्धृत करके जरदुष्ट्र का काल निकालने का साहसिक प्रयास किया है—"प्लीनी मूसा से कई हजार वर्ष पूर्व जरदुष्ट्र को मानता है। प्लूटार्क उसे ट्राय के युद्ध से ५००० वर्ष पूर्व का स्वीकार करता है और यूडाकसस जरदुष्ट्र को प्लूटो की मृत्यु से ६००० वर्ष पहिले स्थिर करता है।"[1] इस मत से जरदुष्ट्र का समय आज से लगभग साढ़े आठ सहस्रवर्षपूर्व निकलता है।

परन्तु हमारा मत है कि जरदुष्ट्र का समय और भी अधिक प्राचीनतर था। जरदुष्ट्र देवासुरयुग का पुरोहित था और उसका समय ययाति, इन्द्र, वृषपर्वा के निकट ही था, अतः उसका समय न्यूनतम विक्रम से न्यूनतम दशसहस्रवर्ष पूर्व होगा। यही समय उसके संरक्षक राजा गुस्तास्प (अयोध्यासम्राट् ऐक्ष्वाक कृशाश्व) का था। सूची से स्पष्ट है भारत (अयोध्या) और ईरान के ऐक्ष्वाक सम्राट् समान ही थे।

वर्णव्यवस्था

प्राचीन ईरानी ब्राह्मण भृगु या अथर्वा के वंशज थे अतः वहाँ ब्राह्मण को आथर्वण, क्षत्रिय को रथेष्ठा और शेष को विश (प्रजा) कहा जाता था। पुराणों में शाकद्वीप के चातुर्वर्ण को क्रमशः मग, मशक, मानस और मन्दग कहा गया है। इतिहास में शकक्षत्रिय प्रसिद्ध थे।

---

१. आदिमानव का इतिहास, पृ० १६४, ले० रामदत्त सांकृत्य,

युगविभाग

अंग्रेजी विश्वकोशों में ईरान के प्राचीन चार युगों का वर्णन किया गया है। जो प्रत्येक तीन-तीन सहस्राब्दी के थे अर्थात् चारों का योग द्वादशसहस्र वर्ष था,[1] जो मनुस्मृति के 'देवयुग' के तुल्य है।[2]

मिस्र—यूनानी इतिहासकारहेरोडोट्स ने मिस्र का इतिहास किसी मनु से माना है, जिसका आधुनिकग्रंथों में भी उल्लेख है। आधुनिक लेखक इस मनु का समय ३४०० ई० पू० मानते हैं, परन्तु हेरोडोटस ने मिस्री प्रमाण से लिखा था कि उससे (हेरोडोटस से) ११३४० वर्ष पूर्व अर्थात् आज से लगभग १४००० वर्ष पूर्व मनु था। अतः भारतीय, सुमेरी, ईरानी और मिस्री सभी देशों का जलप्रलय के पश्चात् का इतिहास आज से लगभग चौदह-पन्द्रह सहस्र वर्ष पूर्व प्रारम्भ होता है बल्कि मिस्रीगणना में विष्णु आदि द्वादशदेवों का समय आज से लगभग १९००० वर्ष पूर्व था न कि ईसा से तीन साढ़े तीन सहस्र वर्ष, जैसी कि आधुनिककल्पना है।

क्रीट—यूनानी की जन्मदात्री सभ्यता क्रीट का इतिहास भी मनु से (मिनोज या मिनाआ) प्रारम्भ होता है इस देश में शासकों के चार वंश प्रसिद्ध थे—

एकियन	=	इक्ष्वाकु	(क्षत्रिय)
एओलियन	=	ऐल	(क्षत्रिय)
डोरियन	=	द्रुह्यु	(क्षत्रिय)
आयोनियन	=	अनु	(आनव अत्रिय) यवन

हिब्रू बाइबिल में

आदम से नूहपर्यन्त केवल दश पीढ़ियाँ कथित है, जिसमें सबकी आयु ८०० से १००० वर्ष तक थी—

	पुरुष	आयु	पुत्रजन्म के समय आयु—(अन्तर)
१.	आदम (आत्मभू)	९३० वर्ष	१३० वर्ष
२.	सेथ	९१२ ,,	१०५ ,,
३.	एनोस	९०५ ,,	९० ,,
४.	केनान	९१०	७० ,,
५.	महाललील	८९५	६५ ,,
६.	जारड	९६२	१६२ ,,
७.	एनोथ	३६५	६५ ,,
८.	मेथुसेबाह	९६९	८५ ,,
९.	लेमेच	७७७	१८२ ,,
१०.	नूह (मनु)	९५०	५०० ,,
	योग		१४५४

१. ए डिकशनरी आफ कम्पेयरेटिव रिलीजन, पृ० ४ ले० एस० एफ० ब्रेण्डन

२. मनुस्मृति १।७१

अतः आदम और नूह में केवल १४५४+४५०=१९०४ वर्ष का (दो सहस्रवर्ष) अन्तर बताया गया है।

उपर्युक्त बाइबिलविवरण में हमें आयुसम्बन्धी वर्णन सत्य प्रतीत होना है, परन्तु पीढ़ियों का वर्णन अपूर्ण है, क्योंकि पुराणों में स्वायम्भुवमनु से वैवस्वतमनु-पर्यन्त लगभग ४५ पीढ़ियों का उल्लेख है, जो यह भी अपूर्ण प्रतीत होता है, जबकि मानवयुगगणना से उपर्युक्त काल में ७१ पीढ़ियाँ या ७१०० वर्ष व्यतीत हुये। इस प्रकार स्वायंभुव मनु आज से २२००० वर्ष पूर्व और वैवस्वतमनु १५००० वर्षपूर्व हुये। इन दोनों में सात सहस्रवर्ष का अन्तर था। इसी समय से, यहीं से विश्व इतिहास प्रारम्भ होता है।

युगमानविवेक

युग—मूल में 'युग' शब्द अहोरात्ररूपी 'युग्म' (जोड़े) का वाचक था, था, यह शब्द 'युजिर्' (योगे) धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न हुआ है।[1] ऋग्वेद (१।१६४।११) में ही दिन-रात को 'मिथुन' जोड़ा) कहा गया है।[2] अतः मूलार्थ में 'युग' शब्द दिनरात के जोड़े या मिथुन के अर्थ में ही था। परन्तु वेद में ही में 'पञ्चशारदीय' (पंचसंवत्सरात्मक युग), 'मानुषयुग' और 'दिव्य' या 'दैव्ययुगों' को उल्लेख है। ऐतिहासिककालगणना की दृष्टि से इन युगों का विशेष महत्व है, अतः प्राचीन वाङ्मय में जिन ऐतिहासिक युगों का उल्लेख है, उनका संक्षेप में विवरण प्रस्तुत करेंगे। प्रमुख युग थे—

(१) पञ्चसंवत्सरात्मकयुग
(२) षष्टिसंवत्सर (बार्हस्पत्ययुग)
(३) शतवर्षीयमानुषयुग
(४) दैव्ययुग (त्रिशतषष्टिवत्सरात्मक=३६० वर्ष)
(५) सप्तर्षियुग (२७०० वर्ष)
(६) ध्रुवयुग=९००० वर्ष,
(७) चतुयुग=द्वादशवर्षसहस्रात्मक=महायुग=देवयुग।

पंचसंवत्सरात्मयुग

वेद और इतिहासपुराणों में युग के पाँच वर्षों के पृथक्-पृथक् नाम हैं—संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर।[3] वायुपुराण, सूर्यप्रज्ञप्ति, कौटल्य अर्थशास्त्र में इस पंचसंवत्सरात्मक युग का उल्लेख है। वायुपुराण के अनुसार पंच-

---

१. सायण ने ऋग्वेद (५।७३।३) की पंक्ति 'नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः में 'युग' शब्द या अर्थ 'दिनरात' ही किया है।

२. "आपुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः।"

३. द्रष्टव्य ऋग्वेद (७।१०३।७), शु०यजु० (३०।१६), ब्रह्माण्ड पु० (१।२),

वर्षात्मकयुग का प्रवर्तक चित्रभानु (विवस्वान्=सूर्य=सविता=आदित्य) था।[1] प्रत्येक पाँच वर्ष में सूर्य चन्द्रमा और नक्षत्रादि अपने-अपने स्थल पर निवर्तमान होते हैं। लगध ने पंचवत्सरात्मकयुग को प्रजापति कहा है—

पंचसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः ।।[2]

षष्टिसंवत्सर या बार्हस्पत्ययुग

पूर्वकथित पंचसंवत्सरात्मक युगों के १२ पंचक मिलकर एक षष्टिसंवत्सर या बार्हस्पत्ययुग बनता था। वैदिकग्रंथों में इस बार्हस्पत्ययुग का उल्लेख मिलता है यथा तैत्तिरीय आरण्यक के प्रारम्भ में षष्टिसंवत्सर का वर्णन है। वायुपुराणादि में षष्टिसंवत्सर के विष्णु, बृहस्पति आदि द्वादश देवता निर्दिष्ट हैं और प्रत्येक वर्ष का नाम भी कथित है। अतिप्राचीनकाल में इतिहास में इस युग का उपयोग होता था, यथा सिन्धुसभ्यता के असुरगण इसका प्रयोग करते थे, परन्तु अर्वाचीनतरग्रन्थों में इसका प्रयोग नहीं मिलता।

मानुषयुग—शतवर्षात्मक—

वेद और इतिहासपुराण में ऐतिहासिकतिथिगणना सर्वदा मानुषवर्षों में ही होती थी—वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराण में स्पष्टतः कहा गया है कि 'दिव्य संवत्सर' की गणना मानुषवर्षों के अनुसार ही होती थी—

दिव्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेणप्रकीर्तितः।[3]
अत्र संवसराःसृष्टामानुषेण प्रमाणतः ।।[4]

हम पहिले बता चुके हैं कि 'दिव्य' शब्द 'सौर' का पर्यायवाची है, इसी से महान् भ्रम हुआ और व्यर्थ में युगों में ३६० वर्ष का गुणा किया जाने लगा। मनुस्मृति और महाभारत में जहाँ चतुर्युगों को १२००० वर्ष का बताया गया है, वे मानुषवर्ष ही हैं, यही आगे प्रमाणित किया जाएगा। कुछ वैदिक उद्धरणों के आधार पर उत्तरकाल में 'दिव्य' शब्द के अर्थ में भ्रम उत्पन्न हुआ, जिससे पुराणकारों ने पुराणों के युगसम्बन्धी पाठों में पूर्णत. परिवर्तन कर दिया, जिससे 'इतिहास' इतिहास न रहकर कल्पनालोक की वस्तु बन गया, इन भ्रामक कल्पनाओं से ही भारतीय इतिहास पूर्णतः कलुषित, भ्रष्ट, अस्पष्ट एवं अज्ञेयतुल्य हो गया।

इस भ्रम का मूल तैत्तिरीयसंहिता के एक वाक्य से उत्पन्न हुआ—"एकं वा

---

१. श्रवणन्तं श्रविष्ठादि युगं स्यात् पंचवार्षिकम् (वायु० ५३।१।१६),
२. वेदांगज्योतिष—प्रथम श्लोक।
३. ब्रह्माण्ड (१।२।६), वही (१।२।३०),
४. सप्तर्षीणां युगं ह्येतद्दिव्यया संख्या स्मृतम्।
तेभ्यः प्रवर्तते कालो दिव्यः सप्तर्षिभिस्तुतैः ।। (वायु० ११।४१९, ४२०)।

एतद्देवानामहः। यत्संवत्सरः।" प्राचीनपुराणपाठों, महाभारत[1] और मनुस्मृति[2] में इस 'दिव्य' संख्या का कोई चक्कर नहीं हैं, वहाँ युगगणना साधारण मानुषवर्षों में है। यह बहुत उत्तरकाल की बात है, जब पुराणोल्लिखित वास्तविक इतिहास को लोग प्रायः भूल गये तब कल्प, मन्वन्तरों और युगों की भ्रामक गणना प्रचलित कर दी गई। ज्योषियों के आधार पर पुराणपाठों में, परिवर्तन करके द्वादशसहस्रात्मक चतुर्युग को जो सामान्य मानुषवर्षों के थे, उनको ४३२०००० (तैंतालीस लाख बीस सहस्र) वर्षों का बना दिया। मन्वन्तर को ७१ चतुर्युगों का माना गया, जिसका समय ३० करोड़ ६७ लाख २० सहस्र वर्ष का कल्पित किया गया और १४ मन्वन्तरों का समय ४ अरब ३२ करोड़ माना गया, जबकि १४ मनुओं में अनेक मनु प्रायः समकालीन थे, वे पिता-पुत्र ही थे यथा चार सावर्णमनु परस्पर भ्राता ही थे—

सावर्णमनवस्तात पंच तांश्च निबोधमे।
परमेष्ठिसुतास्तात मेरुसावर्णतां गताः।
दक्षस्यैते दौहित्राः प्रियायास्तनया नृप ।। ब्रह्माण्ड

सोदर्यभ्राताओं में तीस करोड़ वर्षों से अधिक का अन्तर कैसे हो सकता है यह तो सामान्यबुद्धि से ही समझा जा सकता है, चौदह मनुओं का यथार्थकाल आगे निर्दिष्ट करेंगे। मनु का अर्थ है मनुष्य (बुद्धिमान् प्राणी), प्रथम स्वायम्भुवमनु से अन्तिम (चौदहवें) वैवस्वत मनुपर्यन्त ७१ मानुषयुग या पीढ़ियाँ व्यतीत हुई थीं। यह मानुष-युग ही वेद में बहुधा उल्लिखित है।[3] स्वायम्भुवमनु अथवा दक्ष प्रजापति से भारतयुद्ध (कृष्ण) पर्यन्त ३० परिवर्त (जिनमें प्रत्येक का वर्षमान ३६० था) व्यतीत हुए, इससे उत्तरकाल में यह कल्पना की गई कि वैवस्वत मन्वन्तर के २८ या ३० चतुर्युग व्यतीत होगये और माना जाने लगा कि यह वैवस्वत मन्वन्तर का अट्ठाईसवाँ कलियुग चल रहा है। परन्तु पुराणों एवं महाभारतादि के प्रामाणिक वचनों पर कोई ध्यान नहीं दिया, जहाँ बारम्बार कहा गया है कि युगगणना सर्वत्र मानुषवर्षों में की गई है—

सूर्यसिद्धान्त

सुरासुराणान्योऽन्यमहोरात्रविपर्ययात्।
तत्षष्टिषड्गुणर्दिव्यं वर्षमासुरमेव च ।। (१।७) सू० सि०
तेषां द्वादशाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुष्टयम्।
अत्र संवत्सराः सृष्टा मानुषेण प्रमाणतः।। (ब्रह्मांडपु० १।२९-३०)

---

१. चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां कृतं युगम्।
तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेतायां मनुजाधिप।
द्विसहस्रं द्वापरे शतं तिष्ठति सम्प्रति ।। (भीष्मपर्व)

२. मनुस्मृति (१।६-९)

३. तदूचिषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत् (ऋ० १।१०३।४),
विश्वे ये मानुषा युगाः पान्ति मर्त्यंरिषः (ऋ० ५।५२।४)

और भी स्पष्ट वायुपुराण में कहा गया है कि ये द्वादशसहस्र केवल मानुषवर्ष ही हैं—

एवं द्वादशसाहस्रं पुराणं कवयो विदुः ।
यथा वेदश्चतुष्पादश्चतुष्पादं यथा युगम् ।
चतुष्पादं पुराणं तु ब्रह्मणा विहितं पुरा ।।

जब वायुपुराण में १२ सहस्रश्लोक और ऋग्वेद में द्वादश सहस्र ऋचायें[1] हैं और युगों (चतुर्युग) में इतने ही वर्ष हैं तब यह कल्पना कहाँ ठहरती है कि चतुर्युग में ४३ लाख २० सहस्रवर्ष हैं। अतः इस गपोड़े में कोई भी मनुष्य (बुद्धिमान्) विश्वास नहीं कर सकता कि एक चतुर्युग में ४३ लाख २० हजार वर्ष होते थे।

चतुर्युगपद्धति का प्राचीनतम उल्लेख मनुस्मृति में है, इसमें स्पष्टतः ही वर्षगणना मानुषसौरवर्षों में है, वहाँ द्वादशवर्षसहस्रात्मकचतुर्युग (महायुग) को केवल 'देवयुग'[2] कहा गया है। टीकाकारादि ने पुनः इस 'देववर्ष' शब्द के आधार पर भ्रम उत्पन्न किया। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध ज्योतिविद्वान् स्वर्गीय बालकृष्ण दीक्षित का मत सर्वथा भ्रामक है।[3] इस सम्बन्ध में दीक्षितजी ने प्रो० ह्विटने का जो मत उद्धृत किया है, वह पूर्णत सत्य है—"ह्विटने कहते हैं कि इन १२००० वर्षों को देववर्ष मानने की कल्पना मनु की नहीं है," इसकी उत्पत्ति बहुत दिनों बाद हुई।"[4] सम्भवत यह कल्पना गुप्तकाल या अधिक-से-अधिक वराहमिहिर या अश्वघोष के पश्चात् उत्पन्न हुई होगी। सूर्यद्धान्त में यह कल्पना है।[5] परन्तु दीक्षित जी ने अपने भ्रम को चालू रखना श्रेयकस्र समझा, उन्होंने तैत्तिरीय संहिता में 'दिव्यवर्ष' सम्बन्धी प्ररोचना को ज्योतिष और इतिहास से जोड़ा। वस्तुतः मनुस्मृति और महाभारत में यह कल्पना है ही नहीं, हाँ उत्तरकाल में पुराणों में यह कल्पना पुराणों में प्रक्षेपकारों ने पूर्णतः घुसेड़ दी।

अथर्ववेद (८।२।२१) का प्रमाण पूर्व संकेतित है कि तीन युग (द्वापर, त्रेता और कृत या ३० परिवर्त) १०८०० वर्ष के होते थे। अथर्व, मनुस्मृति और महाभारत तथा प्राचीनपुराणपाठ में 'दिव्यवर्ष सम्बन्धी कल्पना का पूर्णतः अभाव है और स्पष्टतः ही वे मानुषवर्ष हैं, अतः लोकमान्य ने इसी मत का समर्थन किया है और उनके एतत्सम्बन्धी मत से हम पूर्ण सहमत है—"In other words, Manu and Vyasa, obviously speak only of a period of 10000 or including the Sandhyas of 12000 ordinary or human (not divine) years, from the beginning of Krita to the end of Kaliage, and it is remarkable that in the

१. द्वादश बृहतीसहस्राणि एतावत्यो ह्यर्चो याः प्रजापतिसृष्टाः ।।
(श० ब्रा० १०।।४।२।२३)

२. एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते (मनु० १।७१)

३. भारतीयज्योतिष (पृ० ४९),

४. बर्जेसकृत सूर्यसिद्धान्त अनुवाद (पृ० १० पर) द्र०

५. वही (पृ० १४८)

६. वही (पृ० १४९)।

Atharvaveda we should find a period of 10000 years apparently assigned to one yuga."[1]

यह द्रष्टव्य है कि अथर्वमन्त्र (८।२।२१) में ११००० (या १०८००) वर्षों के तीन विभाग द्वेयुगे त्रीणि चत्वारि चत्वारि क्रमशः ही उल्लिखित है केवल एक युग अथवा कलियुग के १००० वर्ष या १२०० वर्ष उल्लिखित नहीं हैं कलियुगमान १२०० जोड़ने पर (१०८००+१२००)=१२००० वर्ष हुये।

अतः दिव्यवर्ष या दिव्ययुग के सम्बन्ध में यह भ्रम समाप्त हो जाना चाहिये कि वह मानुषवर्ष की अपेक्षा ३६० गुणा होते थे, परन्तु परिणाम इसके विपरीत ही है कि मानुष और दिव्यवर्ष एक ही थे, जैसा कि पं० भगवद्दत्त को भी आभास होगया था—"इस प्रकरण के सब प्रमाणों से मानुष और दिव्यसंख्या का स्वल्प-सा अन्तर दिखाई पड़ता है।[2]" हाँ, वेदोक्त 'मानुषयुग' और 'दिव्ययुग में जो अन्तर था, उसका व्याख्यान या स्पष्टीकरण आगे करते हैं।

वेद में बहुधा 'मानुषयुग का उल्लेख मिलता है, परन्तु आज, इसका स्पष्ट रहस्य किसी को ज्ञात नहीं है कि 'मानुषयुग' क्या था, इसका 'कालमान' क्या था। पाश्चात्य लेखक मिथ्याज्ञान या अज्ञानवश सर्वदा अर्थ का अनर्थ करते हैं, सो इस सम्बन्ध में उन्होंने इसी परिपाटी काअनुसरण किया। लोकमान्यतिलक ने एतत्सम्बन्धी पाश्चात्य लेखकों के मत उद्धृत किये हैं।[3] 'मानुषयुग' का अर्थ मानवायु या युग कुछ भी लिया जाय, परन्तु यह काल '१०० वर्ष' का होता था।

वेद में ही बहुधा अनेकत्र उल्लिखित है कि मनुष्य की आयु १०० वर्ष होती है—

'शतायुर्वै पुरुषः (श० ब्रा० (१३।४।१।१५),

तस्माच्छतं वर्षाणि पुरुषायुषो भवन्ति (ऐ० आ०)

अतः वेद में दीर्घतमा मामतेय[4] की आयु १००० वर्ष (एकसहस्रवर्ष) कथित है, न कि पंचसंवत्सरात्मक युग को आधार मानकर ५० वर्ष। इसकी पुष्टि इतिहास में भी होती है। देवयुग में उत्पन्न दीर्घतमा औचत्य (मामतेय) त्रेतायुग में भरतदौष्यन्ति के समय तक जीवित रहा—'दीर्घतमा मामतेयो भरतं दौष्यन्तिमभिषिषेच;[5] दीर्घतमा बृहस्पति का भतीजा था।

---

१. The Arctic Home in the Vedas (p. 350 by L. Trewle),

२. भा० बृ० इ० भाग १, पृ० १६५),

3. The Petersburg Lexicon would interpret yuga wherever, it occures in Rigveda, to mean not, 'a period of time', but 'a generation', or the retation of descent from a common stock; and it is followed by Grassman, "Proff, Max Muller translates the Verse to mean. "All those who protect the generations of men, who protced the mortals from injury, (A.H. in the Vedas p, 139, 141),

४. दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे (ऋ१।१५८।६)

५. ऐ० ब्रा० (८।२३),

अतः मन्त्र में कथित 'मानुषयुग' १०० वर्ष का होता था, जितनी कि मानवायु। इसकी पुष्टि अथर्ववेद के पूर्वोद्धृतमन्त्र से भी होती है कि १०००० (दशसहस्र) वर्षों में १०० युग या मानुषयुग थे—शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।' अर्थात् १०० मानवयुगों या १०००० (दशसहस्र) वर्षों को हम दो (द्वापर) तीन (त्रेता) और चार (कृतयुग) में बाँटे।

मनुष्यायु १०० वर्ष थी, इसी आधार पर ऋग्वेद (१।१५८।६) में दीर्घतमा को दशयुगपर्यन्त जीवित करने वाला कहा है, इसका स्पष्ट उल्लेख शांखायन आरण्यक (२।१७) में दश (मानव) युग का यही अर्थ लिखा है, यह कोई आधुनिक कल्पना नहीं है—"तत उ ह दीर्घतमा दशपुरुषायुषाणि जिजीव।" पुरुषायु १०० वर्ष होती है, अतः दीर्घतमा १००० वर्ष पर्यन्त जीवित रहा।

वेदोक्त 'मानुषयुग' स्पष्ट ज्ञात हुआ, अतः इतिहास में गणना मानुषयुग या 'मानुषवर्षों मे होती थी।

देवयुग, दैव्ययुग या देववर्ष में 'दिव्य' शब्द का अर्थ

'देव या 'दिव्य' शब्द का निर्वचन यास्काचार्य ने इस प्रकार किया है—"देवो दानाद् वा दीपनाद् द्योतनाद् वा, द्युस्थानो भवतीति वा। (नि० ७।१५), वेद में 'देव' प्रायः सूर्य या सविता को कहते हैं, यही 'दिव्य' या 'सौर' (सूर्य) है[1] अतः दिव्यवर्ष का अर्थ हुआ सौरवर्ष। इसी आधार पर वेद में दिव्य या दैव्ययुग की कल्पना की गई।[2] —क्योंकि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा ३६० दिन में करती है अतः ३६० वर्ष का ही एक दैव्ययुग (सौरयुग) माना गया—लेकिन है यह मानुषवर्षों के आधार पर ही, जैसा कि पुराण में स्पष्ट लिखा है ३६० वर्षों का संवत्सर मानुषप्रमाण के अनुसार ही है।[3] वक्ष्यमाण सप्तर्षियुग के दिव्यवर्ष भी सामान्य मानुषवर्ष थे।[4] वस्तुतः मानुषवर्ष और दिव्यवर्ष में कोई अन्तर था ही नहीं। अतः देवयुग का अर्थ था देवों कावह समय जब वे पृथ्वी पर विचरण करते थे और शासन करते थे 'देवयुग' शब्द का अन्य कोई अर्थ नहीं था।

देव एक विशिष्ट मानवजाति थी, जिसका वैदिकग्रन्थों में बहुधा उल्लेख है, इन्द्र, वरुण, यम विवस्वान् आदि ऐसे ही देवपुरुष थे, देवयुग में मनुष्य की आयु ३०० या ४०० वर्ष होती थी, जैसा कि मनुस्मृति (१।८३) में उल्लिखित है—

"अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः।
कृते त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः।"

---

१. देवस्य सवितुः प्रातः प्रसवः प्राणः (तै० ब्रा०)
२. त्वमंगिरा दैव्यं मानुषा युगाः (वाज० १२।१११),
३. त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि च।
दिव्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः॥ (ब्रह्माण्ड० १।२।१६)
४. सप्तर्षीणां युगं ह्येतद्दिव्यया संख्ययास्मृतम्। (वही)

देवों की ३०० या ३६० वर्ष आयु सामान्य थी, यह इतिहास से सिद्ध है, परन्तु विशिष्ट देवों यथा इन्द्र, वरुण, यम,[1] विवस्वान्, आदि प्रजापति-तुल्य देवों की आयु सहस्त्रवर्ष से भी अधिक थी। जो इन्द्र १०१ ब्रह्मचारी रहा, जो अपने शिष्य भरद्वाज को ४०० वर्ष की आयु प्रदान कर सकता था, उसकी अपनी स्वयं की आयु कितनी हो सकती है, इसका अनुमान लगाया जा सकता हैं। दीर्घायु पुरुषों का वर्णन पृथक् अध्याय में किया जायेगा।

देवों की आयु सामान्यत: ३०० (या ३६०) वर्ष और प्रजापति का आयु ७०० (या ७२० वर्ष) या सहस्त्राधिक होती थी, इसका प्रमाण जैमिनीय ब्राह्माण (१।३) के निम्नवचन में प्राप्त होता है—"प्रजापतिस्सहस्त्रसंवत्सरमास्त। स सप्त शतानि वर्षाणां समाप्यमेमामेव जितिमजयत्......स स्वर्गं लोकमारोहन् देवान्नब्रवीदेतानि यूयं त्रीणि शतानि वर्षाणां समापयथेति।"

देवयुग में संवत्सर दशमास या ३०० दिन का भी होता था, इसका प्रमाण वैदिकग्रन्थों के साथ यूरोपियन इतिहास में भी मिलता है। इसका उल्लेख लोकमान्य तिलक ने अपने ग्रन्थ में किया है। जैमिनीयब्राह्मण और अवेस्ता से भी इसकी पुष्टि होती है।[2]

अत: देवयुग ३०० या ३६० वर्षों का होता था और प्राय: यही सामान्य देवपुरुष की आयु थी। इतिहासपुराणों में बहुधा देवयुग का उल्लेख है—'पुरा देवयुगे राजन्नादित्यो भगवान् दिव:।' (सभापर्व ११।१)

'पुरादेवयुगे ब्रह्मन् प्रजापतिसुते शुभे।' (आदिपर्व १४।५) जैमिनीयब्राह्मण (२।९५), निरुक्त (१२।४१) और रामायण (१।९।१२) में भी देवयुग का उल्लेख है। अत: 'देवयुग' एक ऐतिहासिक युग था। देवयुग ३०० वर्ष का होता था, इसका स्पष्ट उल्लेख मत्स्यपुराण २४।३७ में है—

"अथ देवासुरयुद्धमभूद्वर्षशतत्रयम्।"

ऐसे द्वादश देवासुरसंग्राम दशयुगपर्यन्त अर्थात् ३६००. वर्षों के मध्य में हुए।[3]—(१४००० वि० पू० से १०४०० वि० पू० तक हुए)

२८ अवान्तर त्रेता=परिवर्त=पर्याय=द्वापर—प्राचीनपुराणपाठों में गणना परिवर्त, पर्याय त्रेता या द्वापर (अवान्तर नाम के ऐतिहासिक युगों में की गई है) इन्हीं को वैदिक ग्रंथों में 'देवयुग' या 'दैव्ययुग' कहा गया है। पं० भगवद्दत्त ने देवयुग,

---

१. पारसीधर्मग्रन्थ जेन्दा अवेस्ता (छन्दोवेद=अथर्ववेद) के प्रमाण से ज्ञात होता है कि वैवस्वतयम, जो इन्द्र का गुरु था, उसने १२०० वर्ष पृथ्वी पर शासन किया—"३००-३०० वर्ष करके उसने चार बार राज्य किया। इस १२०० वर्षों में पृथ्वी का आकार (जनसंख्या) पहिले से दुगुना हो गया (अवेस्ता, द्वितीय फर्गद, आर्यों का आदिदेश, पृ० ७४ पर उद्धृत)

२. द्रे० Ar. H. in the Vedas p. 158),

३. युगं वै दश (वायु० ९७।७०),

अवान्तर त्रेता (पर्याय=परिवर्त) आदि की अवधि जानने में असमर्थता व्यक्त की है—"यदि अवान्तर त्रेताओं की अवधि तथा आदियुग, देवयुग और त्रेतायुग आदि की अवधि जान ली जाए तो भारतीय इतिहास का सारा कालक्रम शीघ्र निश्चित हो सकता है।"[1]

वायुपुराण के दक्ष, द्वादश आदित्य करन्धम, मरुत्त आदिपुरुषों को आदित्रेतायुग या प्रथमपर्याय में होना बताया गया है। मान्धाता १५वें युग में हुए, जामदग्न्य राम उन्नीसवें युग में, राम[2] (दाशरथि) चौबीसवें युग में और वासुदेवकृष्ण २८वें युग में हुये। ये सभी पुरुष थोड़े अन्तर (कुछ शतियों) में उत्पन्न हुये, इनमें लाखों करोड़ों वर्षों का अन्तर किसी प्रकार उपपन्न नहीं होता, यही तथ्य प्रत्येक गम्भीर पुराण अध्येता समझ लेगा। परन्तु उनमें उतना स्वल्प समयान्तर नहीं था जैसाकि पार्जीटर मानता था।

प्रत्येक अवान्तरत्रेता (३६० मानुषवर्ष) को भ्रम से एक चतुर्युग (१२००० दिव्य वर्ष) मानकर ही पुराणगणना में भीषण त्रुटि हुई है। अतः २८ अवान्तर युगोंको चतुर्युग मान लिया गया। पर्याय=परिवर्त की अवधि एक देवयुग (दैव्ययुग) यानी ३६० वर्ष थी, यह तथ्य विविध प्रमाणों से प्रमाणित किया जायेगा। ये प्रमाण हैं—(१) व्यास परम्परा (२) नहुष से युधिष्ठिर का अन्तर (दससहस्रवर्ष) (३) तमिलसंघपरम्परा (४) मिस्रीपरम्परा (५) द्वादशवर्षसहस्रात्मक महायुग (चतुर्युग=देवयुग) (६) पारसी (ईरानी) प्रमाण (७) मैगस्थनीज उल्लिखित असित धान्वासुर (डायनोसिस) का समय और (८) मयसभ्यता की गणना।

देवयुग, परिवर्त का मान विस्मृत

३६० वर्षमितवाले युग का पुराणों में उल्लेख अवश्य है, परन्तु इसका वर्षमान विस्मृत सा हो गया, इसके कारण हम पूर्व संकेत कर चुके हैं—यथा देववर्ष की कल्पना, २८ परिवर्तों को २८ चतुर्युग मानना इत्यादि से ३६० वर्ष का युग विस्मृत हो गया। प्रकारान्तर से इसका उल्लेख अवश्य मिलता है।

त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि तु।
दिव्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः॥ (ब्रह्माण्ड० १।२।१६)

हमारा अनुमान है कि मूलपाठ में यह दिव्ययुग काउल्लेख था जिसको बाद में बदला गया। जबकि इस प्रकार के दिव्यसंवत्सर की कल्पना पुराणों में छा गई तब, यह वास्तविक युगमान विस्मृत हो गया। परन्तु हमने पुराणप्रमाणों एवं अन्य

---

१. भा० बृ० इ० भा ०१ (पृ० १५९).

२. चतुर्विंशे युगेचापि विश्वामित्रपुरस्सरः।
राज्ञो दशरथस्य पुत्रः पद्मायतेक्षणः।
लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः॥ (हरिवंश पु० २२।१।४१)

सम्बन्धित तथ्यों से इस तथ्य की खोज (पुष्टि) कर ली है कि यह युगमान ३६० वर्ष था।[1]

आधुनिकयुग में कुछ सोवियत अन्वेषकों ने कम्प्यूटरादि से हड़प्पा सिन्धुलिपि की खोज की है। इस सम्बन्ध में सोवियत अन्वेषकों ने ज्ञात किया है, "सिन्धुजनों ने ६० वर्षों के कालचक्र की, बृहस्पतिचक्र की खोज कर ली थी और इस चक्र को वे बारह वर्षों की पांच अवधियों में विभाजित करते थे। यह भी कल्पना की गई है कि हड़प्पावासी 'वर्षकाल' को 'देवताओं के एक दिन' के तुल्य मानते थे। बाद में संस्कृत साहित्य में इस मान्यता को हम अधिक विकसित रूप से देखते हैं। सिन्धुजनों ने 'बृहस्पतिचक्र' के अलावा ३६० वर्षों के एक और कालचक्र की भी कल्पना की थी।"[2] वर्ष में ३६० दिन और देवयुग में ३६० वर्ष होने के कारण, साम्यसंख्या के कारण युगमान—(३६० वर्ष) विस्मृत हो गया। भारत के समान बैबीलन का इतिहासकार बैरोसस भी इस भ्रम में पड़ गया और उनसे दिनों को वर्ष मान लिया। द्र० पूर्व पृष्ठ १०६।

तृतीययुगगणनासम्बन्धी श्लोकों का पाठपरिवर्तन

प्राचीनग्रन्थों में विशेषतः पुराणों एवं ज्योतिषग्रन्थों में कालगणनासम्बन्धी कितना परिवर्तन, परिवर्धन संस्करण, क्षेपक, अंशनिष्कासन का कार्य किया गया, इसको प्रत्येक गम्भीर पुरातत्ववेत्ता या भारतविद्याविद् सम्यक् समझ सकता है। परन्तु हम यहाँ केवल दो-चार उदाहरणों पर विचार करेंगे, जिसने इतिहासगणना को पूर्णतः अनैतिहासिक किंवा मिथ्या बना दिया।

प्रथम उदाहरण-दिव्यसंवत्सर या दिव्ययुग

वायु, ब्रह्माण्डादि प्राचीनपुराणों में एक श्लोक मिलता है—

---

१. इस युगमान की स्मृति, सिद्धान्तशिरोमणि के टीकाकार मुनीश्वर ने वेदांग ज्योतिष के रचयिता लगध के प्रमाण से इस प्रकार उद्धृत की है—

"पंचसंवत्सरैरेकं प्रोक्तं लघुयुगं बुधैः।
लघुद्वादशकेनैव षष्टिरूपं द्वितीयकम्।
तद् द्वादशमितैः प्रोक्तं तृतीयंयुगसंज्ञकम्।
युगानां षट्शती तेषां चतुष्पादी कलायुगे।"

इसमें तृतीययुग ७२० वर्ष का था, परन्तु यह वैदिक प्रजापतियुग (अहोरात्र रूपी ७२० वर्ष) का मान था, इसका आधा अर्थात् ३६० देवयुग या वास्तविक युगमान था, अतः मुनीश्वर का उद्धरण कुछ भ्रान्तिजनक है, तृतीययुग ३६० वर्ष का ही था और उसमें ६०० के स्थान पर १२०० का गुणा करने पर ही कलियुग या युगपाद का मान आता था।

२. साप्ताहिक हिन्दुस्तान (२५ अक्तूबर, १९८१) में श्री गुणाकर मुले का लेख 'सिन्धु भाषा और लिपि की पहेली'।

त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टि वर्षाणि यानि तु ।
दिव्यसंवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः ।। (ब्रह्मा०२।२८।१६)

हमारा अनुमान है कि जब सूर्यसिद्धान्तादि ज्योतिषग्रंथ लिखे जा चुके अर्थात् उनके वर्तमान संस्करण विक्रमपूर्व की तृतीयशती में बन चुके थे, तब पुराणों में काल गणनासम्बन्धीश्लोकों में पूर्ण परिवर्तन कर दिया गया।

मनुस्मृति, निरुक्त, गीता, बृहद्देवता एवं इनसे पूर्व के अथर्ववेदादि ग्रन्थों में रंचमात्र भी संकेत नहीं है कि मानुषवर्ष में ३६० वर्ष का गुणा करने से दिव्यवर्ष निकलता है। अथर्ववेद—'शतंतेऽयुतं हायनान्' (अथर्व० ८।२।२१) में गणना मानुषवर्ष में ही है, ऐसा ही लोकमान्य तिलक का मत है, मनुस्मृति में द्वादशवर्षसहस्रात्मक 'देवयुग' भी मानुषवर्षों का था, ऐसा ह्विटने आदि के साक्ष्य से हम अन्यत्र बता चुके हैं और स्वबुद्धि से भी कोई पाठक समझ सकता है कि मनुस्मृति, में 'दिव्यवर्ष' का कोई संकेत नहीं है। अब निरुक्त, गीता, बृहद्देवता का प्रसिद्ध श्लोक द्रष्टव्य है—

सहस्रयुगपर्यन्तम् अर्हब्राह्मं स राध्यते। (बृहद्दे० ८।९८)
सहस्रयुगपर्यन्तम् अहर् यद् ब्रह्मणो विदुः। (गीता ८।१७)
युगसहस्रपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदोजनाः ।। (नि०१४।४।१७)
दैविकानां युगानां तु सहस्रं परिसंख्यया।
ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावतीं रात्रिमेव च ।। (मनु०१।७२)

उपर्युक्त चारों ग्रन्थों में यह रञ्चमात्र भी संकेत नहीं है कि ब्रह्मा का एक दिन जो सहस्रयुगों के तुल्य हैं, दिव्यवर्षों में होता है, जब मनुस्मृति के अनुसार 'देवयुग' सामान्य (मानुष) १२००० वर्षों का ही था तब सहस्रयुग (देवयुग) को भी सामान्य वर्षों के ही समझना चाहिए। परन्तु यह युग कितने मानुषवर्ष का था, यह पुराणादि के वर्तमानपाठों से ज्ञात नहीं होता, लगधाचार्य ने 'तृतीययुग' नाम से इसीका संकेत किया था, इसकी आगे समीक्षा करेंगे। लगध के वक्ष्यमाण संकेत के आधार पर तथा पुराणों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से हमारा अनुमान ही नहीं दृढ़मत है कि पुराणों में व्यास परम्परा के सम्बंध में जिन २८ युगों का परिवर्तों का वर्णन किया है, उनमें प्रत्येक परिवर्त (युग) का मान ३६० वर्ष (मानुषवर्ष) ही था। निश्चय ही प्राचीनपुराणपाठों में इस युगमान का उल्लेख होना चाहिए। हमारा मत है कि जिस प्रकार वर्ष में ३६० दिन होते थे, उसी प्रकार एक लघुदेवयुग या दिव्ययुग में ३६० मानुषवर्ष होते थे, जैसा कि सोवियत इतिहासविदों ने सिन्धुसभ्यता के अवशेषों से षष्टिवर्षात्मक बार्हस्पत्ययुग और ३६० वर्षात्मकयुग की खोज की है। अतः 'दिव्यसंवत्सर' सम्बन्धी पुराणपाठ काल्पनिक एवं मिथ्या है, एतत्सम्बन्धी उपर्युक्त श्लोक का पाठ इस प्रकार होना चाहिए—

त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि तु।
दिव्यंयुगमेतद् मानुषेण प्रकीर्तितम् ।।

उपर्युक्त समीक्षा के अनन्तर हम अधिक प्रामाणिक लगधाचार्य के निम्न श्लोक

का पाठ जो मुनीश्वर ने उद्धृत किया है, इस प्रकार मूल में होना चाहिए, तभी 'तृतीय युग' सार्थक होगा—

तत् षण्मितैः प्रोक्तं तृतीय युगसंज्ञकम् ।
युगानां द्वादशशती तेषां चतुष्पादी कला युगे ।।

हमने लगध के 'द्वादशमितैः' का स्थान पर 'षण्मितैः' और 'षट्शती' के स्थान पर 'द्वादशशती' माना है, क्योंकि 'युगपाद' १२०० वर्ष (द्वादशशती) का होता था, न कि ६०० वर्ष का, जैसा कि आर्यभट ने भी लिखा है—'षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः ।' (कालक्रियापाद, आर्यभटीय, श्लोक १०) । आर्यभट के साक्ष्य से निश्चित है कि लगधोक्त 'तृतीययुग' ३६० वर्ष का ही होता था न कि ७२० वर्ष का, कलि के १२०० वर्ष में ३६० वर्ष का गुणा करके ही दिव्यवर्ष का मान निकाला जाता है, न कि ७२० वर्ष का । ७२० वर्ष के किसी भी युग का अन्यत्र किसी भी प्राचीनग्रंथ में किचिन्मात्र भी संकेत नहीं है अतः युगपाद ६०० वर्ष का उपपन नहीं होता, यह १२०० वर्ष का ही था । यद्यपि गणित की दृष्टि से ७२० × ६००=३६० × १२००=४३२००० तुल्य ही परिमाण है, परन्तु मुनीश्वर के वर्तमानपाठ को मानने से इतिहास में अर्थ का महान् अनर्थ हो जाता है । अतः तृतीययुग (३६० वर्ष) बार्हस्पत्ययुग (६० वर्ष) का छः गुना (षण्मित) होता था न कि द्वादशमित । अतः अज्ञान या भ्रान्तिवश मुनीश्वर के श्लोक में अनर्थकपाठपरिवर्तन किया गया है जिसका निम्न शुद्धरूप इतिहाससम्मत है—

तत् षण्मितैः प्रोक्तं तृतीयं युगसंज्ञकम् ।
युगानां द्वादशशती तेषां चतुष्पादी कला युगे ।।

अतः आर्यभट, पुराण, लगध, सिन्धुसभ्यता और वैदिकवाङ्मय—सभी के साक्ष्य से ऐतिहासिक देवयुग=परिवर्त का मान ३६० वर्ष ही सिद्ध होता है ।

बैरोसस की भ्रान्ति

पुराणों के समान बैबीलन का बैरोसस लिखता है 'जलप्रलय' के पूर्व (सुमेर में) १० राजाओं ने ४ लाख ३ हजार वर्ष राज्य किया । (विश्व की प्राचीन सभ्यतायें, भाग-१, पृ० ४३, ले० श्री रामगोपाल) ।

यह चार लाख तीन सहस्र दिन=१११९ वर्ष ४ दिन के होते हैं अतः १० राजाओं का यह राज्य सहस्राधिकवर्षमात्र था, जिनमें प्रत्येक राजा का औसत राज्यकाल एकशती से अधिक था ।

उपर्युक्त विवेचन से यह फलितार्थ निकलता है कि प्राचीन देशों—भारत, बैबीलन, आदि में ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण प्रत्येक दिन लिखा जाता था और वह न केवल मास और वर्ष बल्कि दिनों में गणना होती थी, अतः आधुनिक तथाकथित इतिहासकारों का यह आरोप पूर्णतः मिथ्या है कि प्राचीनजन इतिहास लिखना नहीं जानते थे अथवा इतिहास में उन्होंने तिथिगणना की उपेक्षा की । निम्नलिखित चार देशों के साक्ष्य से यह सिद्ध है कि वे वर्ष या मास की ही नहीं एक-एक दिन की इतिहास

में गणना करते थे।

स्वयं योरोपियन या यूनानियों के इतिहासपिता हैरोडोट्स ने लिखा है कि मिस्री पुरोहित प्रत्येक वर्ष का ऐतिहासिक वृत्तान्त बहियों में लिखते थे—"In these matters they Say they cannot be mistaken as they have always kept count of the years, and noted them in their Registers" (Herodotus, Vol. 1. p. 320)

बैबीलन में

तृतीयशतीपूर्व के इतिहासकार बैरोसस ने दैत्येन्द्र बलि असुर के मन्दिर में जलप्रलयपूर्व और पश्चात् का ऐतिहासिक विवरण सुरक्षित मिला, जहाँ से उसने अपना इतिहास ग्रन्थ लिखा—"It was from these writings deposited in the temple of Belus of Babylon, that Berosus copied the outlines of history of the antidiluvion Sovereigns of Chaldea" (History of Hindustan, its Arts and its Sciences Vol 1 London M. Decc. 1820 by T. Mourice P. 399),

बैरोसस की भ्रान्ति का कारण

जलप्रलय पूर्व आर पश्चात् का वृतान्त मूल में दिनों में लिखा हुआ था, जो बैंरोसस को मन्दिर में मिला और इतने प्राचीन वृतान्त को पढ़ने या समझने में बैरोसस को भ्रान्ति या त्रुटि होना असम्भव नहीं, इसी भ्रान्ति के कारण बैरोसस ने दिनों को वर्ष समझ कर राजाओं का राज्यकाल हजारों लाखों वर्ष का लिखा, जो पूर्णतः असम्भव है। हमने पुराणसाक्ष्य के आधार पर बैरोसस की त्रुटि सुधार दी है और बैबीलन राजाओं का यथातथ्य राज्यकाल निकाल लिया है।

यहूदी साहित्य—बाइबिल में गणना दिनों में—

भारत और प्राचीन चाल्डिया के समान उनके अनुकरण पर प्राचीन यहूदियों ने भी ऐतिहासिक वृत्तान्त दिन-प्रतिदिन सुरक्षित रखने की प्रथा थी, इससे उनकी सूक्ष्म ऐतिहासिक बुद्धि का पता चलता है। बाइबिल में मनु (नूह) और जलप्रलयसम्बन्धी वर्णन द्रष्टव्य है, जिसमें एक-एक दिन का विवरण लिखा गया है—(1) For yet seven days and I will cause it to rain upon the earth forty days and forty nights. (2) In the six hundredth year of Noah's life the second month, the seventeenth day of the month,...। (3) And the Flood was forty days upon the earth (4) And there to rested in the seventh month on the seventeenth day of the month, upon the mountain of Arrarat (Holy Bible, p. 10, 11)।

सहस्रोंवर्षपूर्व के इतिहास में एक-एक दिन का वृत्तांत सुरक्षित रखना कितना

दुष्कर कर्म हैं, यह वर्तमान विद्वान् समझ सकते हैं।

भारतीयगणना

प्राचीन भारत में इक्ष्वाकु, मान्धाता, सगर, भरतदौष्यन्ति, दाशरथिराम से हर्षवर्धन (सप्तमशती) पर्यन्त विवरण वर्ष, मास और तिथियों (दिनों) में सुरक्षित रखा जाता था, यह तथ्य पुराणों एवं मौर्ययुग से हर्ष तक के शतशः सहस्रशः शिलालेखों से प्रमाणित है, एक दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं—(१) सिधंवसे ४०, २ वेसाख मासे राजा क्षहरातस क्षत्रपस नहपानस···। (नहपान नासिक गुहालेख)

(२) शते पञ्चषष्ट्यधिके वर्षाणां भूपतौ च बुधगुप्ते।
आषाढमासशुक्लद्वादश्यां सुरगुरोर्दिवसे ॥ (एरणस्तम्भ गुप्तलेख)

अतः प्राचीन भारतीयों पर इतिहास की उपेक्षा का आरोप मिथ्या है। हाँ, इतिहासवृत्त अनेक कारणों से पर्याप्त लुप्त हो गए, यह पृथक् बात है। यह सत्य है कि प्राचीनभारतीयजन वृत्त को आज की अपेक्षा अधिक और पूर्ण सुरक्षित रखते थे, यदि प्राचीनवृत्तान्त केवल कागज या भोजपत्र पर लिखा जाता तो हम प्राचीनराजाओं का नाम भी नहीं जान सकते थे, उन्होंने तो इतिवृत्त को सुदृढ़ पत्थरों एवं धातुपत्रों पर उत्कीर्ण करा दिया था, जिनके नष्ट होने की बहुत कम संभावना थी। इससे भी प्राचीन राजाओं और विद्वानों की इतिहाससंरक्षण के प्रति अत्यधिक चिन्ता प्रकट होती है।

व्यासपरम्परा से तृतीययुग (युगमान) (३६० संवत्सरात्मक) की पुष्टि—अतः वायुपुराण (अ०२३।११४-२२६) में विस्तार से २८ या ३० व्यासों का वर्णन है, ब्रह्माण्ड पुराण में (१।२।३५) एवं विष्णुपुराण (३।३) में व्यासों की सूची लिखित है। यहाँ पर विषयगौरव के कारण ब्रह्माण्डपुराण से व्यासों का वर्णन उद्धृत करते हैं, जिससे ज्ञात होगा कि क्रमिकरूप से प्रथम परिवर्त से अट्ठाइसवेंपरिवर्तपर्यन्त शिष्यानुशिष्यरूप में कौन-कौन से व्यास हुये—

अष्टाविंशतिकृत्वो वै वेदा व्यस्ता महर्षिभिः।

प्रथमे द्वापरे व्यस्ताः स्वयं वेदाः स्वयम्भुवा।
द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः।
तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे च बृहस्पतिः।
सविता पंचमे व्यासो मृत्युः षष्ठे स्मृतः प्रभुः।
सप्तमे च तथैवेन्द्रो वसिष्ठश्चाष्टमे स्मृतः।
सारस्वतस्तु नवमे त्रिधामा दशमे स्मृतः।
एकादशे तु त्रिवृषा सनद्वाजस्ततः परम्।
त्रयोदशे चांतरिक्षो धर्मश्चापि चतुर्दशे।
त्र्य्यारुणिः पंचदशे षोडशे तु धनंजयः।
कृतंजय ऋजीषोऽष्टादशे स्मृतः।
ऋजीषात्तु भरद्वाजो भरद्वाजात्तु गौतमः।

गौतमादुत्तमश्चैव ततो हर्यवनः स्मृतः ।
हर्यवनात्परो वेनःस्मृतो वाजश्रवास्ततः ।
अर्वाक्च वाजश्रवसः सोममुख्यायनस्ततः ।
तृणबिन्दुस्ततस्तस्मातृक्षस्तु तृणविन्दुतः ।
ऋक्षाच्च स्मृतः शक्तिः शक्तेश्चापि पराशरः ।
जातूकर्णोऽभवत्तस्मात्द्वैपायनः स्मृतः ।

पुराणों में अनेकश भ्रष्टपाठों के कारण वेदव्यासनामों में पर्याप्त विकृतियाँ हैं। इनके नाम समस्तपाठों से संतोलित करके इस प्रकार संशोधित किये गये हैं—(१) स्वयम्भू ब्रह्मा, (२) प्रजापति (कश्यप), (३) उशना (शुक्र), (४) बृहस्पति, (५) विवस्वान् (६) वैवस्वतयम, (७) इन्द्र, (८) वसिष्ठ (वासिष्ठ) (९) सारस्वत (अपान्तरतमा), (१०) त्रिधामा, (११) त्रिवृषा, (१२) भरद्वाज (सनद्वाज=सुतेजा=त्रिविष्ट), (१३) अन्तरिक्ष, (१४) धर्म=सुचक्षु=वर्णी=नारायण, (१५) त्र्य्यारुणि, (१६) धनंजय—संजय, (१७) कृतंजय (१८) ऋतंजय (ऋजीषी)=जय=तृणंजय, (१९) भरद्वाज, (२०) गौतम=वाजश्रवा, (२१) वाचस्पति+निर्यन्तर=हृयत्मि=उत्तम, (२२) वाजश्रवा=शुक्लायन, (२३) सोमशुष्मायण=सोमशुष्म—तृणविन्दु, (२४) ऋक्ष=वाल्मीकि, (२५) शक्ति, (२६) पराशरः (२७) जातूकर्ण, (२८) कृष्णद्वैपायन=पाराशर्य-व्यास।

इस व्यासपरम्परा के आधार पर २८ या ३० युगों का सम्पूर्ण और औसत कालमान निकाला जा सकता है। कृष्णद्वैपायन व्यास अन्तिम (क) थे, उनका समय ज्ञात है कि द्वापर के अन्त में, कलियुग प्रारम्भ से लगभग ३०० वर्ष पूर्व, और कलियुग का प्रारम्भ कृष्ण के स्वर्गवास के दिन से हुआ—

यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदा दिने ।
प्रतिपन्नः कलियुगस्तस्य संख्यां निबोधत ॥[1]

और २४वें व्यास ऋक्ष वाल्मीकि का अवतार त्रेताद्वापर की सन्धि में हुआ—परिवर्ते चतुर्विंशे ऋक्षो व्यासो भविष्यति।[2] इसी युग में रामावतार हुआ—

त्रेतायुगे चतुर्विंशे रावणस्तपसः क्षयात् ।
रामं दाशरथिं प्राप्य सगणः क्षयमेयिवान् ॥
संधौ तु समनुप्राप्ते त्रेतायां द्वापरस्य च ।
रामो दाशरथिर्भूत्वा भविष्यामि जगत्पतिः ॥

(शान्तिपर्व ३४८।१९)

---

१. वायु० (९९।४२८),
२. वायु० (१३।३०९),
(क) पुनस्तिष्ये च संप्राप्ते कुरवो नाम भारताः । (शान्तिपर्व. ३४९)
कृष्णेयुगे च संप्राप्ते कृष्णवर्णो भविष्यतिः । विख्यातो वसिष्ठकुलनंदनः ।

पुराणों के अनुसार वाल्मीकि (ऋक्ष) व्यास से अट्ठाइसवें व्यासपर्यन्त निम्न-लिखित व्यास हुये—

२४वां परिवर्त में	ऋक्ष=वाल्मीकि व्यास
२५ ,, ,,	शक्ति व्यास
२६ ,, ,,	पराशर ,,
२७ ,, ,,	जातूकर्ण ,,
२८ ,, ,,	हिरण्यनाभ कौसल्य
२९ ,, ,,	मरु, देवापि, कृत
३० ,, ,,	कृष्णद्वैपायन

युग और व्यास २८ या ३० भ्रान्ति ?

वर्तमान पुराणों एवं सूर्यसिद्धान्त आदि में यह मान्यता मिलती है कि वैवस्वत मन्वन्तर के २८ चतुर्युग व्यतीत हो चुके हैं और यह इस मन्वन्तर का २८वाँ कलियुग चल रहा है, पुराणों में इस समय २८ व्यासों के ही नाम मिलते हैं।

अथर्ववेद (८।२।२१) के प्रमाण से हमें ज्ञात है कि तीन युगों में ११००० वर्ष या सही १०८०० वर्ष होते थे, पुराणों एवं मनुस्मृति के अनुसार हम बहुधा बता चुके हैं कि चतुर्युग में १२००० मानुष वर्ष ही होते थे। दक्ष-कश्यपप्रजापतिद्वयी से युधिष्ठिर पर्यन्त चतुर्युग के या सही अर्थों में युगों या परिवर्तों के १०८०० वर्ष व्यतीत हुये थे। यह परिवर्त या युग या लघुदेवयुग (वैदिकदिव्ययुग) ३६० वर्ष का होता था। १०८०० वर्षों में ३० युग (३६०×३०=१०८००) ही व्यतीत हुये। अतः भारतयुद्धपर्यन्त ३० युग व्यतीत हुये और व्यास भी ३० होने चाहिए। यह हमारी अपनी निजी कल्पना नहीं है, पुराणपाठों में इस तथ्य के निश्चित संकेत हैं।

सामान्यपुराणमान्यता के अनुसार पाराशर्यव्यास २८वें और अट्ठाइसवें युग के अन्तिम व्यास थे, परन्तु यह धारणा पूर्णतः भ्रान्त एवं इतिहासविरुद्ध है। इसी प्रकार शन्तनु के पिता प्रतीप, जो युधिष्ठिर से एक युग (३६० वर्ष) पूर्व हुये, उन्हें २७वें युग में माना जाता है, परन्तु ब्रह्माण्ड और मत्स्य के कुछ पाठों में यह सत्य सुरक्षित रह गया है कि समकालिक ऐक्ष्वाक राजा मरु और देवापि (शन्तनुभ्राता) उन्तीसवें (२९वें) युग में हुये थे—

मरुस्तु योगमास्थाय कलापग्राममास्थितः।
एकोनविंशप्रयुगे क्षत्रप्रावर्तकः प्रभुः॥
(ब्रह्माण्ड २।३।६४-२१०-२११)

एतौ क्षत्रप्रणेतारौ नवविंशे चतुर्युगे।
नवविंशे युगेऽसौ वै वंशस्यादिर्भविष्यति।
देवापिपुत्रः सत्यस्तु ऐलानां भवितानृपः॥ (मत्स्य० २७२।५५-५६)

उपर्युक्त पुराणपाठ से स्पष्ट है कि ऐक्ष्वाक मरु और देवापि, शन्तनु उपर्युक्त २९वें ऐतिहासिकयुग में हुए न कि २७वें युग में। इसका स्पष्ट फलितार्थ है कि

युधिष्ठिर, कृष्ण और पाराशर्य व्यास भी ३०वें युग में हुये न कि २८वें युग में जैसी कि वर्तमान भ्रान्त धारणा है। अतः प्रजापति कश्यप से पाराशर्य व्यास तक ३० युग (३०×३६०=१०८०० वर्ष) और ३० व्यास हुये।

हमारा अनुमान है कि इतिहास में चतुर्युगपद्धति का प्रादुर्भाव भारतयुद्ध से दो युग (३६०×२=७२० वर्ष) अर्थात् ठीक ३८०० विक्रम पूर्व हुआ, इसने प्राचीन परिवर्त ऐतिहासिकयुगपद्धति को भुला दिया।

दो विस्मृत व्यास

वायुपुराण (२३।११४-२२६) में २८ व्यासों के नाम हैं, परन्तु पुराण के अन्त में २९ व्यासों के नाम हैं।[1] यहाँ पर शरद्वान् एकादश व्यास है, जब पूर्वपाठ में त्रिशिख एकादश व्यास हैं, अतः पुराणों के व्यासपरम्परापाठ में दो व्यासों के नाम छूट गये हैं, एक शरद्वान् और द्वितीय संभवतः हिरण्यनाभ कौसल्य। क्षत्रिय राजा होने के कारण संभवतः उत्तरकालीन लिपिकर्त्ताओं ने इसका नाम व्याससूची से हटा दिया हो, हिरण्यनाभ कौसल्य का समय और स्थिति पुराणों में ही अत्यन्त विवादग्रस्त है वायुपुराण के उपर्युक्त पाठ के अनुसार हिरण्यनाभ उन्नीसवें व्यास भरद्वाज का शिष्य था। ऐसा होने पर हिरण्यनाभ का समय अति प्राचीन—प्रतर्दन, विश्वामित्र, दिवोदास, ऐक्ष्वाक वसुमना आदि के समकालिक हो जाता है। इस पर आगे विचार करेंगे। हमारा अनुमान है कि २४ या ५०० उदीच्य सामवेद की शाखाओं का मूल प्रवर्तक हिरण्यनाभ कौसल्य एक व्यास था, जो अट्ठाइसवें युग (४१०० वि०पू०) में अर्थात् पाराशर्य व्यास से लगभग एक सहस्र (१०००) वर्ष पूर्व हुआ। वर्तमान पुराणपाठों में कहीं-कहीं हिरण्यनाभ को व्यासशिष्य जैमिनि के पुत्र सुत्वा के शिष्य सुकर्मा का शिष्य बना दिया है, जो पूर्णतः असम्भव और कल्पनामात्र है।

प्रथमयुगीन व्यास कश्यप

(१४००० वि० पू० से १३६४० वि० पू०)—देवासुरपिता प्रजापति कश्यप प्रथम व्यास थे, जिन्होंने एक सहस्रसूक्तों का दर्शन किया था, जिनमें ५००४९९ मन्त्र थे ऐसा आचार्य शौनक ने बृहद्देवता (३।१२९-१३०) में लिखा है। इन पञ्चलक्षाधिक वेदमन्त्रों की संख्या का विघटन होते-होते तीसवें व्यास पाराशर्य के समय वेदमन्त्रों की संख्या केवल बारह हजार रह गई, तथापि वे ऋचायें आदिम रचयिता के नाम से ही 'प्रजापतिसृष्ट' मानी जाती थीं—

"द्वादश बृहतीसहस्राण्येतावत्यो ह्यर्चो याः प्रजापतिसृष्टाः।।"[2]

प्रजापति का ब्रह्मा के नाम से, २१ शास्त्रों में अधिकांश, कश्यप प्रजापति

---

१ भा० वृ० इ० भा०-२, पृ० १०१;

२. श० ब्रा० (१०।४।२।२३);

रचित थे।[1]

कश्यप की सन्तान न केवल पंचजन असुर-दैत्यदानव और देव (आदित्य) बल्कि गन्धर्व, नाग और सुपर्ण तथा यक्ष राक्षसादि-दशजन थे।

प्रजापति कश्यप अतिदीर्घजीवी महापुरुष थे, जिनकी आयु अनेक सहस्रों वर्ष थी, परन्तु यह प्रथम व्यास होने से प्रथम युग अर्थात् १४००० वि० पू० से १३६४० वि०पू० तक के व्यास समझे जाने चाहिए।

द्वितीययुगीनव्यास—सत्य या वायु ?

इस द्वितीय व्यास के सम्बन्ध में वर्तमान पाठों में पर्याप्त भ्रम है। वायुपुराण में एक स्थान पर 'सत्य' संज्ञक प्रजापति को द्वितीय व्यास माना है,[2] तो अन्यत्र 'वायु' ऋषि द्वितीय व्यास प्रतीत होते हैं। सामग्री के अभाव में अन्तिम निर्णय कठिन है। यदि 'वायु' ऋषि द्वितीय व्यास थे, तो इनका समयपुरूरवा ऐल के समय (१३६४० वि० पू० से १३२८० वि० पू० था। यही द्वितीय युग की अवधि और तिथि थी।

उशना काव्य : तृतीययुगीन व्यास—(१३८० वि० पू० १२९२० वि० पू०)—ये वरुण आदित्य के पौत्र और भृगु ऋषि के पुत्र थे, जो असुरों के प्रसिद्ध पुरोहित थे—

'उशना काव्योऽसुराणां (पुरोहितः) जै० ब्रा० १।१२५)।

उशना की पुत्री देवयानी ययाति की पत्नी हुई। उशना काव्य, प्रह्लाद, विरोचन, बलि वृषपर्वा दानव आदि के गुरु और पुरोहित रहे। ये उशना भार्गवों के शासक थे—'भृगूणामधिपं चैव काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत् (वायु ७०।४) अथर्ववेद के प्रधान प्रवर्तक और ऋषि थे उशना काव्य[1] शुक्राचार्य। पारसियों का धर्मग्रन्थ जेन्दावेस्ता अथर्ववेद (छन्दोवेद) का ही विकृत रूप है। 'छंदोवेद' शब्द ही बिगड़कर 'जेन्दावेस्ता हो गया। प्राचीनकाल में जेन्दावेस्ता अतिविशाल ग्रन्थ था, इस समय इसका एक स्वल्पांश ही अवशिष्ट है। पारसीधर्मग्रन्थ में इनको कवि उसा या 'कैकोस' कहा गया है। उशना ने अनेक लौकिकशास्त्रों की रचना की, वेद के अतिरिक्त ये प्रधान थे—औशनस अर्थशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद और पुराण।

वेदपुराणशास्त्र रचने के कारण शुक्राचार्य तृतीय व्यास कहलाये। ये अत्यन्त दीर्घजीवी ऋषि थे, परन्तु इनका व्यासत्वकाल तृतीययुग में १३२८० वि० पू० से १२९२० वि० पू० तक था।

बृहस्पति—चतुर्थयुगीन व्यास—(१२२० वि० पू० से १२५६० वि० पू०) ये प्रसिद्ध देवपुरोहित थे, अंगिरा के वंश में उत्पन्न होने के कारण इनको 'आंगिरस' भी कहा जाता था—

---

१. द्र० भा० वृ० इ० भा०-१, श्री ब्रह्माजी, अध्याय पृ० १४ से २७ तक तथा इ० पु० सा० इ०, पृ० २६ से ३० तक।

२. प्रजापतिर्यदा व्यासः सत्यो नाम भविष्यति (वायु०)

'बृहस्पति आंगिरसो देवानां ब्रह्मा' (गोपथ ब्रा० ३।१)
'बृहस्पतिर्देवानां पुरोहित आसीत्' (जै० ब्रा० १।१२५)

देवराज इन्द्र बृहस्पति का प्रधान शिष्य था। चतुर्थ व्यास होने से स्पष्ट है कि बृहस्पति आयु में उशना से छोटे थे, यद्यपि दोनों समकालिक भी रहे।

वेदमन्त्रसंहिता और बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र इनकी प्रमुख रचनायें थीं, वेदसंहिता सम्पादन के कारण चतुर्थ व्यास कहलाये।

बृहस्पति का व्यासत्वकाल चतुर्थ युग में—१२९२० वि० पू० से १२५६० वि० पू० तक था। यद्यपि इनकी आयु सहस्रवर्ष से अधिक थी।

विवस्वान्—पंचमयुगीन व्यास—(१२५६० वि० पू० से १२२०० वि० पू०)—शुक्लयजुर्वेद के प्रवर्तक विवस्वान् थे, इसका कृतित्व आज भी पाठान्तर से उपलब्ध है। विवस्वान्—वैवस्वत यम, मनु, यमी और अश्विनीकुमार के पिता थे, शुक्र पुत्रत्वष्टा का पुत्र विश्वकर्मा मय, विवस्वान् का बहनोई और शिष्य था, जिसे विवस्वान् ने सूर्यसिद्धान्तपढ़ाया। विवस्वान् की आयु निश्चय ही सहस्रवर्ष के लगभग थी।

हरिवंश (१।७।३०३१) में विवस्वान् की गणना चाक्षुषमन्वन्तर के सप्तर्षियों के अन्तर्गत की है—भृगु, नभ, विवस्वान् सुधामा, विरजा, अतिनामा और सहिष्णु। स्पष्ट है कि चाक्षुषमन्वन्तर और वैवस्वतमन्वन्तर में कोई अधिक अन्तर नहीं था, केवल कुछ शताब्दियों का अन्तर था, परन्तु विवस्वान् पृथु आदि चाक्षुष राजाओं के समकालिक नहीं हो सकते। पृथु, विवस्वान् से आठ पीढ़ी पूर्व हुए, अतः विवस्वान्, चाक्षुषमन्वन्तर के अन्त और वैवस्वत मन्वन्तर से पूर्व अर्थात् जलप्लावन से कुछ शती पूर्व हुए।

षष्ठयुगीनवैवस्वतयम : षष्ठ व्यास—(१२२०० वि० पू० से ११८४० वि० पू०)—यह विवस्वान् के ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत यम का व्यासत्वकाल है यद्यपि यम का जन्म संभवत तृतीय या चतुर्थ युग में १२९२० वि० पू० में हो चुका था। जेन्दावेस्ता के अनुसार जलप्रलय से पूर्व यम ने ईरान में १२०० वर्ष राज्य किया, यम का जन्म तृतीय युग में हो गया था, जलप्रलय से पूर्व हो, तभी वह इतने दिन राज्य कर सकता था।

इन्द्र, यद्यपि यम का चाचा था, तथापि आयु में छोटा था और उसका शिष्य था। यम की आयु निश्चय ही अनेक सहस्रवर्ष थी।

अवेस्ता में यम को 'यिम खिस्त ओस्त' और उत्तरकालीन पारसीग्रन्थों में 'जमशेद' कहा गया है।

यम ने अथर्ववेद की किसी संहिता की रचना की होगी, तभी वह षष्ठ वेदव्यास माना गया। वैवस्वत यम ने एक पुराण भी रचा था। यम को ईरान का राजा असुरमहत् या वरुण ने बनाया था जो पिशदादियन (पश्चाद्देव) था।

शक्र-इन्द्र-शतक्रतु-सप्तमयुगीन व्यास—(११८४० वि० पू० से ११४८० वि० पू०) तक सप्तमयुग में इन्द्र का व्यासत्वकाल था। देवों का राजा बनने से पूर्व शतक्रतु या शक्र दीर्घकालपर्यन्त ब्राह्मण ऋषि रहा और उसने अनेक शास्त्रों की रचना की, यथा—वेदमन्त्र, आयुर्वेद, उपनिषद् ब्राह्मणग्रन्थ, मीमांसा, इतिहासपुराण, अर्थशास्त्र इत्यादि।

इन्द्र के जन्म का नाम 'शक्र' था, उसने वेदमन्त्रों के आधार पर अपना नाम बदला—'इन्द्र।' उसने १०१ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया, उसने दीर्घकाल तक पौरोहित्यकार्य किया—वैवस्वत मनु का यज्ञ कराया, (तै० सं ६।६।६)।

यद्यपि इन्द्र का जन्म पंचम या षष्ठयुग (१२५६० वि० पू० से ११८४० वि० पू० के मध्य) में हो चुका था, तथापि उसको 'व्यास' पदवी ब्राह्मणजीवन में ही मिली होगी; परन्तु उसको 'देवराजपद' सप्तमयुग (११८४० वि०पू० से ११४८० वि० पू०) में मिला जब विष्णु की सहायता से उसने दैत्येन्द्र बलि का राज्य हड़प लिया और उस को 'महेन्द्र' पद वक्ष्यमाण अष्टमयुग में मिला।

वासिष्ठ-वसुमान्-अष्टमयुगीन व्यास—(११४८० वि० पू० से १११२० वि० पू०) इस अष्टमयुग में वरुणपुत्र मैत्रावरुणि वसिष्ठ के पुत्र **वसुमान् ऋषि अष्टम वेदव्यास** थे। प्रायः विद्वान् भी एक ही वसिष्ठ मैत्रावरुणि को सनातन वसिष्ठ समझते हैं, परन्तु प्राचीनपुराणपाठ से यह भ्रान्ति दूर होती है कि सप्तऋषियों में वसुमान् वासिष्ठ ही अष्टमयुगीन व्यास था—

षष्ठो वसिष्ठपुत्रस्तु वसुमाँल्लोकविश्रुतः (ब्रह्माण्डपु० १।२१२८।२९)

नवमयुगीन व्यास-अपान्तरतमा सारस्वत—(१११२० वि० पू० १०७६० वि० पू०)—अपान्तरतमा ऋषि दध्यङ् आथर्वण और सरस्वती अलम्बुषा के पुत्र थे, अतः आथर्वण और सारस्वत[1] कहे जाते थे। इन्हीं को शिशु आंगिरस कवि कहा जाता है[2] जो शैशवसाम के द्रष्टा थे।

अपान्तरतमा का नाम ही सारस्वत था। इस ऐक्य को न समझकर पं० भगवद्दत्त ने लिखा—'इन २८ वेद प्रवचनों में अपान्तरतमा का नाम कहीं दिखाई नहीं देता। निश्चय ही यह वैवस्वतमनु पूर्व स्वायम्भुव अन्तर में वेदप्रवचन कर चुका था।'[3] यद्यपि पण्डितजी ने दोनों को पृथक्-पृथक् समझकर उनका पृथक-पृथक् वर्णन किया है। इस नवमयुगीन व्यास अपान्तरतमा सारस्वत का वेदप्रवचन स्वायम्भुव मन्वन्तर में नहीं वैवस्वत मन्वन्तर में वार्तघ्न देवासुरसंग्राम के पश्चात् १११२० वि पू० हुआ।[4] वृत्रवध के पश्चात् इन्द्र को 'महेन्द्र'[5] पदप्राप्ति हुई, जब विश्व (भूमण्डल) पर उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहा, बलिबन्धन और वृत्रवध की घटनाओं में न्यूनतम एक युग (३६० वर्ष) का अन्तर था। यह समय १११२० वि० पू० के निकट था।

---

१. तथङ्गिरा रागपरीतचेतः सरस्वतीं ब्रह्मसुतः सिषेवे।
सारस्वतो यत्र सुतोऽस्य जज्ञे नष्टस्य वेदस्य पुनः प्रवक्ता॥ (बुद्धचरित)

२. अध्यापयामास पितृञ्शिशुरांगिरसः कविः। (मनु० २)

३. वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग १, पृष्ठ १६१),

४. महा० शल्यपर्व (५ अ०),

५. इन्द्रो वै वृत्रमहन्त्सोऽन्यानदेवानत्यमन्यत। स महेन्द्रोऽभवत्।
(मैत्रा० सं० ४।६।८)।

सारस्वत व्यास के चार शिष्य थे—पराशर, गार्ग्य, भार्गव और आंगिरस ऋषि।

दशमयुगीन व्यास त्रिधामा—इस युग की अवधि १०७६० वि० पू० से १०४०० वि० पू० के मध्य थी।[1] अतः यही त्रिधामा का समय था। दत्तात्रेय और मार्कण्डेय इस युग के दो प्रधान पुरुष थे। यह सम्भव है कि मार्कण्डेय का ही अपर नाम त्रिधामा हो, क्योंकि यह एक गोत्रनाम था।

दशम व्यास त्रिधामा ने कौन-सी वेदशाखा बनाई और कौन-सा पुराण लिखा, यह अज्ञात है।

एकादशयुगीन व्यास : शरद्वान्=त्रिशिख या गौतम ? १०४०० वि० पू० से १००६० वि० पू० के मध्य में एकादश व्यास का कृतिकाल था। इसके ये तीनों नाम विभिन्न पुराणों में मिलते हैं। यदि शरद्वान् और गौतम या दीर्घतमा मामतेय एक ही है तो ये अंगराज बलि वैरोचन के समय में हुए जिनके अंग, वंग, कलिंग, पुण्ड्र और सुह्म पाँच वंशप्रवर्तक पुत्र दीर्घतमा द्वारा ही राजा के क्षेत्र (रानी) में उत्पन्न किये गए।

मतिनार, दुष्यन्तादि इसी युग के पुरुष थे। यदि शरद्वान् गौतम और दीर्घतमा मामतेय एक ही व्यक्ति थे तो इनकी आयु १००० (एक सहस्र) वर्ष थी।[2] ऋग्वेद प्रथम मण्डल में दीर्घतमा मामतेय के अनेक विद्वत्तापूर्ण सूक्त हैं। निश्चय ही गौतम ने किसी वेदशाखा का प्रवचन किया था, जिससे वह 'एकादश' व्यास पदवी को प्राप्त हुए।

शरद्वान् गौतम का नाम किसी-किसी पुराणपाठ की व्याससूची में से छूट गया है, यह हम पहिले ही संकेत कर चुके हैं। यह सम्भव है कि त्रिशिख और शरद्वान् गौतम पृथक्-पृथक् व्यास हो।

त्रिशिख या त्रिविष्ट—द्वादशयुगीन व्यास—१००६० वि० पू० से ९७०० वि० पू० के व्यास थे।

शततेजा या अन्तरिक्ष=त्रयोदशयुगीन व्यास—९७०० वि० पू० से ९३४० वि० पू० के मध्य त्रयोदश व्यास थे। शततेजा और अन्तरिक्ष एक ही व्यक्ति का नाम था या पृथक्-पृथक् यह निश्चयपूर्वक नहीं किया जा सकता।

नारायण या वर्णी—चतुर्दश युगीन व्यास—वि० पू० ९३४० से ८९८० वि० पू० में चतुर्दश युग था। यह इस युग के व्यास हुए नरनारायण ऋषि बदरिकाश्रम में रहते थे। इन्होंने दम्भोद्भव नाम का प्रसिद्ध राजा का विनाश किया। चाक्षुषमन्वन्तर के साध्यदेव नारायण, जिनकी देवमाता अदिति ने पूजा की थी और चतुर्दश व्यासनारायण निश्चय ही पृथक्-पृथक् युगों में होने वाले पृथक्-पृथक् दो महापुरुष थे। चाक्षुषमन्वन्तर का समय, हमने तत्प्रकरण में निर्दिष्ट किया है।

---

१. त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूवह।
नष्टे धर्मेचतुर्थश्च मार्कण्डेयपुरस्सर :॥ (वायुपुराण)

२. दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे (ऋ०) तथा "तत उह दीर्घतमा दश पुरुषायुषाणि जिजीव (शांखायन आरण्यक २।१७)

पञ्चदशयुगीन व्यास-त्र्यारुणि—पुराणगणना से मान्धाता पंचदशयुग में अर्थात् ८९८० वि० पू० से ८६२० वि० पू० के मध्य में हुये। गान्धारपति अंगार, आंगबृहद्रथ पौरव, मरुत, जनमेजय, सुधन्वा, नृग, गय और असित धान्व असुर (डायनोसिस-मैगस्थनीज) इसी युग अर्थात् मान्धाता के समकालिक राजर्षिगण थे। मैगस्थनीज के अनुसार असित धान्वासुर (डायनोसस) और सिकन्दर में ६४५१ वर्षों का अन्तर था, तदनुसार उसका समय आज से ८७६१ वर्ष पूर्व आता है, युगगणना से यह समय ८९८० वि० पू० वर्ष पूर्व था। हमारी पुराणगणना (युगगणना और मैगस्थनीज निर्दिष्टकाल में कोई २००० वर्ष का अन्तर है, मैगस्थनीज के दो अंक (६४५१ वर्ष और ६०४२ वर्ष) मिलते हैं और उसने ३०० और १२० वर्ष की (कुल ४२० वर्ष) के अराजककाल का निर्देश किया है।[1] अत: ६४५२ में ४२० जोड़ने पर ६८७१ वर्ष होते हैं, अत: मान्धाता और असित धान्वासुर का पुराणनिर्दिष्ट समय ८६२० वि० पू० ही सत्य है। इसी समय पन्द्रहवें व्यास त्र्यारुणि हुए।

पं० भगवद्दत्त ने ऐक्ष्वाक राजा त्र्यारुण (तीसवाँ) को और ऋषि व्यास (पन्द्रहवाँ) को एक मानने की चेष्टा की है।[2] परन्तु यह सम्भव नहीं, क्योंकि ऐक्ष्वाक त्र्यारुण और मान्धाता में १५ पीढ़ियों का अन्तर था, अत: व्यास त्र्यारुणि अन्य कोई ऋषि था, वह ऐक्ष्वाक त्र्यारुण नहीं हो सकता।

षोडशमयुगीन व्यास संजय—८६२० वि० पू० से ८२६० वि० पू० तक के सोलहवें युग में यह संजय व्यास था।

सप्तदशयुगीन व्यास कृतञ्जय—का कार्यकाल ८२६० वि० पू० से ७९०० वि० पू० था।

अष्टादशयुगीन व्यास ऋतञ्जय—का समय ७९०० वि० पू० से ७६४० वि० पू० था।

एकोनविंशयुगीन व्यास भरद्वाज—बृहस्पति का पुत्र भरद्वाज देवराज इन्द्र का शिष्य था। इन्द्र ने इसको औषधिबल से ४०० वर्ष की आयु प्रदान की। भरद्वाज ऋषि काशिराज, दिवोदास, प्रतर्दन और क्षत्र प्रातर्दन का पुरोहित रहा। जमदग्नि, विश्वामित्र, वसुमान् वासिष्ठ (सप्तर्षि), हैहयअर्जुन, वसुमना ऐक्ष्वाक, वैश्वामित्र, परशुराम, आदि सभी उन्नीसवें युग के महापुरुष थे, जो ७६४० वि पू० से ७२८० वि० पू० के मध्य हुये।

बीसवें युग के व्यास तृणंजय—इनका युग ७२८० वि० पू० से ६९२० वि० पू० के मध्य था।

इक्कीसवें युग के व्यास वाजश्रवा गौतम—ये कठोपनिषद् के प्रसिद्ध नायक नचिकेता के पिता थे, तैत्तिरीयसंहिता और महाभारत में भी इसका आख्यान है। वाजश्रवा व्यास का समय ६९२० वि० पू० से ६४६० वि० पू० था।

---

१. द्र. इण्डिया, एरियन, (अ० नवम),

२. भा० वृ. इ. भाग २, पृ. १००;

वाचस्पति व्यास : बाईसवें युग के व्यास—६५६० वि० पू० से ५८४० वि० पू० तक यह अवधि थी। प्रतर्दन आदि इस समय तक जीवित थे, क्योंकि शाखांयन ब्राह्मण (२६।५) के अनुसार वाचस्पति व्यास के पुत्र अलीकयु से काशिराज प्रतर्दन ने प्रश्न पूछे थे। इसी समय वसिष्ठ के वंशज स्थविर जातूकर्ण्य विद्यमान थे। वायुपुराण में वाचस्पति का अन्य नाम निर्येन्तर है।

तेईसवां व्यास : शुक्लायन—इसका युग (३६० वर्ष) ५८४० वि० पू० से ५९८० वि० पू० तक था। इसका अन्य नाम सोमशुष्म या सोमशुष्मायन है।

चौबीसवां व्यास तृणविन्दु—इसका युग ५४८० वि० पू० से ५१२० वि० पू० तक था।

यह सम्राट् तृणविन्दु वैशाली का शासक, रावण का मातामह और पुलस्त्य का श्वसुर था। तृणविन्दु ने किस वेद का प्रवचन किया, यह अज्ञात है। पुराणों में तृणबिन्दु को तेईसवाँ व्यास कहा है, परन्तु हमारी गणना से यह चौबीसवां व्यास निश्चित होता है।

पच्चीसवाँ व्यास : शक्ति—पुराणों के व्यासक्रमवर्णन में पर्याप्त त्रुटि है, उनमें ऋक्ष वाल्मीकि को शक्ति वसिष्ठ व्यास से पूर्व रखा है, परन्तु यह निश्चित ज्ञात है कि शक्तिवासिष्ठव्यास वाल्मीकिव्यास से पूर्व हुए थे, क्योंकि शक्ति कल्माषपाद सौदास ऐक्ष्वाक के पुरोहित थे जो दाशरथि राम से न्यूनतम दश पीढ़ी पूर्व हुये, अतः शक्ति व्यास का समय वाल्मीकि व्यास से पूर्व स्थिर होता है, यह पूर्णतः सम्भव है कि दोनों ऋषि दीर्घजीवी होने से समकालिक हों। शक्तिव्यास का समय ५१२० वि० पू० से ४७६० वि० पू० स्थिर होता है, दीर्घजीवी होने से वे इस काल से पूर्व भी रहे हों, यह सम्भव है।

छब्बीसवें व्यास : ऋक्ष वाल्मीकि—यद्यपि चतुर्युगी गणना से इनका समय दशरथि राम के समकालिक ५६०० वि० पू० सिद्ध होता है, तथापि दीर्घजीवी होने से इनका व्यासकाल ४७६० वि० पू० से ४४०० वि०पू० के मध्य होना चाहिए। यह भी सम्भव है कि अनेक व्यास समकालिक हों, यद्यपि छब्बीसवाँ युग ४७६० वि० पू० से प्रारम्भ होता तथापि काल की दृष्टि वाल्मीकि व्यास शक्ति के समकालिक ही हों। वाल्मीकि स्वयं रामायण में अपनी आयु सहस्रों वर्ष बताते हैं।

तैत्तिरीयप्रातिशाख्य (५।३६) और मैत्रायणी (२।६।२।३०) इत्यादि प्रतिशाख्यों में वाल्मीकिचरण सम्बन्धी नियम मिलते हैं, अतः पं० भगवद्दत्त का यह कथन सार्थक है—'तैत्तिरीय और मैत्रायणी प्रतिशाख्यों के इन नियमों से वाल्मीकिप्रोक्त वेदपाठ का सद्भाव अत्यन्त स्पष्ट है।[1] वाल्मीकि के वेदर्षि और व्यास होने से ही 'रामायण' को 'आर्षकाव्य' कहा गया है। वाल्मीकि ने रामायण, इतिहास और वेद के अतिरिक्त आयुर्वेद और धनुर्वेद का भी निर्माण किया था। वाल्मीकि के चार प्रधान

१. वैं० वा० इ० भा० १, पृ० १६४;

शिष्य थे—शालिहोत्र (अश्वचिकित्सक) अग्निवेश (चरकसंहिताकार), युवनाश्व और शरद्वान्।

सत्ताईसवाँ व्यास पराशर—शक्ति वसिष्ठ के पुत्र पराशर भी एक व्यास थे, विष्णुपुराण में इनको इस पुराण का रचियता बताया है, विष्णुपुराण का मूल निश्चय ही अतिप्राचीन है, जो नवम व्यास अपान्तरतमा तक जाता है। पराशर का समय यद्यपि कल्माषपाद सौदास आदि के समकालिक था, जो दाशरथि राम से न्यूनतम दो युग (७२० वर्ष) पूर्व हुआ, तथापि यह सम्भव है कि पराशर दीर्घजीवी होने से बहुत उत्तरकाल ४४४० वि० पू० से ४०४० वि० पू० व्यास के रूप में प्रसिद्ध हुए हो, तथा यहभी संभव है क्योंकि पराशर एक गोत्र नाम था, अतः आदिपराशर और कृष्णद्वैपायन पाराशर्य व्यास के मध्य में कोई अन्य ऋषि पराशर या पारांशर्य व्यास हुआ हो जो **सत्ताईसवाँ व्यास** था।

अट्ठाईसवाँ व्यास हिरण्यनाभ कौसल्य--४०४० वि० पू० से ३६४० वि० पू० इस क्षत्रिय ब्रह्मयोगी को, जिसने और जिसके शिष्यों ने ५०० वेदशाखाओं का प्रवचन किया हो, व्यास नहीं मानना, अज्ञान या षड्यंत्र ही कारण हो सकता है। इसका शिष्य 'कृत' संज्ञक पौरव राजा चौबीससामसंहिताओं का प्रवक्ता था। हिरण्यनाभ का समय पाराशर्य व्यास से न्यूनतम दो युग (७२० वर्ष) पूर्व था, यह राजा महायोगी, व्यास और परमर्षि था तथा इसका पुत्र 'पर' सम्राट् था।

जातूकर्ण-उन्तीसवें युग के उन्तीसवें व्यास—३६८० वि० पू० से ३३२० वि० पू० के मध्य पाराशर्य व्यास के गुरु 'व्यास' थे।

अन्तिम व्यास कृष्णद्वैपायन पाराशर्य—युगमान से इनका समय ३३२० वि० पू० से २९६० वि०पू० तक था जो इतिहास से भी सिद्ध है, इनका जन्म शान्तनु के पिता प्रतीप के राज्यकाल के अन्तिमचरण या शान्तनु के राज्यकाल में हुआ, यह समय जनमेजय परीक्षित से लगभग ३०० वर्षों के पूर्व था। पाराशर्य व्यास जनमेजय के राज्यकालपर्यन्त विद्यमान थे, यह पुराणसाक्ष्य से ज्ञात तथ्य है।[1] व्यास-परम्परा द्वारा चतुर्युगीगणनापद्धति का २८-३० परिवर्त (पर्याय) युगपद्धति से पूर्ण

१. हरि० (३।१)

शन्तनु राज्यकाल	=५० वर्ष
विचित्रवीर्य	=१२ वर्ष
भीष्मशासन	=२० ,,
पाण्डुशासन	= ५ ,,
धृतराष्ट्रशासन	=४० ,,
दुर्योधनशासन	=३६ ,,
युधिष्ठिर ,,	=३६ ,,
योग=	१९९ वर्ष

सामंजस्य स्थापित हो जाता है। क्योंकि परिवर्तयुग (व्यासयुग, वैदिक=दैवयुग) का काल ३६० वर्ष है। द्वापरयुग की अवधि २००० थी। अन्तिम व्यास कृष्णद्वैपायन कलि-प्रारम्भ से लगभग ३००वर्ष पूर्व हुआ—शन्तनु के राज्यकाल में और वाल्मीकि का जन्म द्वापर से कम से कम ४०० वर्ष पूर्व हुआ, रामराज्यकाल में वाल्मीकि ऋषि अत्यन्त वृद्ध एवं दीर्घजीवी थे। उपर्युक्त ६ व्यासों का भोगकाल इस प्रकार ३६०×६=२१६० वर्ष+२४०=२४०० वर्ष हुये, जो कि सम्पूर्ण द्वापर की अवधि है। अतः २४०० वर्ष में ६ व्यास हुये, अतः हमारा परिवर्तसम्बन्धी परिमाण और परिणाम एकदम ठीक है कि वह युग ३६० वर्ष का होता था। युगों में ३६० का गुणा करके ही दिव्यवर्ष निकाले जाते हैं, दिव्यवर्ष निकाले जाने का भ्रम भी इसी कारण हुआ, क्योंकि पुराणों में ३० युगों और ३० व्यासों का उल्लेख है, जो ३६० वर्ष के अन्तर से हुये अतः युगों की सम्पूर्ण अवधि हुई—३०×३६०=१०८०० वर्ष। ये कृत, त्रेता और द्वापर ४८००+३६००+२४००=१०८०० वर्ष की अवधि का इस परिवर्तयुगपद्धति से पूर्ण सामंजस्य है यथा अथर्वप्रमाण—"शतं तेऽयुतंहायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।' (क)

२. **नहुष से युधिष्ठिर तक का अन्तर (काल)**—नहुष से युधिष्ठिर पर्यन्त दश सहस्रवर्ष व्यतीत हुये थे, इसका एक प्रमाण महाभारत के वर्तमानपाठ में अवशिष्ट रह गया है। उद्योगपर्व (१७।१५) में स्पष्ट रूप से लिखा है कि अगस्त्य ऋषि के शाप से नहुष दशसहस्रवर्ष तक अजगरयोनि में रहा और युधिष्ठिर के दर्शन होने पर उसकी शापमुक्ति हुई—

दशवर्षसहस्राणि सर्परूपधरो महान् ।
विचरिष्यसि पूर्णेषु पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥

नहुष का पुत्र ययाति प्रजापति से दशम पीढ़ी में हुआ।[1]

वैवस्वत मनु, नहुष से पाँच पीढ़ी पूर्व, नहुष से लगभग एक सहस्रवर्षपूर्व हुए, अतः वैवस्वतमनु और युधिष्ठिर में लगभग ग्यारह सहस्रवर्ष का अन्तर था।

३. **तमिलसंघपरम्परा से परिवर्तकाल (दशसहस्रवर्ष) की पुष्टि**—तमिलसंघ परम्परा से भी उपर्युक्त कालगणना की पुष्टि होती है। प्रथम तमिलसंघ की स्थापना शिव, स्कन्द, इन्द्र और अगस्त्य के समय में हुई, पाण्ड्यनरेश कापचिन बलुति (बलि ?) के राज्यकाल में।[2] प्रथमसंघ के प्रमुख अध्यक्ष थे—अगस्त्य ऋषि, जिन्होंने तमिल के अगस्त्य (अकत्तियम्) व्याकरण की रचना की। तमिल इतिहास में तीन संघकाल, इस प्रकार माने जाते हैं—

---

१. ययातिः पूर्वजोऽस्माकं दशमो यः प्रजापतेः। (आदिपर्व ७१।१)
ये दशपुरुष थे—प्रचेता, दक्ष, कश्यप, विवस्वान्, मनु, बुध, पुरूरवा आयु, नहुष और ययाति। ये सभी दीर्घजीवी थे, इनका कालादि अग्रिम अध्यायों में विचारित होगा।

२. द्र० तमिलसंस्कृति—ले० र० शौरिराजन् (पृ० ११),

प्रथम संघकाल—अगस्त्य से प्रारम्भ— ८९ राजा==४४०० वर्ष राज्यकाल
द्वितीय संघकाल दाशरथिराम से प्रारम्भ—५९ राजा = ३७८० वर्ष ,,
तृतीय संघकाल भारतोत्तरकाल प्रारम्भ—४९ राजा = १८५० वर्ष ,,

योग १९७ राजा= १००३० वर्ष

आदिम अगस्त्य ऋषि नहुष और देवराज इन्द्र के समकालिक थे। अन्तिम तमिलसंघ की समाप्ति विक्रम सम्वत् के निकट हुई। अतः तमिलगणना में अगस्त्य का समय विक्रम से दशसहस्रवर्षों से कुछ पूर्व था। आदिम अगस्त्य अत्यन्त दीर्घजीवी ऋषि थे—सहस्राधिक वर्षों तक जीवित रहे, पुनः उनके वंशज भी अगस्त्य ही कहे जाते थे। अतः तमिलसंघगणना से भी पुराणोक्त कालगणना, विशेषतः चतुर्युग एवं परिवर्तयुगगणना की पुष्टि होती है कि वह अगस्त्य और नहुष का समय विक्रम से लगभग तेरह सहस्रवर्षपूर्व था।

४. **मिस्रीगणना से पुष्टि**—हेरोडोटस ने मिस्रीगणना में चौदहमनुओं में से किसी एक मनु का समय अपने से ११३४० वर्ष पूर्व अर्थात् अब से लगभग चौदहसहस्र वर्ष पूर्व बताया है—"The priests told Herodotus that there had been 391 generations both of Kings and High priests from Manos (मनु) to Sethos and this he calculates at 11390 years.[1]

बाइबिल के अनुसार मनु की आयु—९५० वर्ष थी,अतः उसका जन्म आज से पन्द्रह सहस्रवर्ष पूर्व हुआ—११३४०+२६००=१३९४० हैरोडोटस और सैथोज विक्रम से लगभग ६०० वर्ष पूर्व हुये, अतः मिस्री मनु का जन्म आज से १४५०० वर्ष पूर्व था। भारतीय गणना से वैवस्वतमनु, तृतीय परिवर्त में हुए, तदनुसार उनका समय (३६०× २७ परिवर्त=७९२०+५१२० भारतयुद्धकाल=१४५८० वर्ष पूर्व निश्चित होता है, अतः मिस्रीगणना से भी भारतीयगणना की पुष्टि होती है।

५. **चतुर्युगपद्धति से पुष्टि**—महाभारत (भीष्मपर्व ११।६), मनुस्मृति (१।६४।७८) एवं प्रायः सभी पुराणों में चतुर्युग कृत, त्रेता, द्वापर और कलि का मान क्रमश ४८०० वर्ष, ३६०० वर्ष, २४०० वर्ष और १२०० वर्ष गणित है'[2] इस पद्धति से भी उपर्युक्त परिवर्तयुगगणना की पुष्टि होती है। कलियुग को छोड़कर तीनों युगों का कालमान १०८०० वर्ष था: महाभारतयुद्ध समाप्त हुये लगभग ५१२० वर्ष हुये हैं, कश्यप और दक्ष प्रजापति कृतयुग के आदि में हुए, इस गणना से उनका समय १०८००+५१२०=१५९०० वर्ष या षोडशसहस्रवर्षपूर्व था।

सभी गणनाओं से मनु आदि का एक ही समय निकलता है, अतः सभी गणनायें या परम्परायें मिथ्या नहीं हो सकती, अतः अगस्त्य, नहुषादि का जो समय उपर्युक्त गणनाओं से जो हमने निश्चित किया है, वही सत्य है। इतिहास में कल्पना के लिए

१. The Ancient History of East, by Philips Smith p. 59.
२. एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते (मनु० १।७१)

कोई स्थान नहीं है।

६. **पारसीपरम्परा का प्रमाण**—भारतीय अनुकरण पर पारसी, बावल, यहूदी और यूनानीपरम्परा में चारयुगों एवं उनका काल १२००० वर्ष माना जाता था। ऐसा लेख प्रमाणों द्वारा पं० भगवद्दत्त ने लिखा है।[१] पारसीजन हमारी तरह ही १२००० वर्ष का युगचक्र मानते थे। वैवस्वत यम ने ३००-३०० करके १२०० (द्वादशशताब्दी=एककलियुगतुल्य) वर्ष राज्य किया था, यह पहिले ही अवेस्ता (फर्गद २) के आधार पर लिखा जा चुका है।[२]

७. **मैगस्थनीज का भारतीय इतिहासकालसम्बन्धी प्रमाण**—मैगस्थनीज ने प्राचीनभारतीय इतिहासकालसम्बन्धीएक विवरण प्रस्तुत किया है और डायनोसियस (दानवासुर=धान्व असितासुर) से सिकन्दरपर्यन्त १५४ राजा और ६४५१ वर्ष गणित किये हैं।[3] पं० भगवद्दत्त डायनोसिस या बेक्कस को विप्रचित्ति (प्रथम दानवेन्द्र) मानते हैं जो हिरण्यकशिपु के समकालिक एवं इन्द्र का पूर्ववर्त्ती था। परन्तु 'बेक्कस'[४] वृत्र हो सकता है, परन्तु वृत्रासुर का समय भी अत्यन्त पुरातन है, 'विप्रचित्ति' का विकार 'बेक्कस' किसी प्रकार भी नहीं बनता। असुरेन्द्र असितधान्व ही 'डायनोसिस' हो सकता है।[५] निश्चय ही डायनोसिस 'धान्व का विकार है। 'धान्व' असुर (डायनोसिस) ने देवों से बदला लेने के लिए, देवयुग के बहुत काल पश्चात् देव सन्तति (भारतीयों) पर आक्रमण किया। इसी का संकेत मैगस्थनीज ने किया है।[६] विप्रचित्ति के समय असुर भारतवर्ष में ही रहते थे, परन्तु डायनोसिस (धान्व) बाहर (पश्चिम) से आया था। अतः धान्व असित असुर ही मैगस्थनीज उल्लिखित डायनोसिस था, जिसका समय आज से लगभग १०००० (६४५१+३२७+१९८२=९७६०) वर्ष पूर्व था, जो भारतयुद्ध से १३ परिवर्त पूर्वअर्थात् पन्द्रहवेंयुग में जब भारत

---

१. द्र० भा० बृ० इ० भाग १ पृ० २१ खं २१० तथा Encyclopedia of Relegion and Ethics (Articles on ages).

२. द्र० आर्यों का आदि देश पृ० ७४-८६ पर उद्धृत।

3. From the days of Father Bacchus to Alexander the great their Kings are reckoned at 154 whose reigns extend over 6451 years and three months (Indika).

४. बेक्कस का शुद्ध संस्कृत 'वृक' भी सम्भव है, 'वृक' नाम के अनेक असुर हो चुके थे।

५. वायुपुराण (६८।८१) के अनुसार प्रह्लादपुत्र विरोचन का पुत्र शम्भु था, उसका पुत्र हुआ धनु, इसके वंशज असुर धान्व कहलाये, असित इन्हीं का कोई वंशज था।

6. ......Dionysus......coming from the regions lying to the west......He overun the whole India......He was besides, the founder of large cities. (Fragments; p. 35-36)

में मान्धाता का राज्य था। असितधान्व असुरों का आदिम राजा नहीं था, परन्तु वंश प्रवर्तक एवं राज्यप्रवर्तक था, जिस प्रकार रघुवंश का प्रवर्तक रघु। अश्वमेधयज्ञ के अवसर पर सातवें दिन आसितधान्व का उपाख्यान सुनाया जाता था। (द्र० श० ब्रा० १३।४।३)।

८. **मैक्सिको की मयसभ्यता में चतुर्युगगणना**—श्री चमनलाल ने 'द्वादशवर्ष-सहस्रात्मक' भारतीय चतुर्युग की तुलना प्राचीन मैक्सिको की मयगणना से की है—"The following comperative table" Shows the lengths of the Indian and Mexican Ages :—

INDIAN		MAXICAN
First Age,	4800 years	4800 years
Second Age	3600 years	4010 years
Third Age	2400 years	4801 years
Fourth Age	1200 years	5042 years
		(Total = 18653 years)

In both countries the first Age is of exactly the same duration"......(Hindu America; p. 34, by Chaman Lal). स्पष्ट है मैक्सिको का इतिहास आज से लगभग उन्नीस सहस्रवर्षपूर्व आरम्भ होता था और भारतीय और मैक्सीकनयुगगणना में प्रारम्भिक साम्य था तथा मनु का समय मैक्सिको में भी आज से चौदह सहस्र वर्ष पूर्व ही माना जाता था, उनका आदिमपूर्वज या प्रमुखपुरुष मयासुर भी लगभग उसी समय हुआ, क्योंकि मयासुर, वैवस्वत मनु के पित विवस्वान् का शिष्य और साला था।

सप्तर्षियुग

२७०० वर्षों का एक सप्तर्षियुग या संवत्सर प्राचीनपुराणपाठों में उल्लिखित है। सप्तर्षिमण्डल के सप्त तारा मघापि नक्षत्रों में १००-१०० वर्ष ठहरते हैं, इस गणना से सत्ताईस सौ वर्षों का एक युग होता था।[1]

एक अन्य मत (पुराणपाठ) के अनुसार सप्तर्षियुग ३०३० वर्षों का होता था—

त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः।
त्रिंशद्यानि तु मे मतः सप्तर्षिवत्सरः॥

वायुपुराण एवं ब्रह्माण्डपुराण के मतानुसार शान्तनुपिता कौरवराज प्रतीप के

---

१. सप्तविंशतिपर्यन्ते कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले।
सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्यायेण शतं शतम्॥
सप्तर्षीणां युग ह्येतद्दिव्ययासंख्यया स्मृतम्॥ (वायु० ९९।४१९)
द्रष्टव्य है कि यहाँ २७०० मानुषवर्षों को ही दिव्यवर्ष कहा है।

राज्यकाल से लेकर आन्ध्रसातवाहनवंश के आरम्भ होने से पूर्व तक एक सप्तर्षियुग पूर्ण हो चुका था और प्रतीप से परीक्षितपर्यन्त ३०० वर्ष हुये थे, अतः परीक्षित् से आन्ध्रपूर्वतक २४०० वर्ष पूर्ण हुये, परीक्षित् से नन्दवंश के प्रारम्भ तक १५०० वर्ष पूरे हुये थे। अतः महाभारत का युद्ध कलि के प्रारम्भ से ३६ वर्षपूर्व अर्थात् ३०८० वि० पू० हुआ—

सप्तर्षयस्तदा प्राहुः प्रतीपे राज्ञि वै शतम् ।
सप्तविंशैः शतैर्भाव्या अन्ध्राणामन्वयाः पुनः ।[1]
सप्तर्षयस्तदा प्राहुः प्रदीप्तेनाग्निना समाः ।
सप्तविंशतिर्भाव्यानामन्ध्राणान्तेऽन्वगात् पुनः ।[2]
सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले परीक्षिते शतम् ।
अन्ध्राणान्ते सचतुर्विंशे भविष्यन्ति शतं समाः ।[3]

उपर्युक्त प्रमाणों से भारतीय इतिहास की सुपुष्ट आधारशिला रखी जायेगी। ऐसा प्रतीत होता है कि पुराणों में ऐतिहासिक कालगणना सप्तर्षियुग के माध्यम से भी होती थी। पंचवर्षीययुग से सप्तर्षियुगपर्यन्त सभी इतिहास में प्रयुक्त होते थे।

उपर्युक्त गणना से प्रकट है कि दक्ष प्रजापति से एक महायुग (दैवयुग) युधिष्ठिर पर्यन्त, १०० मानुषयुग या ३ सप्तर्षियुग या १२००० (द्वादशसहस्र) वर्ष व्यतीत हुये थे और महाभारत युद्ध ३०८० वि० पू० लड़ा गया था तथा ३०४४ वि० पू० कृष्ण परमधामगमन के दिन से कलियुग प्रारम्भ हुआ।

चतुर्युगपद्धति के आविष्कार से पूर्व इतिहास में गणना शतवर्षीय मानुषयुग, ३६० वर्षीय परिवर्तयुग (या देवयुग) और २७०० वर्षीय सप्तर्षियुग में होती थी।

चतुर्युग की कृतादि संज्ञायें कब और कैसे समुद्भूत हुईं, यह रहस्य वैदिक वाङ्मय और इतिहासपुराणों से ही अनुसंधान करेंगे।[4]

कृतादिसंज्ञाकरण का रहस्य

उपर्युक्त वैदिक (प्राचीनतर) मानुषयुग और परिवर्तयुगपद्धति से बहुत काल पश्चात् चतुर्युगपद्धति भारतवर्ष में प्रचलित हुई,[5] वायुपराणादि में परिवर्तयुगपद्धति को त्रेतायुगमुखनाम, से अभिहित किया है, और इसी में ऐतिहासिक कालगणना की गई है[6]

---

१. वायु (९९।४१८),
२. मत्स्य० (२७३।३९),
३. ब्रह्माण्ड० (३।७४।२३६) ।
४. इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् । (महाभारत)
५. चत्वारि भारतेवर्षे युगानि मुनयो विदुः ।
कृतं त्रेता द्वापरं च तिष्यं चेति चतुर्युगम् । (वायु पु० २४।१);
६. तस्मादादौ तु कल्पस्य त्रेतायुगमुखे तदा (वायु ९।४६),
त्रेतायां युगमन्यत्तु कृतांशमृषिसत्तमाः ।। (वायु ८।८७),

व्यासपरम्परा के वर्णन में उपर्युक्त पुराण में इसी कालगणना का प्रयोग किया है। ब्रह्माण्डादि में त्रेता के स्थान पर 'द्वापर' युग का प्रयोग हुआ है—

द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः ।
तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे च बृहस्पतिः ।[1]

परिवर्त—पर्याय या युग को 'त्रेता' या 'द्वापर' कथन उत्तरकालीन भ्रम है युग का पूर्वनाम 'परिवर्त' ही था। यह 'युग' ३६० वर्ष पश्चात् परिवर्तन होता था, अतः इसे 'परिवर्त' कहा जाता था।

अब यह द्रष्टव्य है कि कृतादिसंज्ञायें कब और कैसे प्रचलित हुईं। वैदिक, संहिताओं में बहुधा द्यूत के प्रसंग में कृतादि संज्ञाओं का प्रयोग हुआ है—

कृताय आदिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पनमास्कन्दाय सभास्थाणुम्'
(वा० सं ३०।१८)

कृताय सभाविनं त्रेताया आदिनवदर्शम् द्वापराय बहिःसदम् कलये सभास्थाणुम्'
(तै० ब्रा० ३।४।१)

सभावी का अर्थ है द्यूतसभा में बैठनेवाला (स्थायी सदस्य), आदिनवदर्श का अर्थ है द्यूतद्रष्टा, बहिःसद का अर्थ है सभा से बाहर से द्यूत देखनेवाला और सभास्थाणु का अर्थ है द्यूतसमाप्ति पर भी द्यूतसभा में जमे रहनेवाला, इनको ही क्रमशः कृत, त्रेता, द्वापर और कलि कहा जाता था। क्योंकि कलिसंज्ञक सदस्य या अक्ष ही कलह का मूल कारण होता था, अतः युद्ध की संज्ञा भी कलि हुई। कल्पसूत्रों के समय यज्ञादि में पञ्चाक्षिकद्यूत का प्रचलन था। द्यूत के पाँच अक्षों (पाशों) की संज्ञा भी कृतादि थी, पंचम अक्ष को 'कलि' कहा जाता था।[2] कलि सदस्य और द्यूताक्ष कलि के नाम पर ही कल्यादियुगसंज्ञायें प्रथित हुईं।

राजसूययज्ञ में सूयमान राजा अक्षावाप की सहायता से द्यूतक्रीड़ा करता था। द्यूत और राजा का घनिष्ठ सम्बन्ध था और राजा ही काल (समय=युग) का कारण=निर्माता=प्रवर्तक होता है, यह सर्वमान्य सिद्धान्त था। महाभारत (शान्ति पर्व, अध्याय ६९) में राजा को युगनिर्माता या युगप्रवर्तक कहा गया है—

कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम् ।
इति ते संशयो मा भूद राजा कालस्य कारणम् ।।७९।।
दण्डनीत्यां यदा राजा सम्यक् कार्त्स्न्येन प्रवर्तते ।
तदा कृतयुगं नाम कालसृष्टं प्रवर्तते ।।८०।।
दण्डनील्यां यदा राजा त्रीनंशाननुवर्तते ।
चतुर्थमंशमुत्सृज्य तदा त्रेता प्रवर्तते ।।८७।।
अर्धं त्यक्त्वा यदा राजा नीत्यधर्ममनुवर्तते ।
ततस्तु द्वापरं नाम स कालः संप्रवर्तते ।।८९।।

---

१. ब्रह्माण्ड० (१।२।३५।११७),
२. अथ ये पञ्चः कलिः सः (तै० ब्रा० १।५।११),

दण्डनीतिं परित्यज्य यदा कार्त्स्न्येन भूमिपः।
प्रजाः क्लिश्नात्ययोगेन प्रवर्तेत तदा कलिः ॥९१॥
राजा कृतयुगस्रष्टा त्रेताया द्वापरस्य च ।
युगस्य च चतुर्थस्य राजा भवति कारणम् ॥९८॥

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि युगप्रवर्तन में राजा की नीति और धर्मव्यवस्था का प्रमुख योगदान होता था और आज भी है। प्राचीनयुगों में द्वादश आदित्य (वरुणादि) मान्धाता, जामदग्न्यराम, दाशरथि राम, युधिष्ठिरादि युगप्रवर्तक राजा थे। कलियुग में राजा शूद्रकविक्रम का शासन धर्मशासन कहा जाता था, इसलिये उसका संवत् 'कृतसंवत्' कहलाता था—जैसा कि समुद्रगुप्त ने कृष्णचरित की भूमिका में लिखा है—

धर्माय राज्यं कृतवान् तपस्विव्रतमाचरन् ।
एवं ततस्तस्य तदा साम्राज्यं धर्मशासितम् ॥[1]

अतः राजा (शासक) ही 'कृत', अथवा 'कलि'युग का प्रवर्तक होता था। भारतयुद्ध से बहुकालपूर्व यज्ञों में द्यूतक्रीड़ा का विधान था, परन्तु यह विधान कब से विहित हुआ, वह समय अज्ञात है परन्तु हमारा अनुमान है कि ऐक्ष्वाक अयोध्यापति ऋतुपर्ण के समय से यह द्यूत यज्ञों में प्रविष्ट हुआ। ऋतुपर्ण को 'दिव्याक्षहृदयज्ञ' कहा गया है और वह नैषध नल का सखा था।[2] अतः प्रतीत होता है ऋतुपर्ण और नल के समय में द्यूत यज्ञ का अनिवार्य अंग बन चुका था। दाशरथि राम का समय २४ वाँ परिवर्तयुग था, यह राजा ऋतुपर्ण राम से १४ पीढ़ी पूर्व या ४ युग पूर्व हुआ, अतः ऋतुपर्ण और नल का समय राम से डेढ़ सहस्राब्दी पूर्व अर्थात् विक्रम से ७००० वर्ष पूर्व था। संभवत इसी नल के समय से चतुर्युगीनगणना और कृतादिसंज्ञायें प्रचलित हुई हों। 'कलि' ने नल को बहुत सताया था। पुरूरवा आदि के समय कृतादिसंज्ञायें प्रचलित नहीं थीं, यद्यपि पुरूरवा को त्रेताग्नि का प्रवर्तक कहा गया है।[3]

चतुर्युग का २८ या ३० परिवर्तों से सामंजस्य—३० या २८ युगों या परिवर्तों का कालमान (३६० × ३०) = १०८०० या दशसहस्रवर्ष था। चतुर्युग का कालपरिमाण १२००० वर्ष था। मूल में चतुर्युग दशसहस्रवर्ष के ही थे, संन्ध्याकाल के २००० जोड़ने पर ही चतुर्युग के द्वादशसहस्र वर्ष हुए। अथर्ववेद में चतुर्युग को दशसहस्रवर्ष परिमाण या १०० मानुषयुगों के तुल्य बताया गया है—

शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणिचत्वारि कृण्मः।[4]

इसी को मनुस्मृति, महाभारत आदि में द्वादशवर्षसहस्रात्मक युग कहा है—

१. कृष्णचरित, (श्लोक ८, ९)
२. वायु० (८८।१७४)
३. ऐलस्त्रींस्तानकल्पयत् (वायु०)
४. अथर्व० (८।२।२१),

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम् ।
तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेतायां मनुजाधिप ।
द्विसहस्रं द्वापरे तु शतं तिष्ठति सम्प्रति ॥[1]
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ।
इतरेषु ससंध्येषु संध्यांशेषु च त्रिषु ।
एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ।
यदेतत् परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम् ।
एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥[2]

कृतयुग=४००० वर्ष, त्रेतायुग=३००० वर्ष, द्वापर=२००० वर्ष, कलि=१००० वर्ष के थे। इनमें क्रमशः संध्याश और संध्या जोड़ने पर ४८००, ३६००, २४०० और १२०० वर्ष के हो जाते थे इसी को एक महायुग या देवयुग कहा जाता था। यह देवयुग मानुषवर्षों (१२०००) का ही था, इनमें ३६० से गुणा करने की आवश्यकता नहीं थी। मनुस्मृति के समय तक यह देवयुग एक ऐतिहासिकयुग था, परन्तु जब से (बैरोसस और अश्वघोष के समय से) इसमें ३६० का गुणा किया जाने लगा, तबसे यह एक काल्पनिकयुग बन गया, जो इतिहास में सर्वथा अनुपयुक्त है। देवयुग का मूलरूप यही था—

तेषां द्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता ।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुष्टयम् ।
अत्र संवत्सराः सृष्टा मानुषेण प्रमाणतः ।[3]

आर्यभट के समय तक युगपाद तुल्य और १२०० वर्ष के माने जाते थे—

षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः ।
त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीताः ॥[4]

ध्रुवसंवत्सर—

पुराणों में ९०९० या तीन सप्तर्षियुगों के तुल्य एक ध्रुवसंवत्सर का उल्लेख है—

नवयानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि च ।
अन्यानि नवतिश्चैव ध्रुवसंवत्सरः स्मृतः ॥[5]

---

१. महाभारत भीष्मपर्व
२. मनु० (१।६।९),
३. ब्रह्माण्ड० (१।२।२९-३०),
४. आर्यभटीय कालक्रियापाद।
५. ब्र० पु० (१।२।२९-१८), पुराणों में २६००० वर्षों के युग का भी उल्लेख है
षड्विंशतिसहस्राणि वर्षाणि मानुषाणि तु ।
वर्षाणां युगं ज्ञेयम् ॥ (ब्र०पु०१।२।२९।१९),

अतः उपर्युक्त सभी युग (मानुषयुग, परिवर्तयुग, चतुर्युग, सप्तर्षियुग और ध्रुवयुग) मानुषवर्षों में ही गिने जाते थे। दिव्यवर्ष की तथाकथित गणना अनैतिहासिक हैं।

अब आगे आदियुग, आदिकाल, देवासुरयुग, चतुर्युग (कृत, त्रेता, द्वापर और कलि), मन्वन्तर एवं कल्पसंज्ञक युगमानों पर विशिष्ट विचार करेंगे, जिनका प्राचीन इतिहास में विशेष व्यवहार हुआ है।

आदियुग या आदिकाल या प्रजापतियुग

आदिम दश प्रजापतियों या विश्वसृजसंज्ञक महर्षियों से समस्त मानवप्रजा उत्पन्न हुई, उनके नाम थे—स्वायम्भुवमनु, मरीचि, भृगु, अत्रि, दक्ष, अङ्गिराः पुलह, क्रतु, वसिष्ठ और पुलस्त्य।[1] वायुपुराण (३।२-२) में निम्नलिखित २१ प्रजापतियों का उल्लेख है—भृगु, परमेष्ठी, मनु, रज, तम, धर्म, कश्यप, वसिष्ठ, दक्ष, पुलस्त्य, कर्म, रुचि, विवस्वान् क्रतु, मुनि, अंगिरा, स्वयंभू, पुलह, चुक्रोधन, मरीचि और अत्रि। इसी प्रकार रामायण (३।१४) में प्रजापतियों के नाम हैं—कर्दम, विकृत, शेष, संश्रय, बहुपुत्र, स्थाणु, मरीचि, अत्रि, क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता, पुलह, दक्ष, विवस्वान्, अरिष्टनेमि और सर्वान्तिम कश्यप।

स्वयम्भू या स्वायम्भुव मनु से दक्ष-कश्यप पर्यन्तयुग को 'प्रजापतियुग' कह सकते हैं। यही आदिकाल या आदियुग था। चरकसंहिता (३।३१) में 'आदिकाल' संज्ञा का प्रयोग है—

"आदिकाले हि अदितिसुतसमौजसः पुरुषा बभूवुरमितायुषः।"

इन प्रजापतियों के अतिरिक्त कहीं कहीं वरुण और वैवस्वत यम को भीं प्रजापति कहा गया है। निश्चय ही वरुण से महान् आसुरीप्रजा दानव, गन्धर्वादि उत्पन्न हुये, वैवस्वत यम से पितृसंज्ञक ईरानी प्रजा उत्पन्न हुई। वरुण और हिरण्यकशिपु से पूर्व के युग का नाम **'प्रजापतियुग'** या, हिरण्यकशिपु से इन्द्रबलिपर्यन्तयुग को **'पूर्वदेवयुग'** (असुरयुग) और इन्द्र से वैवस्वतमनु या नहुषभ्राता रजि के समय तक **'देवयुग'** अथवा **'पूर्वदेवयुग और 'देवयुग'** की सम्मिलित संज्ञा कृतयुग थी। इसी देवासुरयुग में, जो १० परिवर्तकाल अर्थात् ३६०० वर्षों का था, द्वादशदेवासुरसंग्राम हुये। इन सभी घटनाओं का विस्तृत उल्लेख आगे होगा। यहां पर केवल कृतयुग से पूर्व की 'युगसंज्ञाओं का स्पष्टीकरण किया जा रहा है। इसी देवासुरयुग में कृतयुग का तीन चौथाई काल (३६०० वर्ष) में सम्मिलित था। कृतयुग के चतुर्थपाद के आरम्भ या दशमपरिवर्तयुग में दत्तात्रेय और मार्कण्डेय हुये :—

त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभुह।
नष्टे धर्मे चतुर्थश्च मार्कण्डेयपुरस्सरः॥ (वायुपुराण)

दत्तात्रेय और मार्कण्डेय दोनों ही दीर्घजीवी थे, दत्तात्रेय कार्तवीर्य सहस्रबाहु

---

१. महा० शा० (२२।४४)

अर्जुन के समय तक जीवित रहे, जो उन्नीसवें परिवर्त में परशुराम के द्वारा मारा गया।[१] परशुराम, कार्तवीर्य और दत्तात्रेय तीनों ही दीर्घजीवी व्यक्ति थे, जो सहस्रोंवर्षों तक जीवित रहे। मार्कण्डेय और परशुराम तो ३०वें परिवर्त (द्वापरान्त) तक जीवित रहे, जहाँ पाण्डवों से उनकी भेंट दिखाई गई है। दशम परिवर्त में त्रिधामासंज्ञक वेदव्यास हुये, संभव है कि मार्कण्डेय का नाम ही त्रिधामा हो। जामदग्न्यराम ने सहस्रबाहु अर्जुन का वध त्रेताद्वापर की संधि में किया था।[२]

उपर्युक्त विवेचन का तात्पर्य यह है कि परिवर्तयुगगणना और चतुर्युगगणना के कारण घटनाओं का कालनिर्णय करना अत्यन्त जटिल कार्य था, परन्तु परिवर्तयुग का समय ३६० वर्ष निश्चित ज्ञात हो जाने पर घटनाक्रम को निश्चित करना अपेक्षाकृत सरल हो गया है।

अत: 'देवासुरयुग' का आरम्भ १४००० वि० पू० दक्ष-कश्यप प्रजापति के समय से हुआ, जब 'प्रजापतियुग' का अन्तिम चरण व्यतीत हो रहाथा, इसी समय 'कृतयुग' आरम्भ हुआ, जिसका अन्त मान्धाता के समय (पन्द्रहवें) परिवर्त में हुआ—

पंचमः पंचदश्यान्तु त्रेतायां संबभूवह ।
मान्धातुश्चक्रवर्तित्वे तस्थौ उतथ्यपुरस्सरः ।

इसी समय कृतयुग के अन्त में असितधान्वासुर[३] ने किसी पश्चिमी देश (रसातल)=पाताल=योरोप) से आकर भारतवर्ष पर आक्रमण किया था, जिसका मैगस्थनीज ने उल्लेख किया है। शतपथब्राह्मण (१३।४।३) में इसी असुरेन्द्र असितधान्व का प्रधान असुर सम्राट् के रूप में उल्लेख है, जिसका मैगस्थनीज ने 'डायनोसिस' नाम से वर्णन किया है। असितधान्व को जीतकर मान्धाता ने सम्पूर्ण भूमंडल पर शासन किया।[४] यह कृतयुग के अन्त की अन्तिम व सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना थी। मान्धाता

---

१. एकोनविंश्यां त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकविभुः ।
जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरःसरः । (मत्स्य० ४७।२२४)

२. त्रेताद्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्रभृतां वरः ।
असकृत्पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः ।। (महा० १।२।३)

३. असित धान्वासुर पर मान्धाता की विजय का महाभारत में दो स्थानों पर उल्लेख है—

'यश्चांगारं तु नृपतिं मरुतमसितं गयम्
अंग बृहद्रथं चैव मांधाता समरेऽजयत् ।। (शान्ति० २८।८८)
असितं च नृगं चैव मान्धाता मानवोऽजयत् ।। (द्रोण० ६२।१०)

४. असितासुरविजय (रसातलविजय) से मान्धाता का सम्पूर्ण भूमण्डल पर शासन स्थापित हो गया—द्र० गाथा—यावत्सूर्य उदयति यावच्च प्रतितिष्ठति सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते । (वायु० ८८।६८)
हर्षचरित में मान्धाता की पातालविजय का उल्लेख है—"मांधाता······ रसातलमगात् ।" (३ उच्छ्वास)

के अनन्तर के के एक नये युग—सोलहवें परिवर्त (६००० कलिपूर्व) से त्रेतायुग का प्रारम्भ हुआ। इस त्रेतायुग का परिमाण ३६०० वर्ष था।

यहाँ मूलविवेचन 'प्रजापतियुग' या आदिकाल का हो रहा था, परन्तु स्पष्टीकरण करते-करते हम 'त्रेतायुग' तक पहुँच गये। त्रेतायुग का विवेचन तो आगे होगा। यहाँ पर 'प्रजापतियुग' की कालावधि निश्चित करने का प्रयत्न करेंगे। इसका निश्चय मन्वन्तरकाल द्वारा होगा।

१४ मन्वन्तरों की अवधि—पुराणों के अध्ययन एवं अनुशीलन से हमारा यह निश्चित मत स्थिर हुआ है कि पुराणों में जिन ७ मनुओं को भविष्यकालिक कहा है, वे सभी मनु, वैवस्वत मनु से पूर्व हो चुके थे अर्थात् वैवस्वतमनु को छोड़कर सभी तेरह मनु 'प्रजापतियुग' में और वैवस्वत मनु से पूर्व हो चुके थे। इनमें से सावर्णिसंज्ञक पाँच मनु, मेरु सावर्णि, दक्ष सावर्णि, रुद्र सावर्णि, ब्रह्म सावर्णि और सावर्णि) दक्षपुत्री प्रिया और परमेष्ठी प्रजापति के पुत्र थे, जो वैवस्वत मनु से कम से कम तीन पीढ़ी पूर्व हुए थे। रुचि प्रजापति स्वायम्भुव मनु के समकालीन थे। उनके पुत्र रौच्य मनु या कर्दम प्रजापति हुये तथा भूति के पुत्र भौत्य मनु थे। ये क्रमशः त्रयोदश और चतुर्दश मनु कहे गये हैं। रुचि और उनके पुत्र कर्दम (त्रयोदश रौच्य मनु) को भविष्यकालिक कहना महान् विडम्बना एवं उत्तरकालीन प्रक्षेपकारों की महान् भ्रांति थी। अतः सूक्ष्मेक्षिका या अनुशीलन से स्वयं ज्ञात हो जायेगा कि १४ मनुओं में सभी भूतकालिक थे और उनमें अनेक परस्पर पितापुत्र अथवा सहोदर भ्राता थे,[1] यथा तृतीय मनु उत्तम का पुत्र तामस चतुर्थ मनु था। पाँच सावर्णि मनु परस्पर सहोदर भ्राता थे, यह पुराण प्रमाण से पूर्व लिखा जा चुका है, अतः अनेक मनु समकालीन थे। षष्ठ मनु चाक्षुष, तृतीय मनुउत्तम की ३६वीं पीढ़ी में हुए और सप्तम मनु वैवस्वत, चाक्षुष मनु से १२ पीढ़ी के अनन्तर हुये, सभी १३ मनु, चतुर्दश मनु वैवस्वत से पूर्व हो चुके थे, इनमें वैवस्वत मनु ही अन्तिम मनु थे। हमारे इस मत की पुष्टि मन्वन्तरों के सप्तर्षियों के वर्णन द्वारा भी होती है। सभी तथाकथित भविष्यकालिक मनुओं के सप्तर्षिगण पौलस्य, वसिष्ठ, भार्गव, आत्रेय, काश्यप, पौलह और आंगिरस हैं यथा चतुर्दश भौत्य मन्वन्तर के सप्तर्षि ये थे—

भार्गवो ह्यतिबाहुश्च शुचिरांगिरस्तथा।
युक्तश्चैव तथाऽऽत्रेयः शुक्रोवासिष्ठ एव च।
अजितः पौलहश्चैव अन्त्याः सप्तर्षयश्चते ॥ (हरिवंश १।७।८३-८४)

उपर्युक्त अतिबाहु भार्गव, शुक्र वासिष्ठादि को भविष्यकालिक मानना अपनी बुद्धि का दिवाला निकालना है। अतः स्वायम्भुव मनु का जामाता त्रयोदश रौच्य मनु (कर्दम प्रजापति) भविष्यकालिक कैसे हो सकता है, यह विचारणीय है। अतः प्रत्येक विचारवान् मनुष्य मान जायेगा कि १४ मनु भूतकालिक प्राणी थे, इनमें तथाकथित

---

१. चार मनु प्रियव्रत के वंशज थे—'स्वारोचिषश्चोत्तमोऽपि तामसो रैवतस्तथा। प्रियव्रतान्वया ह्येतेचत्वारो मनवः स्मृताः ॥ (ब्रह्माण्ड० १।२।३६।६५)

भविष्यकालिक त्रयोदश और चतुर्दश रौच्यमनु और भौत्यमनु तो षष्ठ चाक्षुषमनु से भी बहुपूर्वकाल में हो चुके थे, क्योंकि ये स्वायम्भुवमनु के समकालिक थे। अनेक मनु समकालिक थे और कुछ मनुओं का अन्तर कुछ शताब्दियों मात्र का था, अतः मन्वन्तर को ३० करोड़ ६७ लाख २० लाख सहस्रवर्ष का मानना, न तो मानव इतिहास की वस्तु है और न सौरमण्डल की सृष्टिविकास का इतिहास, यह सब भ्रमवशात् कल्पना की उड़ानमात्र है।

अब यह द्रष्टव्य एवं अन्वेष्टव्य है कि इन चौदह मनुओं की पूर्ण कालावधि का रहस्य 'मनु' शब्द एवं पुराण के निम्न वाक्यांश में है।

तच्चैकसप्ततिगुणं परिवृतंतु साधिकम्।
मनोरेतमधीकारं प्रोवाच भगवान् प्रभुः ॥ (ब्रह्माण्ड १।२।३५।१७३)

मनु का मूलार्थ था 'मनुष्य' या पुरुषपीढ़ी, प्रथममनु थे स्वायम्भुव, और अंतिम वैवस्वत मनु (मनुष्य)। आदिम और अन्तिम मनुओं के मध्य में ७१ पीढ़ियों या मनुओं का अन्तर था, इसीलिए पुराण में साधिका कहा है, इनमें एक पीढ़ी (स्वायम्भुव मनु) अधिक थी। वैदिकप्रमाण से बताया जा चुका है कि मनुष्यायु या मानुषयुग १०० वर्ष का होता था, अतः ७१ मनुपीढ़ियों या मन्वन्तरों का समय ७१०० या ७२०० वर्ष था। पुराणों में स्वायम्भुवमनु से वैवस्वतमनु तक लगभग ५० वंशजों के नाम है, अनुमानतः पुराण में न्यूनतम ३२ नाम छूट गये हैं, क्योंकि केवल प्रधानपुरुषों की गणना करना पुराणशैली थी और अतिप्राचीन नामों की विस्मृति भी स्वाभाविक ही थी। पुराणों में जबः शनैः शनैः अनेक भ्रम उत्पन्न होते गये तो यह भी एक भ्रम जुड़ गया कि ७१ युगों (महायुगों) का एक मन्वन्तर होता है, वास्तव में ये ७१ युग, मानुषयुग थे, जिनकी अवधि थी ७१०० वर्ष, अतः स्वायम्भुव मनु से वैवस्वत मनु पर्यन्त ७१ मानुषयुग या ७१०० वर्ष व्यतीत हुये।

यही 'प्रजापतियुग' की अवधि थी, परन्तु कश्यप की सन्तान देवासुरप्रजा (हिरण्यकशिपु) से नहुष तक १० परिवर्तयुगों अर्थात् ३६०० घटाने पर ३५०० वर्ष शेष रह जाते हैं अर्थात् प्रजापतियुग का पूर्वार्ध ३५०० या ३६०० वर्ष ही वास्तविक प्रजापतियुग था और कश्यप से नहुष तक ३६०० वर्ष का उत्तरार्ध 'देवासुरयुग था। देवासुरयुग का पूर्वार्ध 'असुरयुग' भी लगभग १८०० वर्ष का था और उत्तरार्ध भी 'देवयुग' १८०० वर्ष का था। प्रजापति कश्यप का समय १४००० वि० पू० था। मिस्री गणना में 'हरकुलीज' का लगभग यही समय माना था— Seventeen thousand years (from the birth of Hercules) bofore the reign of Amasis the Twelve gods wer e, they Egyptions offirm हेरोडोटस Histories p. 133). यह समय लगभग १७००० वि० पू० या आज से बीस उन्नीस सहस्रवर्षपूर्व था। इस गणना में थोड़ा बहुत अन्तर हो सकता है, परन्तु स्थूल रूप से यही ठीक है कि स्वायम्भुव मनु आज से न्यूनतम बीस सहस्र वर्ष पूर्व हुये थे। यह सम्भव है कि भविष्य की खोज इस काल को २१ या २२ सहस्रवर्षपूर्व सिद्ध कर दे, अधिक नहीं।

असुरयुग या पूर्वदेवयुग

कश्यप द्वारा दिति से असुरेन्द्रद्वयी[1] उत्पन्न हुई इनमें हिरण्याक्ष संभवत: ज्येष्ठ था और हिरण्यकशिपु कनिष्ठ भ्राता था।[2] हिरण्याक्ष का शासन सम्भवत: पाताल (योरोपादि) में था और हिरण्यकशिपु का राज्य भारतादि में था। इन दोनों के वंशजों का सम्पूर्ण भूमण्डल पर शासन था।[3] हिरण्यकशिपु के वंशजों ने बाणासुर के पिता असुरेन्द्रबलिपर्यन्त भारतवर्ष पर शासन किया। विष्णु द्वारा परास्त बलिनेतृत्व में दैत्य अपने पूर्वनिवास पाताल (जहाँ हिरण्याक्ष का शासन था) भाग गये। विष्णु का अवतार सप्तम त्रेतायुग में हुआ था,[4] और देवासुरसंग्राम दशयुगपर्यन्त (३६०० वर्ष) होते रहे।[5] इन्द्र का जन्म षष्ठयुग में हुआ था। असुरों की संज्ञा 'पूर्वदेव' थी, अत: उनके शासनकाल का पूर्वदेवयुग या 'असुरयुग' उपयुक्त नाम है। यह समय ७ युग अर्थात् २५२० वर्ष था, यद्यपि युद्ध अगले तीन परिवर्तों तक होते रहे, अर्थात् **बलि का समय (पलायनकाल) ११४८० वि० पू० और अन्तिम-युद्धकाल १०४०० वि० पू० था, इसी समय असुरयुग समाप्त हो गया। असुरयुग** १४००० वि० पू० से ११४८० वि०पू० तक रहा।

देवयुग—पण्डित भगवद्दत्त ने बिलकुल ठीक ही लिखा है "भारतवर्ष का इतिहास अपूर्ण ही रहता है, जब तक उसमें देवयुग का स्पष्ट चित्र उपस्थित न हो। भारत ही नहीं, संसार का मूल इतिहास देवयुग के वर्णन बिना अधूरा है।" (भा० बृ० इ० भाग १, पृ० २७७)।

देवराज इन्द्र से देवयुग का प्रारम्भ होता है, जो सप्तम परिवर्तयुग में हुआ, यद्यपि वरुण (द्वितीययुग), विवस्वान् (पंचमयुग) आदि भी देव थे, परन्तु इन्द्र से पूर्व मुख्यसत्ता असुरों के हाथ में थी, इन्द्र का समय (जन्मादि) वि० सं से १३८४० वि० पू० से १२००० मध्य था, अत: देवासुरयुग की सम्मिलित अवधि २१६० वर्ष (१३८०० वि० पू० तक) थी, तो शुद्धदेवयुग की अवधि १४४० वर्ष थी, देवों और असुरों का कुल राज्यकाल दशयुग अर्थात् ३६०० वर्ष था, इसमें वरुण, विवस्वान् इत्यादि

---

१. दित्यां पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति न: श्रुतम्।
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान्॥ (हरिवंश० ३।३६।३२),

२. दैत्यानां च महातेजा हिरण्याक्ष: प्रभु: कृत:।
हिरण्यकशिपुश्चैव यौवराज्येऽभिषेचित:॥ (हरि० ३।३६।१४)

३. दितिस्त्वजनयत् पुत्रान् दैत्यांस्तात यशस्विन:।
तेषामियं वसुमती पुरासीत् सवनार्णवा॥ (रामायण० ३।१४।१५)

४. बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमे युगे।
दैत्यस्त्रैलोक्याक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत्॥ (वायुपुराण)

५. युगं वै दश (वायु० ९७।७०), 'युद्धं वर्षसहस्राणि द्वात्रिंशदभवत् किल (शान्ति० ३२।१४) यदि सहस्र के स्थान पर शत पाठ हो तो युद्ध ३२०० वर्ष तक हुए।

का राज्यकाल भी सम्मिलित है, यद्यपि इन्द्र का शासन १०वें युग तक अर्थात् ११४०० वि० पू० तक रहा, परन्तु उसका अस्तित्व वैश्वामित्र अष्टक और यौवनाश्व मान्धाता तक यहां तक कि हरिश्चन्द्र तक ज्ञात होता है, अतः इन्द्र अनेक सहस्रोंवर्षों जीवित रहा, परन्तु देवयुग की समाप्ति ११४०० वि० पू० हो गई थी और प्रारम्भ १३८४० वि० पू० हुआ। प्राचीनग्रन्थों में देवयुग के उल्लेख द्रष्टव्य हैं—

एवं स देवप्रवरः पूर्वं कथितवान् कथाम्।
सनत्कुमारो भगवान् पुरा देवयुगे प्रभुः। (रामा० १।६।१२)
"तद्वैवं विद्वान् ब्राह्मणःसहस्रं देवयुगानि उपजीवति (जै० ब्रा० २।७५)
पुरा देवयुगे ब्रह्मन् प्रजापतिसुते शुभे ।। (महा० १।१४।५)
सोऽब्रवीदहमासं प्राग् गृत्सो नाम महासुरः।
पुरा देवयुगे तात भृगोस्तुल्यवया इव ।। (शान्ति० ३।१६)

देवयुग की प्रधान जातियाँ थी—असुर दैत्य, दानव, किन्नर, यक्ष, राक्षस, नाग और सुपर्ण। देवयुग के प्रधान पुरुष थे—

द्वादश आदित्य, नारद, सोम, वैनतेय गरुड़, शिव, स्कन्द, सनत्कुमार, धन्वन्तरि, अश्विनीकुमार इत्यादि। इन्द्र देवयुग का प्रधान शासक था और विष्णु ने बलि को परास्त करके **देवयुग का प्रवर्तन** किया। यह युग लगभग १५०० वर्ष तक रहा। (**देवासुरयुग** १३८४० वि० पू० से ११४०० वि० पू० तक रहा) अतः देवयुग प्राचीन इतिहास का एक महत्वपूर्ण और स्वर्णयुग था।

कृतयुग—यह पहिले बता चुके हैं कि कृतयुग युगपरिवर्त प्रारम्भ, (त्रेतायुग मुख), और देवासुर का सम्मिलित, प्रारम्भ प्राचेतस दक्ष प्रजापति से (आज से १४००० वि० पू०) हुआ। कृतयुग के ४८०० वर्षों में देवयुग के ३६०० कुल वर्ष सम्मिलित थे, देवयुग का अन्त १०२४० वि० पू० हुआ, परन्तु कृतयुगसमाप्ति ६२०० वि० पू० हुई।

कृतयुग और देवयुग में मनुष्य की आयु ४०० वर्ष होती थी।

त्रेतायुग का प्रारम्भ

३६०० वर्ष परिणामवाले त्रेतायुग का प्रारम्भ १६वें परिवर्तयुग से, ९२०० वि० पू० पुरुकुत्स-त्रसद्दस्यु के शासनकाल के समय से हुआ और अन्त ५६०० वि० पू० दाशरथिराम के समय हुआ। महाभारत, आदिपर्व (२।३) के प्रमाण[1] पर पं० भगवद्दत्त ने त्रेता द्वापरसन्धि, परशुराम द्वारा क्षत्रियविनाश (विशेषतः कार्त्तवीर्य अर्जुनवध) ५४०० वि० पू० माना है, परन्तु महाभारत का यह मत अनुपयुक्त एवं त्रुटित है। महाभारत के वंशापाठों की महान् त्रुटियाँ हैं, यह पं० भगवद्दत्त ने भी अनेकत्र माना है।[2] वायुपुराण के प्राचीनपाठों में परशुराम का अवतार (=हैहयवध)

१. त्रेताद्वापरयोःसंधौ रामः शस्त्रभृतां वरः।
असकृत्पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः।।
२. यथा द्र० भा० वृ० इ० भाग २, पृ० १४१, अध्याय अष्टाविंशति।

उन्नीसवें त्रेता[1] परिवर्त में हुआ था, यह समय ७४४० वि० पू० से ६०८० वि० पू० पर्यन्त था। अतः रामावतार और परशुराम में कमसेकम २०४० वर्षों का अन्तर था। अतः परशुरामकृत क्षत्रियवध त्रेताद्वापर की सन्धि में न होकर त्रेता के मध्यकाल में हुआ। हाँ, महाभारत में रामावतार (दाशरथि) का समय ठीक लिखा है—

सन्धौ तु समनुप्राप्ते त्रेताया द्वापरस्य च।
रामो दाशरथिर्भूत्वा भविष्यामि जगत्पतिः॥[2]

त्रेतायुग का अन्त (१० परिवर्तयुग=१६वें से २५वें पर्यन्त) ५६०० वि० पू० हुआ। २४वें परिवर्त में ऋक्ष वाल्मीकि और २५वें परिवर्त में शक्ति वासिष्ठ व्यास हुये—

"परिवर्ते चतुर्विंशे ऋक्षो व्यासो भविष्यति।"

'पंचविंशे पुनः प्राप्ते...। वासिष्ठस्तु यदा व्यासः शक्तिनाम भविष्यति।

पं० भगवद्दत्त ने त्रेतान्त या द्वापरादिकाल में पृथ्वी पर आयुर्वेदावतारकाल माना है। वहाँ पर प्रतर्दन-राम की समकालीनता, भरद्वाज, दिवोदास आदि के समय के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, वह अत्यन्त भ्रामक है, इन सबकी आलोचना यथा स्थान की जायेगी।[3] पार्जीटर त्रेता का प्रारम्भ सम्राट् सगर के समय से मानता है, वह भी भ्रामक एवं मिथ्या है।[4]

द्वापरयुग—इस युग की अवधि २४०० थी, पुराणों में इसका प्रारम्भ दाशरथि राम के परमधामगमन के दिन (५६०० वि० पू०) से माना जाता है और अन्त ३२०० वि० पू० या ३०८० वि० पू० श्रीकृष्ण वासुदेव के परधामगमन के दिन से हुआ था। श्रीकृष्ण का जन्म ३२०० वि० पू० और मृत्यु ३०८० वि० पू० हुई, उनकी आयु १२० या १२५ वर्ष थी।

---

१. एकोनविंशे त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकोऽभवत्।
जामदग्न्यस्तथाषष्ठो विश्वामित्रपुरस्सरः॥ (वायु०)

२. महाभारत शान्तिपर्व (३४८।१६),

३. द्र० भा० वृ० इ० भा० १ पृ० २६६,

४. द्र० हि० ट्रे एं० इ०

अध्याय चतुर्थ

भारतोत्तरतिथियाँ

कलियुग का प्रारम्भ

वायुपुराण में (९९।४२८) में लिखा है कि १२०० वर्षपरिमाणवाला कलियुग ठीक उसी दिन से प्रारम्भ हुआ जब श्रीकृष्ण दिवंगत हुये ।[1]

कलि का अन्त—पुराणों में स्पष्ट ही कलियुग को बारम्बार द्वादशाब्दशतात्मक (१२०० वर्ष वाला) कहा गया है—और सप्तर्षियों के मघानक्षत्र पर आने पर यह युग प्रवृत्त हुआ—

तदा प्रवृत्तश्च कलिद्वादशाब्दशतात्मक: ।[2]

कलियुग को चार लाख बत्तीस हजारवर्षपरिमाण का मानने की कल्पना निरर्थक एवं भ्रामक है, इसका सप्रमाण खण्डन पहिले ही कर चुके हैं। पुराणों में सदसदात्मक दोनों ही मत उपलब्ध है, इतिहास में कल्पना नहीं तथ्य को ग्रहण किया जाता है । अस्तु ।

कल्यन्त—कलियुग का अन्त कब हुआ, यह पुराणपाठों में ही अनुसंधेय है। वायुपुराणादि में लिखा है कि इस युग (कलियुग) के क्षीण (समाप्त) होने पर विष्णुयशा नामक पाराशर्यगोत्रीय कल्कि ब्राह्मण के रूप में विष्णु का दशम अवतार हुआ—याज्ञवल्क्यगोत्रीय कोई ब्राह्मण उनका पुरोहित था—

अस्मिन्नेव युगे क्षीणे संध्याश्लिष्टे भविष्यति ।
कल्किर्विष्णुयशा नाम पाराशर्य: प्रतापवान् ।।
दशमो भाव्यसंभूतो याज्ञवल्क्यपुरस्सर: । (वायु पु०)

हम १४ मनुओं के विषय में सप्रमाण सिद्ध कर चुके हैं कि वे सभी भूतकालिक थे, इसी प्रकार 'कल्कि' अवतार भी भूतकाल में हो चुका था। पुराणों के द्वैध (भूत एवं भविष्य) वर्णन से भी हमारे मत की पुष्टि होती है। पुराणों मे 'भाव्यसंभूत' और भविष्यति, अभवत्' जैसी क्रियाओं का दर्शन होता है।

---

१. यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदादिने ।
प्रतिपन्न: कलियुगतस्य संख्यां निबोधत ।।

२. विष्णुपुराण (४।२४।१०९), भागवत पु० (१२।२।३१),

३. संध्याश्लिष्टे भविष्यति, कलियुगेऽभवत् (वायु०)

वस्तुतः कल्कि किस राजा के राज्यकाल में हुए, इसका समुल्लेख केवल कल्किपुराण में अवशिष्ट रह गया है—तदनुसार कल्कि का जन्म प्रद्योतवंशीय राजा विशाखयूप के समय में हुआ—

विशाखयूपभूपालपालितास्तापवर्जिताः।[२]
विशाखयूपभूपालः कल्केर्निर्याणमीदृशम्। (कल्कि पु० १।२।३३)
श्रुत्वा स्वपुत्रं विषये नृपं कृत्वा गतो वनम्।[३] (कल्कि पु० ३।१६।२६)

पुराणों के अनुसार बालक (मागध) प्रद्योतवंश का तृतीय राजा विशाखयूप था, जिसने कलिसंवत् १०५० से ११०० तक पचास वर्ष राज्य किया। कल्कि का आविर्भाव कलियुग की संध्या अर्थात् १००० कलिसंवत् के पश्चात् और कलियुगान्त से कुछ वर्ष पूर्व हुआ अतः ११०० कलिसंवत् के आसपास कल्कि हुये। वस्तुतः कल्कि एक महान् चक्रवर्ती समाट् थे, जो विशाखयूप के अनन्तर भारत के सम्राट् बने, वे युगान्तकारी एवं युगप्रवर्तक महापुरुष थे।[१] कल्कि ने २५ वर्षपर्यन्त राज्य किया **'मनुष्य'** की भांति।[२]

अतः कलियुग का अन्त महान् इतिहासपुरुष कल्कि के अन्त के साथ ही हुआ। कलियुग केवल १२०० वर्षों का था।

आज तक भारतीय इतिहास की किसी भी पुस्तक में ऐतिहासिक कल्कि का नाममात्र भी उल्लिखित नहीं है, जो कृष्णतुल्य महापराक्रमी और महाबुद्धिमान् महान् शासक थे, तथा जिन्होंने म्लेच्छों एवं विधर्मियों से भारत की अपूर्व रक्षा की थी—

कल्की विष्णुयशा नाम द्विजः कालप्रचोदितः।
उत्पत्स्यते महावीर्यो महाबुद्धिपराक्रमः॥ (महा० ३।१६०।६३),
दशमो भाव्यसंभूतो याज्ञवल्क्यपुरस्सरः॥
प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृद्बली॥ (वायु०)

कलिसंवत् और महाभारतयुद्ध की तिथि

कलिसंवत् और महाभारतयुद्ध की तिथि का घनिष्ठ सम्बन्ध है,[३] यह तिथि

---

१. स धर्मविजयी राजा चक्रवर्ती भविष्यति।
संक्षेपको हि सर्वस्य युगस्य परिवर्तकः॥ (महाभारत ३।१६०।६५।६७)

२. पंचविंशोत्थितो कल्पे पंचविंशतिर्वै समाः।
विनिघ्नन्सर्वभूतानि मानुषानेव सर्वशः॥ (वायु०)

३. ततो नरक्षये वृत्ते शान्ते नृपमण्डले।
भविष्यति कलिर्नाम चतुर्थं पश्चिमं युगम्।
ततः कलियुगस्यादौ पारीक्षिज्जनमेजयः। (युगपुराण ७४-७६)
अन्तरेचैव संप्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्।
समन्तपञ्चके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः॥ (महा० १।२।६),

प्राचीनतम भारतीय इतिहासभवन (कालक्रम) की आधारशिला है। परन्तु पाश्चात्य गवेषकों के साथ भारतीय अनुसंधाता भी प्राय: कलिसंवत् की प्रमाणिकता पर निश्चल विश्वास नहीं करते और उसे अतिशंकालु दृष्टि से अवलोकन करते हैं। प्राचीन भारतीय इतिहासकार (पुराणादि), आचार्य, ज्योतिषीगण सभी सर्वसम्मति से ३०४४ वि० पू० से कलिसम्वत् का प्रारम्भ मानते थे, केवल एक अर्वाचीनतर भारतीय इतिहासकार कश्मीरक कल्हण को छोड़कर। कल्हण के भ्रम का कारण आगे बताया जायेगा।

विंसेन्ट स्मिथ, विन्टरनीत्स, कीथ विशेषत फ्लीट[1] ने इस कलिसम्वत् को केवल भारतीय ज्योतिषियों की कल्पनामात्र माना है। फ्लीट के चरणचिह्नों पर चलता हुआ, एक भारतीय लेखक प्रबोधचन्द्रसेन लिखता है —"It is thus seen that the Kali—reckoning was an astronomical fiction invented by Aryabhata[2]" सर्वप्रथम तो उपर्युक्त लेखक का यह अज्ञान, उसकी अल्पज्ञता को प्रकट करता है कि सर्वप्रथम आर्यभट ने नहीं, उनसे पूर्व महाभारतकालीन ज्योतिषी गर्गाचार्य और वेदांगज्योतिषी लगधाचार्य ने कलिसम्वत् का उल्लेख किया है—

कलिद्वापरसंधौ तु स्थितास्ते पितृदैवतम्।
मुनयो धर्मनिरताः प्रजानां पालते रताः॥
कल्पादौ भगवान् गर्गः प्रादुर्भूय महामुनिः।
ऋषिभ्यो जातकं कृत्स्नं वक्ष्यत्येवंकलिं श्रितः॥

ज्ञातव्य है कि गर्गगोत्र में ज्योतिष के अनेक महान् विद्वान् गणितज्ञ हुए थे, एक गर्गाचार्य ने श्रीकृष्ण का नामकरण, जातकादि संस्कार किये थे। भागवतपुराण (१०-१८) में गर्गाचार्य के द्वारा प्रणीत परावरज्ञान के स्रोत ज्योतिषसंहिता का उल्लेख है।[3] इस गर्गवंश के अनेक आचार्यों ने ज्योतिषग्रन्थ लिखे, अतः उनकी प्रमाणिकता स्वयं सिद्ध है। कलि के आदि में पुनर्गर्ग ने ऋषियों को जातक ज्ञान दिया। अतः कलिसम्वत् आर्यभट की कल्पना नहीं था। पुनः लगधाचार्य ने कलिसम्वत् का उल्लेख किया है। सिद्धान्तशिरोमणि की मरीचिटीका के लेखक मुनीश्वर (१५६० शकसम्वत्) ने लगध के वचन उद्धृत किये हैं उनमें कलिसम्वत् का स्पष्ट निर्देश है।[4] कलिसम्वत् में तिथिगणना का सर्वप्रथम उल्लेख अभीतक अवन्तिनाथ विक्रमादित्य के धर्माध्यक्ष हरिस्वामी

---

1. ...The reckoning is invented one devised by the Hindu astronomers for the purposes of their calculations some thirty five centuries after the date. (J. R. A. S. 1911 p. 485)
2. A. G. D. C. Vol II 1946),
३. "गर्गः पुरोहितो राजन् यदूनां सुमहातपाः।
ज्योतिषामयनं साक्षाद् यत्तज्ज्ञानमतीन्द्रियम्,
प्रणीतं भवता येन पुमान् वेद परावरम्॥"
४. चतुष्पादी कला संज्ञा तदध्यक्षः कलिस्मृतः। इति लगधप्रोक्तत्वात्॥

के शतपथब्राह्मण व्याख्याग्रन्थ में मिला है इससे पूर्व महाभारत और पुराणों में कलि-सम्वत् के संकेत हैं।

श्रीमतोऽवन्तिनाथस्य विक्रमार्कस्य भूपतेः ।
धर्माध्यक्षो हरिस्वामी व्याख्यच्छातपथीं श्रुतिम् ।
यदाब्दानां कलेर्जग्मु सप्तत्रिंशच्छतानि वै ।
चत्वारिंशत् समाश्चान्यास्तदा भाष्यमिदं कृतम् ।।

उपर्युक्त श्लोक के अर्थ दो प्रकार से किये जाते हैं, कलिसम्वत् ३७४० में भाष्य की रचना की गई अथवा ३०४७ कलिसम्वत् में भाष्य लिखा गया। पं० भगवद्दत्त ने कलिसम्वत् ३७४० में हरिस्वामी का समय माना है, परन्तु श्लोक में अवन्तिनाथ विक्रमादित्य का उल्लेख द्वितीय अर्थ को मानने को बाध्य करता है इस सम्बन्ध में पं० उदयवीर शास्त्री के मत ही उपयुक्त प्रतीत होते हैं कि कलिसम्वत् ३७४० न होकर ३०४७ ही ठीक है जो विक्रमसम्वत् प्रारम्भ होने के लगभग तीन वर्ष अनन्तर पड़ता है।[1] पञ्चतन्त्रादि ग्रन्थों में हरिस्वामी का नाम विक्रम के साथ मिलता है। विक्रम के भ्राता का नाम भी हरि या भर्तृहरि था।

शिलालेखादि में कलिसम्वत् ३४१८ तक के उल्लेख दाक्षिणात्य राजाओं के लेखों में मिलते हैं। इसका सर्वाधिक प्रसिद्ध उल्लेख हर्षवर्धन के समकालीन, उसके प्रतिद्वन्द्वी चालुक्यराजा महाराजा पुलकेशी के शिलालेख में मिला है।[2]

अतः कलिसम्वत् ज्योतिषीपण्डितों की केवल कल्पना नहीं थी, कलियुग से ही कलिसम्वत् का प्रारम्भ था, पुराणों में कल्योत्तर राजाओं का राज्यकाल कलिव्यतीत होने के आधार लिखा हैं। तदनुसार ही महाभारतयुद्ध, कृष्ण का दिवंगत होना,[3] राजाभिषेक, कलिवृद्धि आदि का सम्बन्ध भी कलिसम्वत् से ही है—

(१) महाभारतयुद्ध कलिद्वापर की संधि में

अन्तरे चैव संप्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत् ।
समन्तपंचके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ।। (आदिपर्व २।९)

---

१. विक्रम सम्वत् ६९५ या ६२८ ई० में ऐतिहासिक आधारों पर उज्जयिनी के स्वामी किसी विक्रमादित्य का पता नहीं लगता। ''...यदि सप्तत्रिंशच्छतानि पद को एक न मानकर सप्त को पृथक् तथा 'त्रिंशच्छतानि' को पृथक् पद समझा जाय, तो सम्वत्प्रवर्तक विक्रमादित्य के काल के साथ हरिस्वामी के निर्दिष्टकाल का कोई असामांजस्य नहीं रहता (वे० द० इ० पृ० २७४)

२. त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः ।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु शतेष्वब्देषुपंचसु ।
पंचाशत्सु कलौ काले षट्सु पंचशतेषु च ।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम् ।।
(इण्डियन एन्टिक्वटि भाग ५, पृ० ७०)

३. यस्मिन् कृष्णो दिवंयातस्मिन्नेव तदादिने ।
प्रतिपन्नः कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः ।। (भागवत १२।२।३३)

(२) **कल्किजन्म-कल्यन्त में**—अस्मिन्नेवयुगे क्षीणे संध्याश्लिष्टे भविष्यति।
कल्किर्विष्णुयशा नाम पाराशर्यः प्रतापवान्।
गात्रेण वै चन्द्रसमपूर्णः कलियुगेऽभवत्॥ (वायुपुराण)

(३) **नन्दात्प्रभृतिकलिवृद्धि**—तदा नन्दात् प्रभृत्येष कलि:वृद्धिं गमिष्यति।[१]

उपर्युक्त संदर्भों में प्रकारान्तर से कलिसम्वत् का ही उल्लेख है, अत: कलिसम्वत् गणना तथाकथितरूप में आर्यभट से, कलिसम्वत् के ३५०० वर्षों पश्चात् नहीं, कलि के प्रारम्भ में श्रीकृष्णपरमधामगमन के दिन[२] से ही गिनी जाती थी, उपर्युक्त पुराण-प्रमाणों से सिद्ध है।

महाभारतयुद्ध की तिथि

पार्जीटर ने अपनी मनमानी कल्पना से महाभारतयुद्ध की तिथि ९५० ई० पू० मानी है, श्री एस० बी० राय नामक लेखक ने महाभारतयुद्ध की तिथि पर विभिन्न मतों का संग्रह किया, उन्होंने लिखा है— पार्जीटर के अनुसार ९५० ई० पू०,[२] हेमचन्द्रराय चौधरी ९०० ई० पू०[३], कनिंघम[४], जायसवाल,[५] लोकमान्य तिलक,[६] बी-बी केतकर,[७] और सीतानाथ प्रधान[८] प्रभृति लेखक १४५० ई०पू०, पी०सी० सेनगुप्त[९] २५०० ई०पू०, सर्वश्री डी० आर मनकड,[१०] एम०एम० कृष्णामाचारी,[११] सी०बी० वैद्य[१२] और वी० पी० अथवले[13] ३१०० ई०पू० महाभारतयुद्ध की तिथि मानते हैं।[१४] स्वर्गीय शंकर बालकृष्ण

---

१. भागवत (१२।२।३२),
२. ए० इ० हि० ट्रे० (पृ० १७५-८३)
३. पो० हि० ए० इ० (पृ० ३५-३६)
4. Arch Survey. F. R-1864,
5. J. B O. R. S, Vol I P. F. p. 109।
६. गीतारहस्य, पृ० ५४८-५५२,
७. बी बी केतकरकृत ओरि-कान० पूना, पृ० ४४४-४५६
८. क्रो० ए० इ० पृ० २६२-२६६,
९. इण्डियन क्रानोलोजी
१०. पुरानिकक्रोनोलोजी पृ० (१०७),
११. हिस्ट्री आफ क्ला० सं० लिट० (पृ० XII, IX, X, VII),
१२. हि० सं० लिट० (पृ० ४-८),
१३. जे०जी० आर० वाई भाग I, पृ० २०४, द्रष्टव्य...Date of Mahabharata Battle by S. B. Roy. p. 139-140);
१४. दीक्षितजी ने कृत्तिकासम्पातसम्बन्धीज्योतिषगणना के आधार पर शतपथ ब्राह्मण का रचनाकल ३१०० शकपूर्वमाना है। शतपथब्राह्मण की रचना महाभारत के रचयिता व्यास के प्रशिष्य याज्ञवल्क्य वाजसनेय ने की थी, अत: याज्ञवल्क्य वाजसनेय का समय ही ३१०० शकपूर्व था, इसका विशेष परीक्षण आगे करेंगे।

दीक्षित ने अपनी पुस्तक 'भारतीय ज्योतिष' में लिखा है—"मेरे मतानुसार पाण्डवों का समय शकपूर्व १५०० और ३००० के मध्य में है, इससे प्राचीन नहीं हो सकता।"

उपर्युक्त मतों में पार्जीटर, रायचौधरी आदि का मत, बिना किसी प्रमाणों के अपनी कल्पना पर आधृत है अतः निराधार होने से स्वयं ही अस्वीकृत हो जाता है, और डा० काशीप्रसादजायसवालप्रभृति का मत (१४०० ई० पू०) निम्न भ्रमों पर आधारित है—

(१) सिकन्दर और चन्द्रगुप्त मौर्य की काल्पनिक समकालीनता।
(२) बुद्धनिर्वाण के सम्बन्ध में भ्रामक सिंहलीतिथि।
(३) अर्वाचीन जैनपरम्परा में महावीर की भ्रामकतिथि।
(४) अशोकशिलालेखों में तथाकथित यवनराज्यों का उल्लेख मानना।
(५) खारवेल की हाथीगुफाशिलालेख का भ्रामकपाठ।
(६) पुराणों में परीक्षित से नन्द तक १०१५ वर्ष मानना—पुराणपाठ की भ्रष्टता।
(७) युगपुराण में डेमिट्रियस यूनानी का उल्लेख मानना (डा० जायसवाल द्वारा)।

तृतीयमत, पी० सी० सेन का कल्हण के एक महान् भ्रम के ऊपर आधारित है, जो वाराहमिहिर के शकसम्वत्सम्बन्धी उल्लेख से उत्पन्न हुआ।

चतुर्थ मत, ३०४४ वि० पू० या ३१०२ ई० पू० कलिसम्वत् के प्रारम्भ से ३६ वर्ष पूर्व हुआ, अतः युद्ध की तिथि ३०८० वि० पू० या ३१३८ ई० पू० थी। सर्वप्रथम सर्वमान्य भारतीयमत का दिग्दर्शन करेंगे, तदनन्तर इस मत में जो बाधायें उपस्थित हुईं, उनका निराकरण करेंगे।

इतिहासपुराणों में निःशंकरूप या निर्विवादरूप से उल्लिखित है महाभारत युद्ध कलिद्वापर की सन्धि में हुआ, यही मत गर्गादि ज्योतिर्विदों का था, इनके उद्धरण व प्रमाण पूर्व लिखे जा चुके हैं। अब शिलालेखों पर उद्धृत प्रमाणों पर विचार-विमर्श करेंगे।

एक प्राचीन ताम्रपत्र में प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त से पुष्यवर्मा राजा तक ३००० वर्ष व्यतीत होने का उल्लेख है...

भगदत्तः ख्यातोजयं विजयं युधि यः समाह्वयत।
तस्यात्मजः क्षतारेर्वज्रदत्तनामाभूत्।
वश्येषु तस्य नृपतिषु वर्षसहस्रत्रयं पदमवाप्य।
यातेषु देवभूयं क्षितीश्वरः पुष्यवर्माभूत्।

(एपीग्राफिक इण्डिया २९१३-१४ पृ० ६५)

सर्वप्रसिद्ध शिलालेख चालुक्यमहाराज पुलकेशी द्वितीय का है, जिसने हर्ष को परास्त किया था—इसमें कलिसम्वत् और भारतयुद्ध का उल्लेख...

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः ।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु शतेष्वब्देषु पञ्चसु
पञ्चाशत्सु कलौ काले········· ॥

तदनुसार पुलकेशी द्वितीय पर्यन्त कलिसम्वत् के ३६३७ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से शिलालेखों में यही कलिसम्वत् की गणना मिलती है, जिसके अनुसार कलिसम्वत् और भारतयुद्ध क्रमशः ३०४४ वि० पू० और ३०८० वि० पू० हुये ।

अतः सर्वसम्मति से भारतयुद्ध ३०८० वि० पू० हुआ, केवल कल्हण ने भ्रमवश इस तिथि पर शंका की है...

भारतं द्वापरान्तेऽभूद्वार्तयेति विमोहिताः ।
केचिदेतां मृषा तेषां कालसंख्यां प्रचक्रिरे ॥[1]

कल्हण का मन्तव्य है कि आख्यानों में, जो भारतयुद्ध द्वापरान्त में उल्लिखित है, वह मृषा और भ्रान्ति पर आधारित है । वस्तुतः भ्रान्ति कल्हण को ही हुई है जो भारतयुद्ध को कलि के ६५३ वर्ष व्यतीत होने पर हुआ मानता था...

शतेषु षट्सु सार्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले ।
कलेर्गतेषु वर्षाणामभूवन् कुरुपाण्डवाः ॥[2]

कल्हण के इस भ्रम का कारण कश्मीरी ज्योतिषी वराहमिहिर द्वारा निर्दिष्ट एक शकसम्वत् था—

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ ।
षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥ (बृ० सं० १३।३)

इस शकसम्वत् का प्रारम्भ युधिष्ठिर शक (सम्वत्) के २५२६ वर्ष पश्चात् होता था अर्थात् विक्रम से ५५४ वर्ष पूर्व ।

प्राचीन भारत में 'शकशब्द' 'सम्वत्' का पर्याय हो गया था, क्योंकि जब-जब भी किसी शकराज्य का उत्थान और पतन होता था तब-तब ही एक नवीन 'शकसम्वत्' की स्थापना होती थी । कम से कम दो शकारि विक्रम (शूद्रक विक्रम तथा चन्द्रगुप्त विक्रम) उत्तरकाल में प्रसिद्ध हुये, इनसे पूर्व भी अनेक शकारि और शकराज हो चुके थे, वराहमिहिर स्वयं शकारि विक्रमादित्य शूद्रक प्रथम का सभारत्न था, अतः वह विक्रमादित्य के समकालीन था, वह शालिवाहन शक का उल्लेख कैसे कर सकता था। वराहमिहिर की विक्रमपूर्वविद्यमानता का एक और प्रमाण है कि विक्रम ने दिल्ली के निकट मिहिरावली नाम की वेधशाला वराहमिहिर ज्तोतिषी के नाम से बनवाई थी, जिसे आजकल महरौली कहते हैं । मैहरौली में विष्णुध्वज (कुतुबमीनार) भी विक्रम ने निर्मित कराई थी और लौहस्तम्भ पर चन्द्रगुप्तशकारि द्वितीय की यश कीर्ति उत्खनित मिलती है । इन सब प्रमाणों से वराहमिहिर का समय विक्रमपूर्व

१. राजतरंगिणी (१।४९),
२. वही (१।५१);

निश्चित है, अतः उसने वर्तमान शकसम्वत् का उल्लेख नहीं किया: जिससे कल्हण को महती भ्रान्ति हुई। हमने अन्यत्रन्यूनतम चार 'शकसम्वतों' का निर्देश किया है, वराह-मिहिर निर्दिष्ट शकसम्वत् वि०पू० ५५४ में सम्भवतः अम्लाट शकराज ने चलाया था।

इसी कल्हण की भ्रान्ति के आधार पर श्री पी० सी० सेन ने भारतयुद्ध की तिथि २५०० ई० पू० मानी है।

जिन भ्रान्तियों के कारण भारतयुद्ध की तिथि १४५० ई० पू० मानी जाती है, उनमें सर्वप्रधान है चन्द्रगुप्त मौर्य की सिकन्दर यूनानी (३२७ ई० पू०) की समकालीनता की मनघड़न्त कहानी। इस कहानी को घड़नेवाले थे, भारत में सर्वप्रथम अंग्रेज संस्कृत अध्येता विलियम जोन्स। विलियमजोन्सकृत यह मनघढ़न्त कहानी, आज इतनी सुदृढ़ मान्यता प्राप्त कर चुकी है, जितना वैज्ञानिक जगत् में डार्विन का विकास-वाद। इन दोनों कहानियों के विरुद्ध सोचना भी आज अबुद्धिमानीपूर्ण एवं अवैज्ञानिक आयाम माना जायेगा। सामान्यजन इन दोनों मान्यताओं के विरुद्ध सोचने का कष्ट ही नहीं उठाते।

परन्तु, मध्यकालीन मुस्लिम इतिहासकार, भारत पर सिकन्दर का आक्रमण, आन्ध्रसातवाहन राजा हाल के समय में हुआ मानते थे। इसका उल्लेख, स्वयं, एक पाश्चात्य विद्वान् इलियट ने भारत के इतिहास में किया है—सिन्ध का इतिहासकार युनयलुक तवारीख से उद्धरण संग्रह करते हुए इलियट ने लिखा है—"ऐसा कहा जाता है कि हाल संजवार का वंशज था, जो जन्दरत (जयद्रथ) का पुत्र था और इसकी माता राजा दहरात (धृतराष्ट्र) की पुत्री थी" (पृ० ७४), "फिर हिन्दुओं का यह देश राजा कफन्द ने अपने बाहुबल से जीत लिया······कफन्द हिन्दू नहीं था।······वह यूनानी एलैकजेन्डर का समकालीन था। उसने स्वप्न में कुछ दृश्य देखे और ब्राह्मण से उसका अर्थ पूछा। उसने एलैकजेन्डर से शान्ति की इच्छा की थी और इस निमित्त उसको अपनी पुत्री, एक निपुण वैद्य, एक दार्शनिक और एक काँच का पात्र भेंट-स्वरूप भेजे। **सामीद ने हिन्दुस्तान के राजा हाल से सहायता माँगी** (पृ० ७५), इस घटना के पश्चात् एलैकजेन्डर भारत आया।" (पृ० ७६)

"कफन्द के बाद राजा अयन्द हुआ, फिर रासल। रासल के पुत्र रब्वाल और बरकमारीस (विक्रमादित्य) थे।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि सिकन्दर का भारत पर आक्रमण राजा हाल के समय में हुआ था और इस प्रमाण से आन्ध्रसातवाहनवंश का समय भी निश्चित हो जाता है तथा पुराणप्रमाण से आन्ध्रसातवाहनराज्य का उदय २४०० कलिसम्वत् या ६४४ वि० पू० या ७०१ ई० पू० हुआ, क्योंकि प्राचीनपुराणपाठ के अनुसार शन्तनुपिता प्रतीप से आन्ध्रपूर्वपर्यन्त एक सप्तर्षिचक्र या २७०० वर्ष अथवा परीक्षित पाण्डव से आन्ध्रोदयपर्यन्त २४०० वर्ष हुये—

---

१. इलियटकृत भारत का इतिहास, भाग पृ० ७६ (अनु० डा० मथुरालाल शर्मा प्रकाशक—शिवलाल अग्रवाल आगरा (१९७३),

सप्तर्षयस्तदा प्राहुः प्रतीपे राज्ञि वै शतम् ।
सप्तविंशैः शतैर्भाव्या आन्ध्राणान्ते[1] ऽन्वयाः पुनः ।
(वायु० ९९।४१८)

सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले परीक्षिते शतम् ।
आन्ध्राणान्ते सचतुर्विंशे भविष्यन्ति शतं समाः ।।
(मत्स्य पु० २७३।४४)

आन्ध्रवंश के राजाओं की सामान्य संज्ञा 'सातवाहन' या हाल' थी, आन्ध्रवंश के ३० राजाओं ने ४५६ वर्ष राज्य किया—

इत्येते वै नृपास्त्रिंशदंध्रा भोक्ष्यन्ति वै महीम् ।
समाः शतानि चत्वारि पंचाशत्षट् तथैव च ।। (ब्रह्माण्ड २।३।७४-१७०)

मौर्यराज्य की स्थापना आन्ध्रसातवाहनों से आठ सौ वर्ष पूर्व कलिसंवत १६०१ में अथवा १४४४ वि० पू० हुई थी । चन्द्रगुप्तमौर्य और सिकन्दर की समकलीनता पूर्णतः मनघड़न्त कहानी है, चन्द्रगुप्तमौर्य, सिकन्दर से लगभग १२०० वर्ष पूर्व हुआ, अतः सिकन्दर के आक्रमण के समय (२७० वि० पू०) भारत पर गौतमी पुत्र सातवाहन या पुलोमावि वासिष्ठीपुत्र सातवाहन (शातकर्णि=हाल) का शासन था, जैसाकि इलियट उद्धृत मुस्लिम इतिहासकार के कथन से पुष्टि होती है ।

अब हम विलियम जोन्स रचित कहानी[2] का संक्षेप में खण्डन करते हैं । सर्वप्रथम पं० भगवद्दत्त ने सिकन्दर और चन्द्रगुप्त मौर्य की समकालीनता का खण्डन, भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, भाग १, (पृ० २८८ से २९७ तक) किया । उसका सार इस प्रकार है—(१) मैगस्थनीज ने लिखा है कि पालिबोथ्राई को हरकुलीज ने बसाया है, (२) प्रसई (पर्शु?) जाति सिन्धु तट पर बसी हुई है । प्रसइयों का राजा सैण्ड्रोकोट्स है । (३) पालिबोथ्रा एर्नबोअस और गंगा के तट पर बसा हुआ है । ध्यान रखना चाहिए कि मैगस्थनीज ने सोन और एर्नबोअस नदियों को पृथक्-पृथक् लिखा है । (४) पालिबोथ्रा के आगे उत्तर में मलेयुस पर्वत है, (५) टामेली के अनुसार प्रसई जनपद के निकट सौरवतिस (शरावती या सौरवत्स) प्रदेश है । (६) मैगस्थनीज ने सूचित

---

१. आंध्राणान्ते का पदविच्छेद है—आन्ध्राणाम्+ते=आन्ध्राणान्ते ।

२. अपनी तथाकथित स्थापना में विलियमजोन्स स्वयं एक महान् कठिनाई देखता था कि मैगस्थनीज ने लिखा है कि यमुना नदी पालिबोथ्राई (=पाटलिपुत्र ?=शुद्ध=पारिभद्रा नगरी) में होकर बहती थी—The reiver Jamones flows through the Palibothri into Gangas between Methora and Carisobora. "अर्थात् यमुना नदी पालिबोथ्राई में होकर बहती है, जिसके एक और मथुरा और दूसरी ओर कैरिसोबारा (कृष्णपुर=शूरपुर=बटेश्वर) बसे हुये थे ।" (Curtius praa XII), मैगस्थनीज का यही कथन जोन्स की स्थापना पर पानी फेर देता है, अतः पालिबोथ्राई और पाटलिपुत्र एक नहीं हो सकते ।

किया है कि सैण्ड्रोकोट्स सिन्धु (Indus) देश का सबसे बड़ा राजा था, परन्तु पोरस सैण्ड्रोकोट्स से भी बड़ा राजा था। (७) सैण्ड्रोकोट्स के राज्य के पार्श्व में गन्दरितन (Gandariton बसे हुये थे। (८) सैण्ड्रोकोट्स के पुत्र का नाम एमित्रोचेट्स था। (६) मैगस्थनीज ने लिखा है कि पालिबोथ्रा के नाम पर वहाँ के राजा को भी पालिबोथ्रा कहते थे। (१०) गंगा के निकट का समस्त प्रदेश पालिबोथ्रा कहा जाता था।

उपर्युक्त दश कथनों में से एक भी चन्द्रगुप्त मौर्य और पाटिलपुत्र पर नहीं घटता।

प्रथम मैगस्थनीज के अनुसार पालिबोथ्रा को हरकुलीज ने बसाया, परन्तु भारतीय ग्रन्थ एक मत से कहते हैं कि पाटिलीपुत्र को शिशुनागवंशीय राजा उदायी ने बसाया।[1] जो चन्द्रगुप्त मौर्य के २४० वर्ष पूर्व हुआ था। मैगस्थनीज के अनुसार हरकुलीज ने सैण्ड्रोकोट्स से १३८ पीढ़ी पूर्व पालिबोथ्रा बसाया। अतः मैगस्थनीज का कथन पाटलिपुत्र पर नहीं घटता।

द्वितीय आपत्ति, मैगस्थनीज ने लिखा है कि प्रसई की राजधानी पालिबोथ्रा है। जोन्स आदि ने 'प्रसई' को 'प्राच्य' का अपभ्रंश मानकर संतोष कर लिया। परन्तु, मैगस्थनीज ने यह भी लिखा है कि सैण्ट्रोकोट्स सिन्धुप्रदेश का राजा था।[2] सिन्धु और प्राच्य दोनों ही विपरीत दिशा में है। सिन्धु उदीच्य या पश्चिम में हैं और मगध (पाटिलीपुत्र) पूर्व (प्राच्य) में है। क्या मैगस्थनीज प्रसिद्ध 'मगध' जनपथ का नाम नहीं लिख सकता था और क्या पाटलिपुत्र समस्त प्राच्यजनपदों की राजधानी थी ? क्या मैगस्थनीज संस्कृतव्याकरण का व्यापक एवं गहन ज्ञान प्राप्त किये बिना ऐसे सूक्ष्म परिभाषिक शब्द (प्राच्य) का प्रयोग देश के लिए करता। पुनः मगध के निकट कौन सा सिन्धुतट है ? वस्तुतः मैगस्थनीज ने न तो प्राच्य, न मगध, न पाटलिपुत्र का कोई उल्लेख किया है।

वास्तव में, मैगस्थनीज वर्णित प्रसई जाति, जिस सिन्धुनदी के तट पर बसी हुई थी, वह मध्यदेश में थी, पं० भगवद्दत्त ने इस सिन्धु को महाभारत के प्रमाण से खोज निकाला है—

चेदिवत्साः करुषाश्च भोजाः सिन्धुपुलिन्दकाः। (भीष्मपर्व)

मध्यदेश की सिन्ध को आज भी 'कालीसिन्ध' कहते हैं, इसी कालीसिन्ध के तट पर पालिबोथ्रा बसा हुआ था। अतः मध्यदेश के पालिबोथ्रा को पाटलिपुत्र मानना

---

१. ततः कलियुगे राजा शिशुनागात्मजो बली।
उदायी नाम धर्मात्मा पृथिव्यां प्रथितोगुणे।
गंगातीरे स राजर्षिः दक्षिणेच महानदे।
स्थापयेन्नगरं रम्यं पुष्पारामजनाकुलम्।
तेषां पुष्पपुरं रम्यं नगरं पाटलीसुतम्॥ (युगपुराण)

२. Sandrocotus was the king of Indians around the Indus. "Indus Skirts frontiers of the Prasii"

महती भ्रान्ति है ।

तृतीय, जोन्स ने एर्नबोअस को शोण का पर्याय 'हिरण्यबाहु' मानकर महती भ्रान्ति उत्पन्न कर दी । वस्तुत: मैगस्थनीज ने शोण और एर्नबोअस को पृथक्-पृथक् नदियाँ लिखा है । अपनी भ्रान्ति को सत्य मानकर जोन्स, मैगस्थनीज पर दोषारोपण करता है कि उसने अज्ञान या अध्यान के कारण उसका पृथक्-पृथक् नाम लिखा है । वह असंभव कल्पना है कि अपने निकटवर्ती राजधानी की एक नदी के, कोई राजदूत भ्रान्ति से दो नाम लिखे । जोन्स से पूर्व अन्विल्ल नाम के अँग्रेजलेखक ने एर्नबोअस की पहिचान 'यमुना' से की थी, पं० भगवद्दत्त ने एर्नबोअस को यमुना का पर्याय 'अरुणवहा' माना है । कुछ भी हो, शोण और एर्नबोअस पृथक् पृथक् नदियाँ थीं । चतुर्थ, मैगस्थनीज ने पालिबोथ्रा से आगे मलेउस पर्वत बताया है, इसको लोग मल्ल (वृजि) जनपद का पार्श्वनाथ (शिखर जी) पर्वत मानते हैं, पार्श्वनाथ का नाम मल्लपर्वत कभी नहीं रहा । यह मल्लपर्वत, शाल्व, युगन्धर, कठापि जनपदों का निकटवर्ती मालवजनपद का पर्वत था, जहाँ पर सिकन्दर को मालव सैनिक का प्राणघातक तीर लगा था ।

पंचम, मैगस्थनीज द्वारा पोरस को सैण्ड्रोकोट्स से बड़ा राजा बताना भी चन्द्रगुप्त मौर्य पर नहीं घटित होता क्योंकि मौर्य तो भारतसम्राट् था । पोरस तो पंजाब के लघुभागमात्र का नरेश था ।

षष्ठ, चन्द्रगुप्त मौर्य का अमित्रकेतु (अमित्रोचेट्स) नाम का कोई उत्तराधिकारी नहीं था, उसके पुत्र का प्रसिद्ध नाम बिन्दुसार था, फिर ऐसे प्रसिद्ध नाम को छोड़कर 'एमित्रोचेट्स' नाम लेने की क्या आवश्यकता थी ।

सैण्ड्रोकोट्स के पार्श्वस्थ क्षत्रिय 'गन्दरितन' निश्चय ही युगन्धर क्षत्रिय थे, जो शाल्वों का एक अवयव माने जाते थे—

उदुम्बरास्तिलखला भद्रकारा युगन्धरा: ।
भुल्लिगा: शरदण्डाश्च साल्वावयवसंज्ञिता: ॥ (काशिका ४।१।१७३)

इन जनपदों के निकट मल्लजनपद था, जिसका उल्लेख महाभारत (विराटपर्व ११९) में है—"दशार्णा वनराष्ट्रं च मल्ला: शाल्वा युगंधरा: ।"

इन्हीं शाल्वावयव युगन्धरों के निकट पारिभद्र जनपद था, जिसका राजा सैण्ड्रोकोट्स था ।[1] मैगस्थनीज ने स्पष्ट लिखा है कि पालिबोथ्रा के राजा को पालिबोथ्रा कहते हैं, अत: पालिबोथ्रा केवल नगर का नाम नहीं था, वह जनपद भी था । प्राचीन भारत में जनपद के नाम से राजा को केकय, शिवि, अंग, वंग, कलिंग आदि कहा जाता था अत: पालिबोथ्रा पाटलिपुत्र नगर नहीं हो सकता, वह जनपद था पारिभद्र और वहाँ की राजधानी थी पारिभद्रा, अत: मैगस्थनीज को देश, नगर और राजा—तीनों के नाम

---

१. सैड्रोकोट्स का शुद्धसंस्कृत रूप—'चन्द्रकेतु' है न कि चन्द्रगुप्त; शूद्रक के समकालीन एक चकोरनाथ 'चन्द्रकेतु' का उल्लेख हर्षचरित (षष्ठ उच्छवास) में मिलता है—"ससचिवमेवदूरीचकार चकोरनाथं चन्द्रकेतुं जीवितात् ॥ सम्भव है यही 'चन्द्रकेतु' सिकन्दर का समकालिक हो । शूद्रक एक वंशनाम था ।

समान दिखाई पड़े, पालिबोथ्रा में 'बोथ्र' भाग 'पुत्र' का अपभ्रंश नहीं है, वह 'भद्र' का अपभ्रंश था। महाभारत युद्धपर्वों में पारिभद्रक्षत्रियों का बहुधा संकेत मिलता है जो पांचालों के साथी थे।[1] संभवतः पारिभद्र और भद्रकार (शाल्वावयव) एक ही थे। नगर के नाम से किसी राजा को सम्बोधित नहीं किया जाता था, जैसे मथुरा, अयोध्या, कौशाम्बी, राजगृह के नाम से राजा को वैसा नहीं कहते, अतः पाटलिपुत्र के नाम से राजा को पाटलिपुत्र नहीं कहा जाता, परिणामतः पाटलिपुत्र और पालिबोथ्रा एक नहीं थे। अतः मैगस्थनीज ने यथार्थ ही लिखा है कि पारिभद्रा (पालिबोथ्रा) के राजा को 'पारिभद्र' (पालिबोथ्रा) कहा जाता था।

मैगस्थनीज यदि मगध की राजधानी पाटलिपुत्र में रहता तो और यदि चन्द्रगुप्त मौर्य का समकालिक होता तो वह मगध का नाम अवश्य लेता। नन्द, मौर्य के साथ जगद्विख्यात राजनीतिज्ञ चाणक्य या कौटल्य का उल्लेख करता, परन्तु उसने इनमें से किसी का नाममात्र भी नहीं लिया, अतः मैगस्थनीज के नाम पर सिकन्दर और चन्द्रगुप्त मौर्य की समकालीनता की कहानी पूर्णतः खण्डित हो जाती है। इस कहानी के टूटने पर महाभारतयुद्धतिथि और कलिसंवत् की अमान्यता की एक प्रमुख कठिनाई दूर हो गई। अर्थात् अब कलिसंवत् और महाभारतयुद्ध की तिथि क्रमशः ३०४४ वि० पू० ३०८० वि० पू० सिद्ध हो जाती है।

बुद्धनिर्माण की सिंहलीतिथि—भ्रामक मान्यता

पाश्चात्यलेखक भारतीय इतिहास की तिथियों को अर्वाचीनतम सिद्ध करना चाहते थे, अतः जिस भी कल्पना या किसी विदेशीग्रंथ से वह अपनी मान्यता को सुदृढ़ कर सके वही उन्होंने किया। पाश्चात्यों ने बुद्धनिर्वाण की उस अर्वाचीनतमतिथि को माना जो श्रीलंका या सिंहलीपरम्परा में थी, यद्यपि सिंहलीपरम्परा में भी बुद्धनिर्वाण की तिथि ६८६ ई० पू० मानी जाती थीं, परन्तु पाश्चात्यों ने अपनी मनमानी काल्पनिक गणना, विशेषतः जोन्स की उपर्युक्त स्थापना (सिकन्दर और चन्द्रगुप्त मौर्य की समकालीनता के परिप्रेक्ष्य में) इस तिथि को और घटाकर ४८७ ई०पू० या ४६४ई०पू० कर दिया।

सत्य की विस्मृति के कारण प्राचीन बौद्धदेश बुद्धनिर्वाण की विभिन्न तिथियाँ मानते थे। चीनीयात्री ह्यूनसांग ने अपने समय में माने जानी वाली बुद्धनिर्वाण की विभिन्न तिथियों का उल्लेख किया है, तदनुसार उसके समय (सप्तमशती) में बुद्ध को निर्वाण प्राप्त हुये १२०० या १३०० या १५००वर्ष व्यतीत हुये माने जाते थे, ऐसे चीनी विद्वानों के विभिन्न मत थे, अतः चीन में ई०पू० ७००, ८०० या १००० वर्ष में बुद्ध निर्वाण माना जाता था।[2] फाहियान ने लिखा है कि हानदेश में चाववंशी राजा पिंग के

---

१. धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यस्तेषां गोप्ता महारथः।
सहितः पृतनाशूरैरथमुख्यैः प्रभद्रकैः॥ (भीष्मपर्व १६),

२. ह्यूनसांग की जीवनी (बीलकृत अनुवाद) पृ० ६८;

राज्यकाल से १४६७ वर्ष पूर्व अर्थात् १०६० ई० पू० बुद्धनिर्वाण हुआ।[1] जोन्स ने भी तिब्बतीवर्णनों के आधार पर बुद्धनिर्वाणकाल १०२७ ई० पू० माना था।[2] राजतरंगिणी में बुद्धनिर्वाण १४४४ ई० पू० माना है। श्री ए० वी० त्यागराज ने 'इण्डियन आर्किटेक्चर' पुस्तक में कुछ वर्ष पूर्व ग्रीकनगर एथेन्स में प्राप्त शिलालेख में एक भारतीय भिक्षु, जो १००० ई० पू० वहाँ गया था, उसकी समाधि मिली है, तदनुसार उन्होंने बुद्ध का समय १७०० ई० पू० माना है। यही मान्यता पुराणों की गणना के अनुकूल है, पुराणों के अनुसार बार्हद्रथराजाओं ने १००० वर्ष राज्य किया, प्रद्योतों ने १३८ वर्ष, शिशुनागवंशीय षष्ठनरेश अजातशत्रु के ८वें वर्ष तक १७२ वर्षों का योग १३१० वर्ष हुआ। बुद्ध, कल्कि से लगभग २०० वर्ष पश्चात् हुये, कल्कि का समय विशाखयूप के राज्यकाल ११९० कलिसंवत् में था तो बुद्ध का निर्वाणकाल १३१० कलि संवत्, बुद्ध का निर्वाण ८० वर्ष की आयु में हुआ, अतः उनका जन्म कल्कि से १२० वर्ष पश्चात् हुआ, स्थूलरूप से बुद्ध और कल्कि में एक शताब्दी का ही अन्तर था।

पुरातनजैनवाङ्मय में महावीरस्वामी का निर्वाणकाल—इसमें कोई संदेह नहीं कि महावीर और बुद्ध समकालिक थे, परन्तु वर्तमान वीरनिर्वाणसम्वत् की गणना अत्यन्त अर्वाचीनकाल में की गई है, यद्यपि वीरसंवत् अत्यन्त पुरातन था, वीरसंवत् ८४ का एक शिलालेख प्राप्त हो चुका है। यथार्थ में प्राचीनजैनवाङ्मय अनेक बार आक्रमणादि में नष्ट हो चुका था, वाङ्मय और परम्परा के अभाव में जैनाचार्यों ने महावीरनिर्वाण की एक अर्वाचीन तिथि मान ली। **वस्तुत एक प्राचीन श्वेताम्बरग्रन्थ तित्थोगाली में वीरनिर्वाण और (जैन) कल्कि का अन्तर १९२८ वर्ष माना है, यह कल्कि (सम्भवतः यशोवर्मा) गुप्तराज्यारम्भ (के २५० वर्ष) पश्चात् हुआ, इस गणना से महावीरनिर्वाण १६७८ वि०पू० हुआ।** यह तिथि पुराणगणना के अनुकूल मत है, और तथापि इसमें स्वल्प त्रुटि है, वास्तव में महावीर, बुद्ध से कुछ वर्ष पूर्व ही हुए थे अतः उनका निर्वाणकाल १७०० वि०पू० से १८०० वि०पू० के मध्य में था।

अशोकशिलालेखों में तथाकथित यवनराजा या यवनराज्य?—अशोक के शिलालेखों का गम्भीर नहीं, सामान्य अध्येता भी तुरन्त भाँप लेगा कि उनमें किसी राजा का नामोल्लेख नहीं, राज्यों का नाम है—एक दो शिलालेखों के मूल पाठ द्रष्टव्य हैं—(१) "स्वमपि प्रचंतेषु यथा चोडा पाडा सतियपुतो केतलपुत्रो आ तबपंणी अतियोक योनराज (जि) ये वा पि तस अतियोकस सामीप ...।।" (गिरनारलेख) (२) स योनकाबोज गधरन रठिकपितिनिकन ये (पेशावर, खरोंष्ठी लेख) (३) योजनशतेषु य च अतियोक नम योनरज परं च तेन अतियोके न चतुरे रजनि तुरमये नम अंतकिनि नम मक नम अलिकसुन्दरो नम नि च चोड पंड...।" (शाहबाजगढ़ी—रावलपिण्डीपाठ)।

---

१. फाह्यान का यात्रावृतान्त (हिन्दी) पृ० १६;

२. जोन्स ग्रंथावली' भाग ४, पृ० १७;

पाश्चात्यलेखकों ने स्वयं मूर्ख बनकर सभी को मूर्ख बनाया; स्पष्टत: शिलालेखों में उल्लिखित चोड (चोल), पाडा (पाण्ड्य), सतियपुत (सत्यपुत्र), केतलपुत (केरलपुत्र), तंबपंणी (ताम्रपर्णी=सिंहल), कम्बोज, गान्धार, राष्ट्रिक, मग आदि जब राज्यों या देशों के नाम हैं, तब—तुरमय, अंतकिन, योन और अलिकसुन्दर आदि राजाओं के नाम कैसे हो गये, स्पष्ट ही इनको राजा मानना अतिभ्रम या मूढता या षड्यंत्र ही है। 'योन' किसी राजा का नाम नहीं हो सकता, वह राज्य का ही नाम है, अत: स्वयंसिद्ध है—तुरमय, मग, अंतकिन और अलिकसुन्दर भी निश्चय ही राज्यों के नाम थे। इनके राज्य होने का एक, और प्रमाण शिलालेख में ही है—'योजनशतादि' दूरी का उल्लेख, यह उल्लेख स्थान या देश के साथ ही सार्थक है, राजा के साथ निरर्थक। अत: अशोक के धर्मलेखों में जब किसी राजा का नामोल्लेख है ही नहीं, तब उनको अन्टियोख द्वितीय, टालेमी, एन्टिगोनस, मगस, एलेक्जेण्डर नाम के राजा मानना घोर अज्ञान एवं हास्यास्पद परिणामत: अनैतिहासिक कल्पना है।

शिलालेख के पाठ में स्पष्ट 'राजनि' या 'रजनि' पठित है, जो निश्चय ही राज्ये (सप्तमीप्रयोग) है न कि राज्ञि, शिलालेखपाठ में 'तंबपंणी राज्ञि' पाठ सार्थक बनता ही नहीं।

अशोक के शिलालेखों में उल्लिखित पंच यवनराज्य अत्यन्त पुरातन थे, इनका वर्णन रामायण, महाभारत और पुराणों में मिलता है—सम्राट् सगर के समय में उक्त पंचयवनराज्यों के राजाओं का सगर से युद्ध हुआ था, हैहयनरेश के पक्ष में—

यवना: पारदाश्चैव काम्बोजा: पह्लवा: शका:।
एतेह्यपि गणा: पंच हैहयार्थे पराक्रमन्॥
(हरि० १।१३।१४)

ये पंच यवनराज्य भारत की पश्चिमीसीमान्त में अवस्थित थे न कि मिश्रादि में। अत: अशोक के शिलालेखों में किसी यूनानी राजा का उल्लेख नहीं है। भारतीय गणना से अशोक का राज्याभिषेक १३९५ वि०पू० हुआ था।

खारवेल के हाथीगुफा लेख से भ्रम

खारवेल के शिलालेख में उल्लिखित यवनराज को डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने 'डिमिट' पाठ पढ़कर 'डेमेट्रियस' यूनानी राजा बना दिया, उसमें उल्लिखित बृहस्पति मित्र को पुष्यमित्र शुँग मानकर, यह महती भ्रांति उत्पन्न कर दी गई कि डेमिट्रियस या मेनान्डर पुष्यमित्र शुंग के समकालिक था और उनका समय १८७ ई०पू० माना गया। शिलालेखों को लिपिविशेषज्ञ (?) अपने मनमानेढंग से पढ़कर अनेक मनमाने शब्द और अर्थ बना लेते हैं, अत: उनसे वैसे भी निश्चित परिणाम नहीं निकाले जा सकते। फिर भी, यदि हाथीगुफा शिलालेख शुद्धरूप में पढ़ा गया है, यह मान भी लिया जाय तो उसमें उल्लिखित 'यवनराजा' का न तो कोई नाम है और बृहस्पितमित्र को पुष्यमित्र शुंग मानना कोरी कल्पना है, यदि वह बृहस्पतिमित्र शुंग होता तो उसका 'शुंग' नाम से ही उल्लेख होता जैसा कि शिलालेख में 'शातकर्णि' का केवल प्रसिद्ध वंश

नाम उल्लिखित है, उसका नाम नहीं लिखा।[1]

अतः उक्त शिलालेख के आधार पर शुंगकाल का निर्णय नहीं किया जा सकता, जबकि स्वयं खारवेल का समय निश्चित नहीं है, हाँ शिलालेख में 'शातकर्णि' के उल्लेख से यह निश्चित हो सकता है खारवेल किसी शातवाहन राजा के समकालीन था, शुंगों के नहीं। शुंगों और सातवाहनों के मध्य अनेक शताब्दियों का अन्तर था— कम से कम चार शताब्दी का, अतः शुंगों और शातकर्णियों की समकालीनता का प्रश्न ही नहीं उठता, पुराणलेख इसी पक्ष में है।

युगपुराण में धर्ममीत तथाकथित डेमेट्रियस का उल्लेख—भ्रान्तधारणा— काल्पनिक गणनाओं के आधार पर डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने 'युगपुराण' में 'धर्ममीत' के रूप में यूनानी 'डेमेट्रियस (Demetrius) का उल्लेख मानकर, उसे शुंगों के समकालीन बना दिया। जिस प्रकार हाथीगुफा शिलालेख में यवनराज के साथ 'दिमित' पाठ बनाकर अपनी कल्पना पर रंग चढ़ाया, उसी प्रकार 'धर्ममीत' शब्द को जायसवाल ने ग्रीक डेमेट्रियस माना। डेमेट्रियस का शुद्ध संस्कृत 'दत्तामित्र होता है।

युगपुराण में 'डेमेट्रियस' का उल्लेख कोरी कल्पना, वरन् निरर्थक भी है, इसके इसके निम्न हेतु हैं —

श्री डी०आर० मनकड ने एक नवीन प्राप्त गार्गीसंहिता की हस्तलिखित प्रति के आधार पर, 'युगपुराण' का जो पाठ प्रकाशित किया है वह इस प्रकार है—

"धर्मभीततमा वृद्धा जनं मोक्ष्यन्ति निर्भयाः।" (पंक्ति १११)

इसका सरलार्थ है "धर्म से भयभीत वृद्धपुरुष प्रजाजनों को भय से मुक्त करेंगे।" अतः युगपुराण में किसी भी यवन अथवा यूनानी राजा का उल्लेख नहीं है।

गार्गीसंहिता की विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों में उपर्युक्त पंक्ति के चार पाठ मिले हैं—धर्मभीततमा, धर्ममीततमा, धर्ममीयतमा और धर्ममींततमा। इनमें 'धर्मभीत-तमा' पाठ शुद्ध और सार्थक है, शेष अशुद्ध एवं निरर्थक हैं। क्योंकि डा० जायसवाल अपने द्वारा निर्मित 'धर्ममीयतमा' पाठ में 'डेमेट्रियस'[2] और ऊसके ज्येष्ठ भ्राता 'तमा' का उल्लेख मानते थे, परन्तु, उसका ज्येष्ठ भ्राता 'तमा' कौन था, यह डा० जायसवाल स्वयं नहीं बता सके। अतः धर्ममीत (शुद्ध धर्मभीत) को डेमेट्रियस मानना कोरी कल्पनामात्र ही हैं। द्वितीय, यदि उक्त श्लोक में किसी राजा का नामोल्लेख होता त

---

१. हाथीगुफा शिलालेख के कुछ अंश प्रमाणार्थ द्रष्टव्य हैं—"दुतिये च वसे अचित-यिता सातकंनि पछिमदिसं···अपयातो यवनराजं···यच्छति···मागधं च राजानं बहसतिमितं पादे वंदापयति।"

२. महाभारत आदिपर्व में दत्तामित्र सौवीर या यवन का उल्लेख है जिसको अर्जुन ने जीता था पाणीनीयगणपाठ (अष्टाध्यायी ४।२।१६) में दत्तामित्र और उसकी बसाई नगरी दत्तामित्रायणी का उल्लेख है, निश्चय ही यूनानी दत्तामित्र को डेमेट्रियस कहते थे, यह नाम अनेक व्यक्तियों ने रखा।

शुद्ध संस्कृत, 'धर्ममित्र' होना चाहिए, क्योंकि संस्कृत में 'धर्ममीत' निरर्थक एवं अशुद्ध शब्द है। तृतीय, डा० जायसवाल का अनुमान था कि भारतीयों की दृष्टि में 'डेमेट्रियस' धार्मिक राजा था, अतः उसे 'धर्ममीत' संज्ञा प्रदान की गई। भारतीयवाङ्मय में, विशेषतः पुराणों में यवनों या म्लेच्छों को कहीं भी धार्मिक नहीं माना गया,[1] अतः डेमेट्रियस को धर्ममीत' कहा गया होगा, यह भ्रष्ट कल्पना है। चतुर्थ, यदि, डेमेट्रियस को भारतीय 'दत्तामित्र' नाम से सम्बोधित करते थे तो, उसके द्वितीय नाम 'धर्ममीत' की क्या आवश्यकता थी।

अतः डा० जायसवाल की युगपुराण में उल्लिखित डेमेट्रियससम्बंधीकल्पनायें, निरर्थक, भ्रष्ट एवं इतिहासविरुद्ध हैं, जिसका इतिहास से कोई सम्बन्ध नहीं। 'यवन' शब्द का इतिहास अन्यत्र लिखा जायेगा।

परीक्षित् से नन्दपर्यन्तकाल

पुराणों में मागधराजवंशों का क्रमिकवर्णन हुआ है, उनपर क्रमभंग का आरोप लगाना घोर धृष्टता है। आधुनिकलेखकों ने मागध बालक प्रद्योतवंश को अवन्ति का चण्डप्रद्योत बनाकर, मनमानी करके, पुराणगणना में अन्तर डालने की धृष्टता की हैं। डा० काशीप्रसाद जायसवाल, पार्जीटर, रैप्सन और जयचन्द्र विद्यालंकार ने ऐसी ही कल्पना की है। विद्यालंकार जी लिखते हैं—"पार्जीटर ने भी इस स्पष्ट गलती को सुधारकर प्रद्योतों के वृतान्त को 'पुराणपाठ' में मगधवृत्तान्त से अलग रख दिया है। इस सुलझाने पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती, यहाँ तक कि विषय निर्विवाद है।[2]" रैप्सन ने लिखा है—"पुराणों का मागध प्रद्योत और उज्जैन का प्रद्योत एक थे, इस विषय में सन्देह नहीं हो सकता।"[3]

इस सम्बन्ध में पं० भगवद्दत्त ने ६ प्रमाण दिये हैं, जिससे सिद्ध होता है कि मागध प्रद्योतवंश और आवन्त्य प्रद्योतवंश पृथक् पृथक् थे।[4] इस विषय की विस्तृत समीक्षा 'कलियुगराजवृतान्त' प्रकरण में की जाएगी, यहाँ तो केवल महाभारततिथि (३१०२ ई०पू०) की पुष्टिहेतु इसका संकेत मात्र किया गया है।

आधुनिकलेखकों की कल्पना को एक भ्रष्टपुराणपाठ से और बल मिला—

---

१. यवनाश्च सुविक्रान्ताः प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम्।
अनार्याश्चाप्यधर्माश्च भविष्यन्ति नराधमाः। (युगपुराण, पं० ९५ व ९९)
व्युच्छेदात्तस्य धर्मस्य निर्यायोपपद्यते।
ततो म्लेच्छा भवन्त्येते निघृणा धर्मवर्जिताः। (महाभारत, अनु० १४६।२४)
अल्पप्रसादा ह्यनृता महाक्रोधा ह्यधार्मिकाः भविष्यन्तीह यवना···॥
(ब्रह्माण्ड पु० २१३१।७४।२००)

२. भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृ० ५५३, जयचन्द्रविद्यालंकार।

३. कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डया, भाग १ पृ० ३१०;

४. भारतवर्ष का बृहद् इतिहास भाग २, पृ० २३८-२३९;

आरम्य भवतो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम् ।
एतद्वर्षसहस्रं तु शतं पंचदशोत्तरम् ।।[1]

परन्तु इस श्लोकपाठ की भ्रष्टता (अशुद्धि) स्वयं पुराणों के प्रमाण से ही सिद्ध होती है। पुराणों में महाभारतयुद्ध के अनन्तर के २२ मागध राजाओं का राज्यकाल ठीक १००० वर्ष बताया है—

द्वाविंशच्च नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथाः ।
पूर्णं वर्षसहस्रं वै तेषां राज्यं भविष्यति ।।[2]

इसके पश्चात् पाँच प्रद्योतमागधों ने १३८ वर्ष और दश शैशुनागराजाओं ने ३६० वर्ष राज्य किया। ये कुल १४९८ वर्ष हुए, इसके अनन्तर महापद्मनन्द का अभिषेक कलिसंवत् या १५४४ या १५१२ ई० पू० हुआ। और प्रतीप, परीक्षित् और नन्द से आन्ध्रसातवाहनोदयपूर्वतक क्रमशः २७००, २४०० और ८३६ वर्ष पुराणों में उल्लिखित है, अतः पुराणप्रमाण से भारतयुद्ध की पूर्वोक्त तिथि (३०८० वि०पू०) ही सत्य सिद्ध होती है। परीक्षित् से नन्दपूर्व तक १५०० वर्ष हुए, शुद्ध-पुराणपाठ के अनुसार—

यावत्परीक्षितो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम् ।
एतद्वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चशतोत्तरम् ।।[3]

नन्द से आंध्रतक का अन्तर ८३६ वर्ष बताये गये हैं—

प्रमाणं वै तथा वक्तुं महापद्मोत्तरं च यत् ।
अन्तरं च शतान्यष्टौ षट्त्रिंशच्च समाः स्मृताः ।।[4]

ज्योतिषगणना से पुराणमत की पुष्टि—श्री बालकृष्ण दीक्षित ने शतपथ ब्राह्मण[5] के आधार पर सिद्ध किया है कि कृत्तिकानक्षत्रसम्पात के द्वारा उक्त ग्रन्थ का समय ३०७४ शकपूर्व या ३२१८ शकपूर्व या ३०७३ वि०पू० निश्चित होता है। उन्होंने लिखा है—"उपर्युक्त वाक्य में 'कृत्तिकायें पूर्व में उगती हैं' यह वर्तमानकालिक प्रयोग है।···आजकल उत्तर में उगती हैं। शकपूर्व ३१०० वर्ष के पहिले दक्षिण में उगती थीं। इससे सिद्ध होता है कि शतपथब्राह्मण के जिस भाग में ये वाक्य आये हैं उसका रचनाकाल शकपूर्व ३१०० वर्ष के आसपास होगा।"[6]

शतपथब्राह्मण में महाभारतकाल के अनेक पुरुषों के नाम उल्लिखित हैं—

यथा—'तदु ह बह्लिकः प्रातिपीयः शुश्राव कौरव्यो राजा।'[7]

---

१. भागवतपुराण (१२।२।२६),
२. ब्रह्माण्ड पु० (२।३।७४।२२)।
३. श्री विष्णुपुराण (४।२४।१०४) गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित संस्करण;
४. ब्रह्माण्ड पु० (२।३।७४। २२८),
५. श० ब्रा० (२।१।२।३),
६. भारतीय ज्योतिष, पृ० १८१;
७. श० ब्रा० (१२।९।३।३),

'अथ हस्माह स्वर्णजिन्नाग्नजितः । नग्नजिद्वा गान्धारः ।'[1]

शतपथब्राह्मण में चरकाचार्य (वैशम्पायन) का बहुधा उल्लेख है, जो व्यास का शिष्य और याज्ञवल्क्य बाजसनेय का गुरु था, वैशम्पायन ने महाभारत का श्रावण जनमेजय परीक्षित् को कराया था। और भी अनेक महाभारतकालीन पुरुषों के नाम शतपथब्राह्मण में हैं, हो क्यों नहीं, जब व्यासप्रशिष्य याज्ञवल्क्य ही तो शतपथब्राह्मण के रचियता थे, अतः ज्योतिष के प्रमाण से कृत्तिका द्वारा भी महाभारतयुद्धतिथि ३०८० वि०पू० सिद्ध होती हैं।

अर्वाचीन संवत्

युधिष्ठरसंवत्—भारतोत्तरकाल में इस देश में अनेक संवत् प्रचलित हुए, जिनमें सर्वप्रथम युधिष्ठिरसंवत् था, जो युद्ध के पश्चात् ठीक युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के दिन से प्रारम्भ हुआ, इसका प्रसिद्ध उल्लेख वराहमिहिर ने किया है—

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ ।
षड्द्विकपचद्वियुक्तः शककालस्तस्य राज्ञश्च ।

युद्ध के अन्तिम अर्थात् १८वें दिन बलराम तीर्थयात्रा करके लौटे—

चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै ।
पुष्येण संप्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः । (गदापर्व ५।६)

"गणितानुसार सायन और निरयन नक्षत्रों में इतना अन्तर शकारम्भ के ५३०६ वर्ष पूर्व अर्थात् कलियुग का आरम्भ होने के २१२७ वर्ष पूर्व आता है।"[2]

कलिसंवत् और युधिष्ठिरसंवत् में ३६ वर्ष का अन्तर था, क्योंकि युधिष्ठिर का शासनकाल ३६ वर्ष था, अतः वर्तमान गणित के अनुसार यह समय ३०८० वि०पू० आता है। अभी तक के प्रमाणों के अनुसार युद्ध और युधिष्ठिरसंवत् की यही तिथि है, परन्तु ज्योतिर्गणना से यह कुछ और प्राचीन हो जाती है।[3]

कलिसंवत् पर पहिले ही विस्तार से विचार कर चुके हैं। प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार अलबेरूनी के प्राचीन भारत के अनेक संवतों का वर्णन किया है, तदनुसार संक्षेप में उनका परिचय लिखेंगे।

कालयवनसंवत्—इसका संवत् द्वापरान्त में प्रचलित हुआ था। संभवतः जब श्रीकृष्ण ने कालयवन या कशेरुमान् यवन का वध[4] किया था उसी दिन से यह संवत् चला होगा। इस यवन को किसी पश्चिमीदेश से बुलाने के लिए जरासंध ने सौभाधिपति शाल्व को विमान द्वारा भेजा था कि वह कृष्ण को मार सके—

---

१. श० ब्रा० (८।१।४।१०)।
२. भारतीय ज्योतिषि (पृ० १७०), बालकृष्ण दीक्षित ।
३. डा० पी०वी०वर्तक (पूना) के अनुसार महाभारतयुद्ध ५५६१ ई० पू० हुआ इन्होंने अपना यह मत इतिहासों के अनेक सम्मेलनों में दुहराया है।
४. इन्द्रद्युम्नो हतः कोपाद् यवनश्च कशेरुमान् (महाभारत वनपर्व)

अद्य तस्य रणे जेता यवनाधिपतिर्नृपः।
स कालयवनो नाम अवध्यः केशवस्य ह ॥
मन्यध्वं यदि वा युक्तां नृपा वाचं मयेरिताम्।
तत्र दूतं विसृजध्वं यवनेन्द्रपुरं प्रति।
श्रुत्वा सौभपतेर्वाक्यं सर्वे ते नृपसत्तमाः।
कुर्म इत्थमब्रुवन् हृष्टा जरासंधं महाबलम् ॥
यवनेन्द्रो यथा याति यथा कृष्णं विजेष्यति।
यथा वयं च तुष्यामस्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥[1]

इसी तथ्य का अनभिज्ञ अलबेरूनी लिखता है—The Hindus have an era Kalayavana, regarding which I have not been able to obain full information, they place itsepoch in the end of the last Dwapara yuga—They here mentioned yavan scverally oppressed both their country and their religion."[2] हरिवंशपुराण (२) अध्याय ५२=५८ पर्यन्त) में उपरोक्त कालयवन का विस्तार से वर्णन है। इसका वध श्रीकृष्ण के चातुर्य से भारतयुद्ध के प्रायः एक शती पूर्व हुआ, अतः कालयवनसंवत्, युधिष्ठिरसंवत् से भी लगभग सौ वर्षपूर्व प्रचलित हुआ था।

श्री हर्षसंवत्—यह श्री हर्ष भूमि उत्खनन करवाकर प्राचीन कोश की खोज करता था। अलबेरूनी इसको विक्रम से ४०० पूर्व हुआ लिखता है—Between Shri Harsha and Vikramaditya their is interval of 400 years'. पं० भगवद्दत्त ने कल्हणादि के प्रमाण से लिखा है कि शूद्रक विक्रम का नाम ही श्रीहर्ष था।[4] यह मत प्रमाणाभाव से त्याज्य है—

तत्रानेहस्युज्जयिन्यां श्रीमान्हर्षपराभिधः।
एकच्छत्रश्चक्रवर्ती विक्रमादित्य इत्यभूत्।[5]

अतः हर्षसंवत् ४०० वि०पू० प्रचलित हुआ।

विक्रमसंवत्—यह प्रसिद्ध विक्रमसंवत् है जो शकसंवत् से १३५ वर्षपूर्व और ईस्वी सन् से ५७ वर्षपूर्व प्रचलित हुआ। अलबेरूनी इस विक्रम का नाम भ्रान्ति से चन्द्रबीज लिखता है—In the book of Srudhava by Mahadeva, I find as his name Chandrabija.' यहाँ भ्रम से चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य शकारि द्वितीय को ही 'चन्द्रबीज' कहा गया है जो शकसंवत् (१३५ विक्रम से) का प्रवर्तक था।

१. हरिवंश (२।५२।२५,३१,३२,४५),
2. Alberuni's India (p. 5),
३. वही, पृ० (५);
४. भा० वृ०इ० भाग-२ (पृ० २९५),
५. राजतरंगिणी (२५१),
6. Alberuni's India (p. 6), वही।

विक्रमसंवत्प्रवर्तक विक्रमादित्य और था, जो शूद्रकवंश (जाति) था—इसके विषय में समुद्रगुप्त ने श्रीकृष्णचरित के आरम्भ में लिखा है—

वत्सरं स्वं शकान् जित्वा प्रावर्तयत वैक्रमम् ।।[१]

इसी विक्रम के विषय में प्रभावकचरित में लिखा है—

शकानां वंशमुच्छेद्य कालेन कियताऽपि हृ।
राजा श्रीविक्रमादित्यः सार्वभौमपमोऽभवत् ।।
मेदिनीमनृणां कृत्वाऽचीकरद्वत्सरं निजम् ।।[२]

'शूद्रक' पद का रहस्य और तज्जन्य भ्रान्तिनिराकरण—'शूद्रक' पद अनेक राजाओं ने धारण किया। यह एक भ्रान्ति प्रतीत होती है कि यदि 'शूद्रक' पद 'शूद्र' का पर्यायवाची हैं तो ऐसे अपमानजनक शब्द को चक्रवर्ती सम्राटों ने क्यों धारण किया। इस रहस्य को न समझकर पं० भगवद्दत्त लिखते हैं—"श्री नन्दलाल दे का मत है कि क्षुद्रक ही शूद्रक थे। हमें इसके मानने में कठिनाई प्रतीत होती है। महाभारत आदिग्रन्थों में क्षुद्रक और मालव तथा शूद्र और आभीर साथ-साथ एक-एक समास में आते हैं। क्षुद्रक और आभीर का समास हमारे देखने में नहीं आया।"[३] इस अबोधगम्यता का कारण यह है कि पण्डितजी 'शूद्रक' शब्द को शूद्र का पर्याय समझते हैं। इस सम्बन्ध में श्री नन्दलाल दे का मत बिल्कुल सत्य है 'कि 'क्षुद्रक' ही शूद्रक थे।"[४] सत्यता यह है कि 'शूद्रक' शब्द 'शूद्र' का पर्याय नहीं है, यदि शूद्रक शब्द घृणित होता तो मालवा के सम्राट् इस पदवी को धारण नहीं करते। काशिका में (५।३।११३) ही लिखा है कि शूद्रकमालवगण ब्राह्मणराजन्यवर्जित आयुधजीवी थे। महाभारत, इस सम्बन्ध में प्रमाण है कि वे शाल्व असुरों के वंशज थे जिनका राजा द्युमत्सेन था। वे 'सावित्रीपुत्र' भी कहे जाते थे, उत्तरकालीनपरम्परा में क्षुद्रकमालव अपने को ब्राह्मण ही मानने लगे थे—यथा विक्रमादित्य शूद्रक के विषय में बताया गया है—

द्विजमुख्यतमः कविर्बभूव प्रथितः शूद्रक इत्यागधसत्वः।[५]
पुरन्दरबलो विप्रः शूद्रकः शास्त्रशस्त्रवित्।[६]

अतः 'शूद्रक' को 'शूद्र' का पर्याय मानने की आवश्यकता नहीं है, इससे पं० भगवद्दत्त कठिनाई दूर हो जाती है कि 'शूद्रक' और आभीर का समास हमारे देखने में नहीं आया। अतः आभीर ही शूद्र माने जाते थे, शूद्रक नहीं। फिर क्षुद्रकों को शूद्रक

---

१. कृष्णचरित (राजकविवर्णन, श्लोक ११)
२. प्रभावकचरित, कालकाचार्य (कथा ९०, ९२),
३. भा बृ० इ० भाग २ (पृ० १६०)
४. भौगोलिक कोश, 'शूद्रक' शब्द नन्दलाल दे कृत।
५. मृच्छकटिक (प्रारम्भ), (२) श्रीकृष्णचरित (श्लोक ६),
६. किं तर्हि बहवः शूद्रका राजानः कवयो वा बभूवुरेकस्यैव चरितं नानारूपं दरीदश्यत इति संशयं समाधातुं यथामतिः किमप्यत्र ब्रूमहे।"

(कृष्णचरित पृ० ४१)

क्यों कहा गया। इसका कारण है भाषाविकार। क्षुद्रकमालवों के देश मालव में प्राकृत भाषा का अधिक प्रसार और प्रचार था, रामिल सौमिल कवियों ने शूद्रकचरित प्राकृत भाषा में ही लिखा था—स्वयं शूद्रकरचित मृच्छकटिक में प्राकृतभाषाप्रयोगों का बाहुल्य उपलब्ध होता है। अतः संस्कृत शब्द 'क्षुद्रक' को प्राकृत में 'शूद्रक' कहा गया। यह 'शूद्रक' व्यक्तिगत नाम नहीं है, जातिगत नाम है, इसीलिए अनेक क्षुद्रक मालवनरेशों का विरुद (नाम) 'शूद्रक' हुआ। पण्डित राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री ने शंका व्यक्त की है कि क्या शूद्रक अनेक थे। निश्चय ही क्षुद्रक (शूद्रक) मालव जाति में 'शूद्रक' नाम के अनेक राजा हुए, जिस प्रकार अनेक हैहय राघव, आवन्त्य, या वसिष्ठ या भारद्वाज हुए। इसी प्रकार 'शूद्रक' जातिवाचक नाम था, इसीलिए भ्रान्ति उत्पन्न होती है कि 'शूद्रक' एक था या अनेक, निश्चय ही क्षुद्रकों का प्रत्येक शासक क्षुद्रक या शूद्रक कहलाता था। नामसाम्य से अनेक शूद्रकनरेशों का चरित एक प्रतीत होता है। कल्हण भी इस भ्रमपाश में बद्ध हो गया।[1] अतः अनेक शूद्रकों (क्षुद्रकों) सम्राटों में दो शूद्रकसम्राट् विख्यात हुए, दोनों ने शकों या म्लेच्छों को जीत कर विक्रमशकसंवत् चलाया, क्षुद्रक और मालव एक ही जाति के थे अतः 'मालव' नाम क्षुद्रक की अपेक्षा अधिक प्रयुक्त हुआ है शूद्रकसंवत् को ही मालवसंवत् कहा जाता था। इसी के संवत् को **मालवसंवत् या कृतसंवत् कहते है।** मन्दसौर के प्रसिद्ध शिलालेख में इसी प्रथम श्रीशूद्रकसंवत् (मालवयाकृतसंवत्) का प्रयोग हुआ है, मालवानां गणस्थित्या याते शतचतुष्टये। त्रिनवत्यकेऽब्दानामृतौ सेव्यघनस्वने। मंगलाचारविधिना प्रासादोऽयं निवेशितः। बहुना समतीतेन कालेनान्यैश्च पार्थिवैः। व्यशीर्यतैकदेशोऽस्य भवनस्य तनोऽधुना। वत्सरशतेषु पञ्चसु विंशत्यधिकेषु नवसु चाब्देषु। यातेषु अभिरम्यतपस्यमासशुक्लद्वितीयायाम्॥

मालवगणराज्य की स्थापना किसी मालवनाथ या क्षुद्रक या अवन्तिनाथ ने विक्रमादित्य से ३४३ वर्ष पूर्व की थी, न कि ४०० वर्षपूर्व जैसाकि अलबेरूनी ने लिखा है। इस सम्बन्ध में यह परम्परा अधिक विश्वसनीय प्रतीत होती है, जिसका उल्लेख कर्नल विल्फर्ड ने किया है—"From the first year of Sudraka to the first year of Vikramaditya .....there are 343 years and only fifteen Kings to fillup that Space"[2] इस परम्परा से ज्ञात होता है कि शूद्रकनामधारी १५ राजा हुए थे, जिनका अन्तर ३४३ वर्ष था, पन्द्रहवाँ राजा प्रसिद्ध विक्रमसम्वत्सर-प्रवर्तक विक्रमादित्य था। प्रथम शूद्रक इससे ३४३ वर्ष पूर्व हुआ जिससे गणतन्त्र स्थापना की।[3] कुमारगुप्त के समकालिक बन्धुवर्मा का समय १५० वि० सं० में था,

१. शकारिविक्रमादित्य इति स भ्रममाश्रितैः। अन्यैरेवमन्यथालेखि विसंवादि कदर्थितम् (राजतरंगिणी)।

2, Asiatic Researches Vol IX. p. 210, 1809. A. D.;

३. शूद्रकों या क्षुद्रकों ने अनेक युद्ध जीते थे—
'एकाकिभिः क्षुद्रकैर्जितम् असहायैरित्यर्थः (महाभाष्य १।१।२४),
यह परम्परा शूद्रकों ने दीर्घकाल तक जारी रखीं।

जब उसने उक्त भवन का निर्माण कराया, उसके ५२९ वर्ष व्यतीत होने पर ६७९ वि० सं० में इसका जीर्णोद्धार हुआ। अत: कृतसम्वत् या श्रीहर्ष सम्वत् या मालव सम्वत् को विक्रम सम्वत् मानना महती भ्रान्ति है जैसा कि रैप्सन जायसवाल आदि मानते हैं।

अत: शूद्रक-क्षुद्रक एवं विक्रमसम्वत्सम्बन्धी उपर्युक्तविवेचन से एतत्सबन्धी भ्रम समाप्त हो जाना चाहिए। निम्नलिखित गुप्तकाल और शकसम्बन्धीविवेचन से उक्त विषय का और स्पष्टीकरण होगा।

शकसम्वत् का गुप्तराजा विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त से सम्बन्ध और गुप्तों का राज्यकाल—पं० भगवद्दत्त गुप्त राजाओं को ही विक्रमसम्वत् (५७ ई० पू०) का प्रवर्तक मानते हैं, उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ भारतवर्ष का बृहद् इतिहास 'में प्रभूत सामग्री एकत्र की है, उनका परिश्रम अभूतपूर्व, स्तुत्य एवं अभिनन्दनीय है, लेकिन वे इस धारणा के साथ कि 'सम्भवत: गुप्त ही विक्रम थे' इस अनिश्चय के साथ गुप्तों के सम्बन्ध में निर्भ्रान्ति निर्णय नहीं कर सके। उन्होंने लिखा "भारतीय इतिहास में गुप्तों का वंश विक्रमों का वंश है। समुद्रगुप्त को विक्रमांक चन्द्रगुप्त द्वितीय को विक्रमांक अथवा विक्रमादित्य और स्कन्दगुप्त को विक्रमादित्य कहते हैं। अत: प्रसिद्ध विक्रमसम्वत् का सम्बन्ध इन्हीं विक्रमों से जुड़ता है।'[1] कुछ विद्वान् गुप्तों को सिकन्दर का समकालीन मानकर उनका समय ३२७ ई० पू० में रखते हैं, यथा श्री कोटा वेंकटाचमम् ने अपनी पुस्तक 'दी एज आफ बुद्ध, मिलिन्द एण्ड किंग अंतियोक एण्ड युगपुराण' के पृष्ठ २ पर लिखते हैं—सिकन्दर का आक्रमण ई० पू० ३२६ में हुआ वह चन्द्रगुप्त गुप्तवंश का है, जिसका सम्बन्ध ईसा पूर्व ३२७-३२० वर्ष से है।" पुनर्वेलिखते हैं गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त को सिकन्दर का समकालीन मगधनरेश मान लेना, हिन्दुओं, बौद्धों, और जैनियों के प्राचीनकालीन पवित्र और धार्मिक साहित्य में वर्णित सभी प्राचीनतिथियों से मेल खाता है।" (वही पृ० ३),

उपर्युक्त दोनों विद्वानों (भगवद्दत्त और वेंकटाचलम्) के मत सर्वथा अयुक्त और पुराणगणना के सर्वथा विपरीत है। लेकिन आजकल प्राय: सर्वमान्य प्रचलित मत उपर्युक्त दोनों मतों से भी असत्य और घोर भ्रामक है, जिसका प्रवर्तन फ्लीट के आधार पर आधुनिक इतिहासकारों ने किया है। एक प्रसिद्ध लेखक हेमचंद्ररायचौधरी, चन्द्रगुप्त प्रथम का समय ३२० ई० में मानते हैं।[2] फ्लीटादि गुप्तों का प्रारम्भ ३७५ विक्रम सम्वत् से मानते हैं। अब देखना है कि किन आधारों पर फ्लीटादि ने यह तिथि घड़ी। इसका मूल है प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार अलबेरूनी का यह प्रमाणवचन— "As regards the Gupta Kala, people say that the Guptas were

---

१. भारतवर्ष का बृ० इ० भाग (पृ० १७१),

२. घटोत्कच के पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम इस वंश के प्रथम महाधिराज थे। वे सन् ३२० के आसपास सिंहासनरूढ़ हुए होंगे।" प्राचीन भारत का राज० इति०, (पृ० ३९३),

wicked powerful people, and that when they ceased to exist, this date used as the epoch of an era. It Seems that Valabha was the last of them, because the epoch of the era of the Guptas follow like of the Vallabhera 241 years later than the Sakakala" स्पष्ट हैं। अलबेरूनी से गुप्तकाल के अन्त और वलभीभंग की एक ही तिथि लिखी है —३७५ वि० सम्वत्। अलबेरूनी के आधार पर इस कालको गुप्तकाल का आरम्भ कौन विज्ञपुरुष मानेगा। वलभभंगकाल को गुप्तकाल का आरम्भ मानना बुद्धि का दिवाला निकालना है।

शकसम्वत्चतुष्टयी

इस सम्बंध में ध्यातव्य है कि प्राचीनभारत में न्यूनतम चार शकसंज्ञक सम्वत् प्रचलित थे, दो शकसंवत् शकराज्यों के आरम्भ होने पर चले और दो शकसंवत् शकराज्यों के दो बार अन्त होने पर चले, इस शकाब्दचतुष्टयी पर यहाँ संक्षिप्त विचार करते हैं।

प्रथमशकसम्वत्—प्राचीनतम ज्ञात शकसंवत् ५५४ वि० पू० से प्रारम्भ हुआ था, जिसका सर्वप्रथम उल्लेख शूद्रकविक्रमसमकालिक प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिरकृत बृहत्संहिता (१३।३) में मिलता है---

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथिवींयुधिष्ठिरेनृपतौ।
षड्द्विकद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥

युधिष्ठिर का राज्यारम्भ ठीक ३०८० वि० पू० हुआ, इसमें वराहमिहिरोक्त २५२६ वर्ष घटाने पर ५५४ वर्ष होते हैं, अतः ५५४ वि० पू० से शकसम्वत् का प्रारम्भ हुआ।

यद्यपि, इस प्रथम शकसम्वत् का प्रवर्तक कौन शकराज था, यह निश्चित एवं निर्णायक प्रमाण अभीतक अनुपलब्ध है, तथापि हमारा अनुमान है कि नहपान का पूर्वज और क्षहरातवंश का प्रतिष्ठाता शकराज आम्लाट ही होगा जिसका उल्लेख युगपुराण में प्रथम शकसम्राट् के रूप में है—

आम्लाटो लोहिताक्षेति पुष्पनाम गमिष्यति।
ततः स म्लेच्छ आम्लाटो रक्ताक्षो रक्तवस्त्रभृत्। (युगपुराण, १३३, १३६)

युगपुराण से आभास होता है कि यह शकराजा कण्वों के अन्त और सातवाहनों के प्रारम्भकाल में हुआ।

पुराणों में १८ शकराजाओं का उल्लेख मिलता है। परन्तु प्राचीन बौद्धग्रन्थ मञ्जुश्रीमूलकल्प में ३० और १८ शकराजाओं का उल्लेख है—

शकवंशस्तदा त्रिशत् मनुजेशा निबोधत।
दशाष्ट भूपतयः ख्याताः सार्धभूतिकमध्यमाः।
(म० मू० क० श्लोक ६१२, ६१३)

1. Alberuni's India (p. 7)

पुराणोक्त १८ शकराजा उत्तरकालीन चष्टनवंश के थे, चष्टन के पिता का नाम भूतिक (भूमिक या घस्मोतिक) था, जिसका शिलालेखों में उल्लेख मिलता है। चष्टनशकों से पूर्व १२ क्षहरात शक राजा हुए, जिनमें प्रथम आम्लाट और अन्तिम नहपान था। चष्टनशकों का राज्यकाल पुराणों में ३८० वर्ष लिखा है। अन्तिम शकराज का हन्ता चन्द्रगुप्त साहसांक विक्रमादित्य था, शकवध के कारण ही चन्द्रगुप्त को साहसांक और विक्रमादित्य उपाधि मिली थी, इसी शकवध के उपलक्ष में उसने १३५ विक्रम सम्वत् में अन्तिम शकसम्वत् चलाया, यह पूर्वपृष्ठों पर प्रमाणपूर्वक लिखा जा चुका है। अतः चष्टनशक का राज्यारम्भ २४५ वि० पू० और अन्त १३५ विक्रमसम्वत् में हुआ।

चष्टनशकों से पूर्व १२ क्षहरातशकों का राज्यकाल लगभग ३०० वर्ष था, गौतमीपुत्र शातकर्णी ने २६० वि० पू० के आसपास अन्तिम क्षहरात शकसमाट् नहपान का वध किया था।[1] अतः क्षहरातशकवंश के प्रवर्तक आम्लाट का समय ५५४ वि० पू० निश्चित होता है, जो चष्टन से लगभग ३०० वर्ष पूर्व हुआ।

द्वितीय शकसम्वत्—२४५ वि० पू० से आरम्भ —भूतिक और चष्टन सहित १८ शक राजाओं ने ३८० वर्ष राज्य किया—

शतानि त्रीणि अशीतिश्च ।
शका अष्टादशैव तु ।[2]

इस वंश के अठारह राजाओं में अधिकांश का उल्लेख शिलालेखों में मिलता है और इस शकराजसम्वत् ३१० का शिलालेख प्राप्त हो चुका है, अतः पार्जीटर की यह कल्पना पूर्णतः ध्वस्त हो जाती है कि 'शतानित्रीणि अशीतिश्च' का अर्थ '१८३' है।[3] भ्रामक एवं षड्यन्त्रपूर्ण कल्पनाओं के कारण पाश्चात्य लेखकों की गणना में सामञ्जस्य नहीं बैठता, यह अन्यत्र भी स्पष्ट होगा।

चष्टनशकराज्य का अन्त—अन्तिम शकराजा का वध करके चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने किया, यह प्राचीन भारत में सर्वविदितसर्वसामान्य तथ्य था, परन्तु गुप्तों के सम्बन्ध में भ्रामक कल्पना के कारण आज तक कोई सोच ही नहीं सका कि शकसम्वत् का प्रवर्तक चन्द्रगुप्त साहसांक था।

तृतीयशकसम्वत् विक्रमसम्वत्—इस 'शक' सम्वत् को ५७ वर्ष ईसापूर्व क्षुद्रकमालव नरेश शूद्रक विक्रमादित्य ने शकों पर अपनी विजय के उपलक्ष में चलाया था। इस पर विस्तृतविचार 'शूद्रकगर्दभिल' प्रकरण में किया जायेगा। परन्तु एक तथ्य ध्यातव्य है कि जैनवाङ्मय में शकसंवत् और विक्रमसंवत् को बहुधा एक माना गया है।[4]

चतुर्थ, प्रसिद्ध शक (शालिवाहन) सम्वत्—यह अपने जन्मकाल (१३५ वि०

---

१. खहरातवसनिरवसेसकरस (नासिकगुहालेख, पंक्ति ५,६)
२. पुराणपाठ, पृ० ४५,
३. पुराणपाठ, भूमिका (XXIV-XXV);
४. भा० बृ० इ० भा २, गुप्तकाल का प्रारम्भ, पृ० ३३२-३३४;

श०) से आजतक सर्वाधिक प्रचलित सम्वत् था और इसको अब सरकार ने 'राष्ट्रीय सम्वत्' के रूप में मान्यता दी है। परन्तु इसके प्रारम्भ के संबंध में आज के इतिहासकारों को सर्वाधिक भ्रान्तियाँ है, इस असत्यता या भ्रान्ति का दिग्दर्शन श्री वासुदेव उपाध्याय के निम्न वाक्यों से होगा—"कुछ विद्वानों का मत है कि रुद्रदामन् (ई० स० १५० ?) के पितामह चष्टन शकवंश का प्रथम महाक्षत्रप हुआ और सम्भवत: उसीने इस गणना का प्रारम्भ किया।······यह माना जा सकता है कि कुषाण कनिष्क द्वारा ई० स० ७८ में गद्दी पर बैठने के कारण इस गणना का प्रारम्भ हुआ हो।············ फलीट तथा कैनेडी, कनिष्क को इसका संस्थापक नहीं मानते। फर्गुसन, ओलडेनवर्ग, बनर्जी तथा रायचौधरी का मत है कि कनिष्क ने ही सन् ७८ में शकसम्वत् का प्रारम्भ किया हो।"[1]·········कोई इस सम्वत् का सम्बन्ध नहपान से जोड़ता है, कोई कनिष्क से, कोई चष्टन, तो कोई सातवाहनों से, स्पष्ट है कि ये सभी मत निराधार कल्पना से अधिक कुछ नहीं हैं।

समतीत शककाल—परन्तु आधुनिक इतिहासकार सभी साक्ष्यों को त्यागकर अपनी हठवादिता पर अड़कर, चालुक्यनरेश पुलकेशी, द्वितीय के अयहोल शिलालेख के निम्न कथन के आधार पर, कनिष्क या चष्टन को, शकराज्यारम्भ से, इस चतुर्थ शकसम्वत् का प्रवर्तक मानते हैं—

पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पंचशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्।"[2]

हमें यह सन्देह है कि उक्त शिलालेख के उक्त वाक्य 'समतीतासु' के स्थान पर 'समतीतानाम्' को परिवर्तित किया गया है, क्योंकि इतने प्राचीनकाल (६५३ शकसम्वत्) में इस सम्वत् के संबंध में शिलालेखकर्ता ऐसी भूल नहीं कर सकते थे। क्योंकि इस काल (६५३ शकसम्वत्) से भी २४० वर्ष पश्चात् शकसम्वत् ७९३ के अमोघवर्ष के संजान ताम्रपत्र लेख में इसको 'शकनृपकालातीतसम्वत्सर ही कहा है—

"शकनृपकालातीतसंवत्सरशतेषु नवतृतयाधिकेषु।"[3]

अत: पुलकेशी द्वितीय के शिलालेख का सही पाठ यह है—

"समासु समतीतानां शकानामपि भूभुजाम्"

षष्ठी विभक्ति (समतीतानां) को सप्तमी (समतीतासु) में बदलने के कारण यह महती भ्रान्ति हुई और जिन शकराजाओं का राज्यकाल २४५ वि०पू० प्रारम्भ हुआ, उनका आरम्भकाल उनके अन्तकाल १३५ वि०सं० में माना जाने लगा।

प्राचीन शिलालेखकों और भट्टोत्पलसदृश प्राचीन ज्योतिषियों एवं अलबेरूनी को भी भ्रान्ति नहीं थी कि चतुर्थ शकसंवत् शकराज्य की पूर्णसमाप्ति पर चला। इस सम्बन्ध में निम्न साक्ष्य द्रष्टव्य है—

---

१. प्रा० भा० अ० अ०, पृ० २२०;

२. ए० इ०, भा० ६, पृ० १,

३. प्रा० भा० अ०अ० द्वि० ख० मूल पृ० १५०,

(१) नन्दाद्रीन्दुगुणस्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सराः ।

(२) शकान्ते शकावधौ काले ।

(३) कलेर्गोऽगैकगुणः शकान्तेऽब्दाः ।

(४) श्रीसत्यश्रवा ने आगे सुदृढ़ प्रमाणों से सिद्ध किया है कि 'शकनृपकालातीतसंवत्सरः' का अर्थ यही है कि यह संवत्सर शकनृप के काल के पश्चात् चला ।"[1]

इस सम्बन्ध में प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों को कोई भ्रम नहीं था—"शका नाम म्लेच्छा राजानस्ते यस्मिन् काले विक्रमादित्यदेवेन व्यापादिताः स शकसम्बन्धीकालः लोके शक इत्यच्यते ।"[2]

इस सम्बन्ध में अलबेरूनी का मत उसके ग्रन्थ के पृष्ठ ६ पर द्रष्टव्य है—"Vikramaditya from whom the era got its name is not identical with that one who killed Saka, but only a namesake of his." अतः अलबेरूनी और उसके समय भारतीय विद्वानों को कोई संदेह नहीं था कि उपर्युक्त शकसंवत् 'विक्रमादित्य' ने चलाया था और यह विक्रमादित्य सिवाय गुप्त सम्राट् साहसांक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के अतिरिक्त और कोई हो ही नहीं सकता । जिसका 'शक सम्राट् के वध' से घनिष्ठसम्बन्ध प्राचीनवाङ्मय में अतिप्रसिद्ध है । अब यह देखना है कि शकसंवत् का प्रवर्तक कौन था, किस प्रकार प्रसिद्ध शालिवाहन शक का १३५ वि०सं० से प्रारम्भ हुआ । शकसंवत् के प्रारम्भ के विषय में आधुनिक पाश्चात्य और भारतीय लेखक 'अंधेनैव नीयमाना यथान्धाः' उक्ति को चरितार्थ करते हुए भटकते रहे हैं । कुछ लोगों ने इसका सम्वत् कुषाण सम्राट् कनिष्क से जोड़ा है तो कुछ लोग इसका सम्बन्ध चष्टनादिशकों से जोड़ते हैं । इस सम्बन्ध में विभिन्न मत दृष्टव्य हैं—कनिष्क की तिथि के सम्बन्ध के लिये—

(१) डा० फलीट के मतानुसार काडफिसेस वंश के पूर्व कनिष्क राज्य करता था । ईसापूर्व ५८ में उसने विक्रमसंवत् की स्थापना की ।[3]

(२) मार्शल, स्टेनकोनो, स्मिथ तथा अनेक दूसरे विद्वानों के अनुसार कनिष्क सन् १२५ ई० अथवा १४४ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ ।[4]

(३) अभी हाल में ग्रिशमैन ने कनिष्क की तिथि १४४—१७२ ई० निर्धारित की है ।[5]

(४) डा० आर०सी० मजूमदार का मत है कि कनिष्क ने सन् २४८ के त्रैकूटक कलचुरिचेदिसंवत् की स्थापना की ।[6]

(५) फर्गुसन, ओल्डनबर्ग, थामस, बनर्जी, रैप्सन, जे०ई० वान लो हुइजेन डीलीऊ बैटनौफर तथा अन्य दूसरे विद्वानों के अनुसार कनिष्क ने ७८ ई० में शकसम्वत् की स्थापना की ।"[7]

---

१. द्र० भा० बृ० भा०, पृ० १७४-१७७)

२. खण्डखाद्यक, वासनाभाष्य आमराज, पृ० २;

३-७. प्रा० भा० रा० इ० (रायचौधुरी पृ० ३४४-३४६)

रैप्सन आदि शकसंवत् का सम्बन्ध नहपान महाक्षत्रप शकराज से जोड़ते हैं— प्रो० रैप्सन इस मत से सहमत हैं कि नहपान की जो तिथियाँ दी गई हैं, वे सन् ७८ ई० से आरम्भ होनेवाले शकसंवत् से सम्बन्धित हैं ।[1]

तथाकथित कुछ विद्वान् शकसंवत् का सम्बन्ध शातकर्णि (सातवाहन आन्ध्रों से जोड़ते हैं—(१) गौतमीपुत्र शातकर्णि की तिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में बहुत मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि उसके लिए जो उपाधियाँ वरवारणविक्रम, चारुविक्रम···अर्थात् शकों का विनाश करनेवाला दी गई हैं, उनसे विदित होता है कि पौराणिककथाओं में आने वाला राजा विक्रमादित्य वही था, जिसने ईसापूर्व ५८ वाला विक्रम संवत् चलाया।"[2]

कुछ लोग शालिवाहनशक के नाम पर सातवाहनों से शकसंवत् का सम्बन्ध जोड़ते हैं।

इस प्रकार शकसंवत् और विक्रमसम्वत्, आधुनिक इतिहासकारों को ऐसी कामधेनु मिल गई, जिसमें सभी राजाओं की दुग्धरूपीतिथियाँ काढ़ते हैं। एक झूठ को मानने का जो परिणाम होता है, वह प्रत्यक्ष है कि सभी जानबूझकर भटक रहे हैं और सत्य को नहीं मानते; जो 'सत्य' प्राचीनग्रन्थों और परम्परा में कथित हैं, उसे मानने में कठिनाई आती है—'मोहाद्, गृहीत्वासद्ग्राहान् प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः। (गीता) इस प्रकार अज्ञान या मोहवश असन्मतों का प्रवर्तन और ग्रहण कर रखा है।

शकसंवत् के सम्बन्ध में सत्यमत क्या है, इस सम्बन्ध में अब प्राचीन ग्रन्थों के मूलवचन द्रष्टव्य हैं—

(१) शका नाम म्लेच्छा राजानस्ते यस्मिन् काले विक्रमादित्येन व्यापादिताः स शकसम्बन्धीकालः शक इत्युच्यते।[3]

(२) शकान्ते शकावधौकाले।[4]

(३) शकनृपकालातीतसंवत्सरः।

(सत्यश्रवाकृत शकासइनइन्डिया, पृ० ४४-४६)

(४) अरिपुरे च परकलत्रकामुकं कामिनीवेषगुप्तश्चन्द्रगुप्तः शकपति मशातयत्।' (बाणभट्टकृत हर्षचरित षष्ठ उच्छवास पृ० ६९६)

(५) शकभूपरिपोरनन्तरं कवयः कुत्र पवित्रसंकथाः।

(अभिनन्दकृत रामचरित)

ख्यातिं कामपि कालिदासकृतयो नीताः शकारातिना।

(अभिनन्दकृत रामचरित)

---

१. वही (पृ० ३५९),

२. वही (पृ० ३६६)

३. खण्डकखाद्यवासनाभाष्य आमराजकृत, पृ० २, तथा बृहत्संहिता।
(८।२० भट्टोत्पलटीका)

४. श्रीपति की मक्किभटकृतटीका, ज०इ०हि० मद्रास, भाग १६ पृ० २५९।

(६) स्त्रीवेशनिह्नुतश्चन्द्रगुप्तः शत्रोः स्कन्धावारमरिपुरं शकपतिवधायागमत् । (भोजकृत शृंगारप्रकाश)

(७) हत्वा भ्रातरमेव राज्यमहरद् देवीं च दीनस्ततो लक्षं ।
कोटिमलेखयन् किल कलौ दाता स गुप्तान्वयः ।
(एपि० इण्डिया, भाग १८, पृ० २४८)

(८) विक्रमादित्यः साहसांकः शकान्तकः ।
(अमरकोश क्षीरस्वामीटीका २।८।२)

(९) व्याख्यातः किल कालिदासकविना श्रीविक्रमाङ्को नृपः ।
(सुभाषितावली)

(१०) भ्रात्रादिवधेनफलेन ज्ञायते यदयमुन्मत्तश्छद्मप्रचारी चन्द्रगुप्त इति (चरकसंहिता, वि० स्था० चक्रपाणिटीका ४।८) ।

(11) The epoch of the era of Saka or Sakakala falls 135 years later than that of Vikramaditya. They have mentioned Saka tyrannised over their Country between the river Sindh and ocean.... The Hindus had much suffer from him, till at last they received help from the east, when Vikramaditya marched against him, put him to plight and killed him.... Now this date became famous, as people rejoiced in the news of the death of the tyrant, and was used as the epoch of an era, especially by the astronomers. They honour the conquerer by adding Shri to has name, so as to say shri Vikramaditya." (Alberuni's India p. 6);

(12) In the book "Srudhava" by Mahadeva, I find as his name Chandrabija." (चन्द्रबीज=चन्द्रवीर=चन्द्रगुप्त) वही पृ० ६)

(१३) "जब रासल (समुद्रगुप्त) की मृत्यु हो गई तो उसका ज्येष्ठपुत्र रव्वल (रामगुप्त) राजा बना । उस समय एक राजा की बड़ी बुद्धिमानी पुत्री (ध्रुवस्वामिनी) थी । बुद्धिमान् और विद्वान् लोगों ने कहा था कि जो पुरुष इस कन्या से विवाह करेगा··· । परन्तु बरकभारीज के अतिरिक्त कोई उस कन्या को पसन्द नहीं आया । ···जब उनके पिता रासल को निकाल देने वाले विद्रोही राजा ने इस लड़की की कहानी सुनी तो उसने कहा 'जो लोग ऐसा कर सकते हैं, क्या वे इस प्रतिष्ठा के अधिकारी हैं ? वह सेना लेकर आ गया और उसने रव्वाल को भगादिया । रव्वाल अपने भाइयों और सामन्तों के साथ एक पर्वत शिविर पर चला गया जिस पर दृढ़ दुर्ग बना हुआ था ।···जब दुर्ग छीनने वाला था तो रव्वाल ने संधिप्रस्ताव भेजा तो शत्रु ने कहा 'तुम लड़की मेरे पास भेज दो···बरकमारीस ने सोचा में स्त्री का वेश पहनूँ । प्रत्येक युवक अपने केशों में खंजर छिपा ले ।···योजना सफल हुई···शत्रु का एक भी सैनिक नहीं बचा···तदनन्तर ग्रीष्म में नंगे पैर नगर में घूमता बरकमारीस राजप्रसाद के द्वार पर पहुँचा···बरकमारीस ने (अपने ज्येष्ठ भ्राता) (रव्वाल) के पेट में चाकू घोंप दिया···वह राजसिंहासन पर बैठ गया । उस लड़की (ध्रुवस्वामिनी) से विवाह

कर लिया। बरकमारीज और उसके राज की शक्ति बढ़ने लगी और सारा भारत उसके अधीन हो गया।" (भारत का इतिहास, प्रथम भा०, पृ० ७६-७८, इलियट एवं डासन कृत—युनमलुक तवारीख मे उद्धृत)।

उपर्युक्त तेरह उद्धरण आमराज, भट्टोत्पल, शिलालेख, मकिभट, भोज, क्षीर पाणि, सुभाषितावली, चक्रपाणि, अलबेरूनी और युनमलुक तवारीख सभी एक ही तथ्य के बोलते हुए चित्र हैं कि जिस विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त साहसांक ने अपने ज्येष्ठ भ्राता का वध किया, शकराज (नृपति) का विनाश किया, ध्रुवस्वामिनी से विवाह किया, वही शकसंवत्प्रवर्तक विक्रमादित्य था। इसके अतिरिक्त और कोई व्यक्ति भारतीय इतिहास में नहीं हुआ, जिसने ये सभी काम साथ-साथ किये हों, इसीलिए राष्ट्रकूट गोविन्द चतुर्थ ने भी उत्तरकाल (शकसंवत् ७९३) में साहसांक पदवी धारण की, परन्तु प्रथम साहसांक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के दोषों को ग्रहण नहीं किया—

सामर्थ्ये सति निन्दिता प्रविहिता नैवाग्रजेक्रूरता।
बंधुस्त्रीगमनादिभिः कुचरितैरावर्जितं नायशः।
शौचाशौचपराङ्मुखं न च भिया पैशाच्यमङ्गीकृतं।
त्यागेनासमसाहसैश्च भुवने यः साहसांकोऽभवत्॥[1]

उपर्युक्त विंशत्यधिक सभी प्राचीन देशी विदेशी विद्वान् प्रमत्त नहीं थे, जो लिखते कि शकराज के वध के अनंतर विक्रमादित्य ने १३५ वि० सं० में शकसंवत् चलाया। यह तथ्य ऊपर के उद्धरणों से स्वयं सिद्ध हो जाता है, हमारी किसी कल्पना की आवश्यकता नहीं है। अलबेरूनी से कोई आधुनिक भारत का विद्वान् यह कहने नहीं गया था कि तुम लिख दो जब "शककाल के २४० वर्ष पश्चात् गुप्तों का अंत और बलभी भंग हुआ, तब बलभीसम्वत् चला।" अलबेरूनी ने स्पष्ट लिखा है कि ३७५ विक्रम संवत् में गुप्तराज्य का अंत हो गया था, तब कौन हतबुद्धि मानेगा कि इस समय (३७५ वि० में) गुप्तराज्य की स्थापना हुई। भारतीयज्योतिषी एवं अलबेरूनी स्पष्ट लिखते हैं १३५ वि० सं० में शकराज का अंत करने वाला विक्रमादित्य ही था, तब शकसंवत् का संबंध चष्टनादिशकों या कनिष्क से जोड़ना विपरीत एवं मिथ्याबुद्धि का काम है।

पं० भगवद्दत्त गुप्तों का सम्बन्ध विक्रमसंवत् से जोड़ने का प्रयत्न करते रहे, परन्तु तथ्य को जानते हुए भी कि समुद्रगुप्त का राज्याभिषेक प्रसिद्ध विक्रमसंवत् (५७ ई० पू०) से ९३ वर्ष पश्चात् हुआ था, इस तथ्य को नहीं ग्रहण कर सके कि शकसम्वत् का प्रवर्तक समुद्रगुप्त का पुत्र चन्द्रगुप्त साहसांक था।[2]

---

१. एपि० इण्डिया, भाग ५, पृ० ३८;

२. पुरातन वंशावलियों में समुद्रपाल अर्थात् समुद्रगुप्त का राज्यकाल अवन्ति के विक्रमादित्य के ९३ वर्ष पश्चात् माना जाता है। इससे एक बात सर्वथा निश्चित होती है कि समुद्रगुप्त का राज्य विक्रम से ३८० वर्ष पश्चात् कभी नहीं था। फलीट ने अलबेरूनी के मत को बिगाड़कर यह कल्पना की है। अलबेरूनी का गुप्त-बलभी संवत् गुप्तों की समाप्ति पर आरम्भ होता है। अलबेरूनी के अनुसार गुप्तों के आरम्भ से चलने वाला गुप्तसंवत् और शक संवत् एक थे।" (भा० वृ० इ०, भाग १, पृ० १७२)

अतः दो प्रधानगुप्तसम्राटों की ' तिथि निश्चित हो जाने पर शेष गुप्तराजाओं की तिथियाँ सरलता से निश्चित हो सकती हैं। जिस प्रकार भारतयुद्ध की तिथि, (स्वायम्भुव से युधिष्ठिरपर्यन्त) सभी प्राचीन राजाओं की तिथि निर्णीत करने में परमसहायक हैं, उसी प्रकार चन्द्रगुप्त विक्रम (१३५ वि०) तिथि से युधिष्ठिर से हर्षपूर्वतक के राजाओं और घटनाओं की सभी तिथियाँ निश्चित हो जायेंगी। अब मालवगणस्थितिसंवत् और मन्दसौर के प्रसिद्ध भवन की तिथि भी सरलता से निकाली जा सकती है। समुद्रगुप्त का समय ९३ वि०सं० था, उसका राज्यकाल ४१ वर्ष, अर्थात् १३४ वि० सं० में समाप्त हुआ, कुछ मास के लिए उसका पुत्र रामगुप्त राजा बना। १३५ वि० सं० में रामगुप्त के कनिष्ठ भ्राता चन्द्रगुप्त ने शकवध और रामगुप्तवध करके उससे गद्दी छीन ली। उसने ३६ वर्ष राज्य किया, अतः उसके पुत्र कुमारगुप्त के समय १९१ वि० सं० में भवन बना और उसके ५२९ वर्ष बीतने पर ६९० वि० सं० में उसका जीर्णोद्धार हुआ। अतः एतदनुसार ३३२ वि० पू० गे मालवगणसम्वत् का आरम्भ हुआ न कि ५७ ई० पू०।

अध्याय पंचम

दीर्घजीवीयुगप्रवर्तक महापुरुष

दश विश्वस्रज या दश ब्रह्मा

आधुनिकयुग में प्राचीन भारतीय (प्राग्महाभारतीय) इतिहास को सम्यग् रूप में न समझने का एक प्रधान कारण है प्राचीनमनुष्य के दीर्घजीवन पर अविश्वास। प्राचीन मनुष्य (विशेषतः देव और ऋषि[1]) योग एवं रसायन (अमृत) सेवन के द्वारा दीर्घायुपर्यन्त जीवित रहते थे। इनमें से आदिम दश विश्वस्रजों या दश या नव ब्रह्मा (नौ ब्रह्मा) या सप्तर्षि इतिहासपुराणों एवं वैदिकग्रन्थों में वहुधा उल्लिखित हैं—

भृग्वांङिरोमरीचींश्च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च निर्ममे मानसान्सुतान्।: (ब्रह्माण्ड० १।२।९।१८)
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः॥ (ब्रह्माण्ड० १।२।९।१८,१९)

२१ प्रजापतियों की संज्ञा 'ब्रह्मा' थी, इनको स्वयम्भू भी कहा जाता था, ऐसे और भी अनेक ब्रह्मा थे, इनमें एक ब्रह्मा वरुण आदित्य था, जिसका परिचय इसी अध्याय में लिखा जायेगा।

उपर्युक्त नौ ब्रह्माओं के अतिरिक्त प्रजापति धर्म,[2] प्रजापति रुचि[3] और प्रधानतम प्रजापति स्वायम्भुव मनु[4] या बाइबिल के आदम ये मिलाकर आदिम १२ प्रजापति या ब्रह्मा थे—

इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा प्रजादौ द्वादशस्मृताः।
भृग्वादयस्तु ये तेषां द्वादश वंशा दिव्या देवगुणान्विताः।
द्वादशैते प्रसूयन्ते प्रजाः कल्पे पुनः॥ (ब्रह्माण्ड० १।२।९।२७)

इनके अतिरिक्त रुद्र (या नीललोहित) आदिम प्रजापतियों में से एक थे—

अभिमानात्मकं रुद्रं निर्ममे नीललोहितम्। (ब्रह्माण्ड० १।२।९।२३)

---

१. प्राचीन या आदिम युगों में मनुष्य की तीन श्रेणियाँ थीं—
ततो वै मनुष्याश्च ऋषयश्च देवानां यज्ञवास्त्वभ्यायन् (ऐ० ब्रा० ६।१); त्रयः प्राजापत्या देवा मनुष्याः असुराः (बृ० उ० ५।२) प्रजापतिगण स्वयं ऋषि ही होते थे।

२. ततोऽसृजत्ततोब्रह्मा धर्मं भूतसुखावहम्।

३. प्रजापतिं रुचिं चैव पूर्वेषामपि पूर्वजौ॥ (ब्रह्माण्ड० १।२।९।२०,

४. स वै स्वायम्भुवः पूर्वपुरुषो मनुरुच्यते। (१।२।९।३६)

क्योंकि ये आदिसृष्टा प्राणी थे, बुद्धि, जन्म, आयु मे बड़े थे, अत: 'ब्रह्मा' कहे जाते थे। बुद्धि, महान्, ज्येष्ठ, ब्रह्मा, बृहत्, महत् आदि पद सभी पर्यायवाची हैं—

बृहद् ब्रह्म महच्चेति शब्दा: पर्यायवाचका:।
एभि: समन्वितो राजन् गुणैर्विद्वान् बृहस्पति:॥
(महाभारत शान्तिपर्व० ३३६।२)

तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नम:। (अथर्ववेद १०।८।१)
तस्मात् पुराबृहन् महान् अजनि। (काठक सं० ६।८)
महाँ भूत्वा प्रजापति:। (श०ब्रा० ७।५।२१)
बृहत्या बृहन्निर्मितम्। (अथर्व० ८।६।४)
महाँस्तुसृष्टिं कुरुते नोद्यमानो सिसृक्षया। (वायु० ४।२७)
महिनाजायतैकम्। (ऋ० १०।१२९।२)

इसी प्रकार सुभू, प्रभू, स्वयम्भू, प्रजापति, ब्रह्मा, पुरुष, आत्मभू नारायण, आदिदेव, परमेष्ठी, विश्वसृज, गरुत्मान्, ज्येष्ठ, महिष आदि पद वेदों और पुराणों में समानार्थक कहे गये हैं, जो सभी 'प्रजापति' के वाचक हैं।

प्रजापतियों से आदिम प्रजाओं की सृष्टि हुई एवं वे प्रजाओं का पालन करते थे अत: प्रजापति कहलाते थे। विश्व (समस्त) प्रजा की सृष्टि इन्हीं प्रजापतियों से हुई, अत: वे विश्वसृज कहलाये—

एतेन् वै विश्वसृज इदं विश्वमसृजन्त तस्माद्विश्वसृज:।
विश्वमेनानानुप्रजायन्ते॥ (आप० श्रौतसूत्र २३।१४।१५)

अत: स्वयम्भू या ब्रह्मा एक ही नहीं था, जैसा कि पं० भगवद्दत्त मानते हैं, ब्रह्मा अनेक थे। जहाँ कहीं पुराणों या वैदिकग्रन्थों में यह लिखा है कि अमुक शास्त्र ब्रह्मा, स्वयम्भू या प्रजापति ने ऋषियों से कहा, वहाँ यह समझना महान् भ्रम होगा कि वह आदिम स्वयम्भू ब्रह्मा ही था, यथा—

स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्रायप्राह।
(मुण्डक० १।१।१)

यहाँ पर ब्रह्मा वरुण आदित्य हैं क्योंकि भृगु या अथर्वा वरुण का ही ज्येष्ठ पुत्र था। इसी प्रकार निम्न विद्यावंशों में कौन-सा ब्रह्मा था, यह निश्चय करना कठिन है—

(१) ब्रह्मा स्मृत्वायुषोवेदं प्रजापतिमजिग्रहत्।[1]
(२) प्रजापतिर्हि—अध्यायानां शतसहस्रेणाग्रे प्रोवाच।[2]
(३) ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच।[3]
(४) पुरा ब्रह्माऽसृजत् पंचविमानान्यसुरद्विषाम्।[4]

---

१. अष्टांगहृदय (१।३।४);
२. कामशास्त्र (१।१।५);
३. ऋग्तन्त्र (१।४);
४. समरांगणसूत्र, (पृ० ४९, भोजकृत);

(५) ब्रह्मणोक्तं ग्रहगणितम् ।[1]

अतः प्राचीन ग्रन्थों (वैदिक उपनिषदादि, पुराणादि, आयुर्वेदादि) के अस्पष्ट कथनों के आधार पर उसे सीधे आदिम प्रजापति स्वयम्भू ब्रह्मा की कृति मान लेना महती त्रुटि या भ्रम है। इस सम्बन्ध में स्वयं पुराणादिकर्त्ताओं को विस्मृति थी, उनके रचयिता वास्तविक ब्रह्मा (प्रजापति) का इतिहास धुँधला था, पुनः मध्यकालीन वाग्भट्ट या भोज आदि एवं आधुनिक हम जैसे लेखकों को यथार्थज्ञान कैसे हो सकता है, अतः तथाकथितलेखक यथार्थ ब्रह्मा का निर्णय करना प्रमाणाभाव में टेढ़ी खीर है।

यही समस्या सप्तर्षियों या व्यासों के सम्बन्ध में है। पुराणों में ही १४ मन्वन्तरों के सप्तर्षियों के १४ गण एवं विभिन्न परिवर्तों के २८ या ३० व्यासों का उल्लेख है। महाभारत में सप्तर्षिकृत चित्रशिखण्डी (धर्मशास्त्र)— लक्षश्लोकात्मक का उल्लेख है। पं० भगवद्दत्त इस चित्रशिखण्डी शास्त्र को—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ—संज्ञक आदिम या प्रथम सप्तर्षियों की रचना मानते हैं जो स्वायम्भुव मनु के समकालीन थे, परन्तु यह शास्त्र आदिराजा पृथुवैन्य के समय चाक्षुषमन्वन्तर में रचा गया।[2] परन्तु इस शास्त्र के अध्येता बृहस्पति आंगिरस तो पृथु से बहुत अर्वाचीन ऋषि थे, जो इन्द्र और वैवस्वतमनु के समकालीन थे, इन विषयों की विस्तृत मीमांसा यथास्थान की जायेगी।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन का अर्थ है कि उपाधिनामों, गोत्रनामों या नामसाम्यों के कारण कालनिर्णय एवं इतिहासनिर्णय करने में अनेक बाधायें हैं, विशेषतः आदिम प्रजापतियुग का इतिहास स्वयं पुराणों में अस्पष्ट एवं जटिल है, जिसका आभास पं० भगवद्दत्त जी को भी था "पृथुवैन्य की कथा अत्यन्त अतीत काल की है। महाभारत काल में भी यह श्रुतिमात्र थी।" (श्रुतिरेषा परा नृषु महा० शा० ५८।१२१), अतः इसका स्पष्टीकरण अभी हमारी पहुँच से परे है। इससे आगे स्पष्ट इतिहास की पहली रश्मियाँ हम तक पहुँचती हैं। (भा० बृ० इ० भाग २, पृष्ठ ४३), अतः स्वयम्भू ब्रह्मा से वैवस्वतमनुपर्यन्त का इतिहास पुराणों में श्रुतिमात्र या अस्पष्ट या धुँधला-सा है। फिर भी यथाज्ञान उसका स्पष्टीकरण एवं शोधन करेंगे।

प्रजापतियुग में सामान्यमनुष्यों[3] की आयु तो दीर्घ थी ही, स्वयं प्रजापतिगण अत्यन्त दीर्घजीवी होते थे। परन्तु जो पोंगापंथी पण्डित दिव्यवर्षगणना के अनुसार

---

१. ब्रह्मस्फुटसिद्धांत (ब्रह्मगुप्त)।

२. चाक्षुषमन्वन्तर जिसमें पृथु वर्तमान था, उसके सप्तर्षि थे...

भृगुर्नभो विवस्वांश्च सुधामा विरजास्तथा।
अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तैते महर्षयः॥ (हरिवंश १।७।३१)

इनमें विवस्वान् (सूर्य) पाँचवें युग के व्यास थे—

पंचमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता। (वायुपुराण)

३. अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः।
कृते त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः॥ (मनु १।८३);

मन्वन्तर को ३० करोड़ ६७ लाख २० सहस्र वर्ष का मानते हैं और यह मानते हैं कि अनेक ऋषियों ने लाखों-करोड़ों वर्ष[1] तपस्यायें कीं, हिरण्यकशिपु आदि ने तीन लाख वर्ष[2] राज्य किया, इत्यादि कथन कोरी गप्पें हैं।' इसी प्रकार युगपुराण के निम्न वचन प्रमाणहीन हैं कि कृतयुग में मनुष्य की आयु एक लाख वर्ष और त्रेता में दशसहस्रवर्ष होती थी--

शतवर्षसहस्राणि आयुस्तेषां कृतयुगे।
दशवर्षसहस्राणि आयुस्त्रेतायुगे स्मृतम् ॥[3]

इसी प्रकार बुद्धघोषकृत निदानकथाग्रन्थ में २५ बुद्धों की आयु लाख-लाख वर्ष या नब्बे सहस्र वर्ष बताई गई है (द्रष्टव्य निदानकथा—अनु० डा० महेश तिवारी), जैनशास्त्रों में भी तीर्थंकरों के आयुष्य का ऐसा ही वर्णन मिलता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीनग्रन्थों में अनेक स्थानों पर सहस्र और शत पद निरर्थक भी हैं जहाँ आयु या राज्यकाल षष्टिसहस्र वर्ष बताया है वहाँ उसका अर्थ यह हो सकता है केवल साठ वर्ष अथवा द्वितीय पद्धति है उनको दिन मानना, जैसा राम का राज्यकाल ११००० वर्ष था तो वास्तव में उन्होंने इतने दिनों राज्य किया, यह लगभग ३१ वर्ष होते हैं, दीर्घराज्यकालों पर भी विचार इसी अध्याय में करेंगे।

पोंगापंथी पंडितों के अतिवादों के विपरीत, जो लोग दीर्घायु या दीर्घराज्यकाल में विश्वास नहीं करते और अपने अनुमान या मनमानी कल्पना के अनुसार आयु या राज्यकाल का निर्णय कर लेते हैं, उनके अनुमान, अनुमानकोटि में नहीं, केवल धूर्त या भ्रष्ट कल्पनायें हैं अतः अप्रमाणिक हैं; यथा मैक्समूलर, पार्जीटर या रमेशचन्द्र मजूमदार आदि बिना किसी प्रमाण के राजाओं का राज्यकाल या ऋषिजीवन १८वर्ष औसत मानते हैं—Pargiter worked out a detailed Synthesis aud Sychronism of all the known dynasties. Taking Manu as e. 3100 B. c. (the date of the flood and Pariksit at about 1400 B. c. a rough basic frame can be drown whichgives the reasonable age difference of 18 years per king."[4]

इसी प्रकार डा० काशीप्रसाद जायसवाल, वासुदेवशरण अग्रवाल, स्व० चतुरसेन शास्त्री आदि ने तथाकथित औसतगणना द्वारा मनमाना कालनिर्णय किया है। यथा

---

१. पुरूरवा तया सह रममाणः षष्टिवर्षसहस्राणि (विष्णु० ४।६।४०)

२. पुराकृतयुगे राजन् हिरण्यकशिपुः प्रभुः।
हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामर्बुदं बभौ।
तथा शतसहस्राणि ह्यधिकानि द्विसप्ततिः
अशीतिश्च सहस्राणि त्रैलोक्येश्वरोऽभवत् ॥ (वायु० ९७।८८-९१);

३. युगपुराण (पंक्ति १९।४२);
शतं वर्षसहस्राणां निराहारोऽधह्यशिराः। (ब्रह्माण्ड० २।३।३।१५)

४. Date of Mahabharat Battle. p. 61, S. B. Roy,

स्व० चतुरसेन शास्त्री स्वायम्भुव मनु की ४५ पीढ़ियों और ६ मनुओं का औसत २८ वर्ष मानकर सत्ययुग का काल ४५ × २८ = १२६० वर्ष, त्रेतायुग का १०९२ वर्ष और द्वापर का ३९२ वर्ष मानते थे ।[1] और भी बहुत से लेखक इसी प्रकार औसत द्वारा आयु या राज्यकाल निकालते हैं, उनका मत किसी प्रकार भी प्रामाणिक नहीं माना जा सकता ।

यह पहिले ही बता चुके हैं कि प्रजापति (ऋषिगण), और देवों की आयु अत्यन्त दीर्घ होती थी, सामान्यत: प्रजापति ७०० या ७२० या एक सहस्र वर्ष जीवित रहते थे और देवता ३०० सौ से ५०० वर्ष तक । कुछ अपवाद भी थे, जिनमें कश्यप जैसे प्रजापतिऋषि और इन्द्रतुल्यदेव अनेक सहस्रोंवर्षतक जीवित रहे । इस दीर्घायुष्ट्व के रहस्य को न समझाकर पार्जीटर लिखता है—It is generally rishis who oppear on such occassion in defiance of chronology, and rarely that kings appear[2] दीर्घयज्ञप्रसंग में जैमिनीयब्राह्मण (१।३) में कथन है कि प्रजापति ७०० वर्ष और देवों ने ३०० वर्ष में एक दीर्घसत्र को समाप्त किया ।[3]

कल्पसूत्रकारों एवं दार्शनिकों में दीर्घसत्रयज्ञों के सम्बन्ध में विवाद होता था कि विश्वसृजों या प्रजापतियों के दीर्घसत्र कलियुग में कैसे सम्भव है जबकि इस समय मनुष्यों की दीर्घायु नहीं होती—

"सहस्रसंवत्सरं तथायुषामसंभवान्मनुष्येषु ।"[4]
"सहस्रसंवत्सरं मनुष्याणामसम्भवात् ।"[5]

कुछ आचार्यों के मत में ये कुलसत्र[6] थे, अर्थात् एक ही कुल के वंशज क्रमश: यह यज्ञ करते रहते थे---पीढ़ी दर पीढ़ी, यथा आसुरिगोत्र के आचार्यों ने एकसहस्रवर्ष तक यज्ञ किया—

आसुरे: प्रथमं शिष्यं यमाहुश्चिरजीविनम् ।
पंचस्रोतसि य: सत्रमास्ते वर्षसाहस्रिकम् ।।[7]

कुछ लोग यज्ञ में सहस्रवर्ष का अर्थ सहस्रमास यासहस्र दिन लेते थे, परन्तु पूर्वयुगों में प्रजापतियों की आयु अत्यन्त दीर्घ होती थी, अत: उन्होंने वास्तविक सहस्र वर्षपर्यन्त यज्ञ किये थे, तभी यह यज्ञपरम्परा चली, ब्राह्मणवचनों के प्रमाण से यह

---

१. भारतीय संस्कृति का इतिहास—प्रारम्भिक अंश, ले० आचार्य चतुरसेन शास्त्री ।
२. A. I. H. T P. 41!
३. प्रजापतिसहस्रसंवत्सरमास्त । स सप्तशतानिवर्षाणां समाप्येमामेवजितिमयजत् । देवान्नब्रवीदेतानियूयं शतानि वर्षाणां समापयथेति ।। (जै० ब्रा० १।३),
४. जै० मी० सू० ६।७।११३),
५. का० श्रौ० (१।६।१७),
६. कुलसत्रमिति कार्ष्णाजिनि: (का० श्रौ० १।६।२२):
७. महा० (१२।२।८।१०),

तथ्य पुष्ट होता है ।[1]

दश विश्वस्रज, सप्तर्षि, २१ प्रजापति या नव ब्रह्मा—मरीचि, पुलस्त्य, अत्रि, वसिष्ठादि तप और योग या जन्मसिद्धि से दीर्घजीवी थे, आदिम ऋषियों की आयु का कोई बन्धन नहीं था, वे सन्तान भी दीर्घायु पर्यन्त उत्पन्न करते रहे, यथा कश्यप ऋषि (प्रजापति) ने लगभग २००० वर्ष के दीर्घकाल के मध्य में देवासुरों एवं अन्य प्रजा को उत्पन्न किया, अतः कहा गया है—

ब्रह्मणः सदृशाश्चैते धन्याः सप्तर्षयः स्मृताः ।
ब्रह्मलोकप्रतिष्ठास्तु स्मृताः सप्तर्षयोऽमलाः ।
भूतभव्यभवज्ज्ञानं बुद्ध्वा चैव ये स्वयम् ।
दीर्घायुषो मन्त्रकृत ईश्वरा दीर्घचक्षुषः ।
तेषां चैवान्वयोत्पन्ना जायन्तीह पुनः पुनः ।
यस्माच्च वरदाः सप्त परेभ्यः एव याचिताः ।
तस्मान्न कालो न वयः प्रमाणमृषिभावने ।

(हरिवंश पु० १।७ अध्याय)

परन्तु इतिहासपुराणों के वर्तमान उपलब्धपाठों के सभीपाठों में जहाँ तथाकथित दीर्घायु या समकालीन ऋषियों का उल्लेख है, उनमें से अधिकांश प्रमाणाभाव के कारण विश्वसनीय नहीं हैं, प्रकारान्तर से प्राचीनतम ऋषियों को अर्वाचीन ऋषियों के साथ और अर्वाचीनों को प्राचीनतम बना दिया जाता है—यथा महाभारत के निम्न दो प्रसंग द्रष्टव्य हैं—देवयुगीन इन्द्र के सखा वसुसंज्ञक राजा को, प्रतीप के समकालीन चेदिपतिं उपरिचर वसु को नामसाम्य के कारण महाभारत के वर्तमान संस्करणों में एक बना दिया गया है, इन दोनों वसुराजाओं में न्यूनतम नौसहस्रवर्षों का अन्तर था, परन्तु निम्नश्लोकों में न केवल राजाओं के सम्बन्ध में भ्रमोत्पादन किया है, बल्कि युधिष्ठिरकालीनऋषियों को भी देवयुग में रख दिया गया है—

ततोऽतीते महाकल्पे उत्पन्नेऽङ्गिरसः सुते ।
बभुवुर्निर्वृता देवा जाते देवपुरोहिते ।
तस्य शिष्यो बभूवाग्र्यो राजोपरिचरो वसुः ।
तस्य यज्ञो महानासीदश्वमेधो महात्मनः ।
बृहस्पतिरुपाध्यस्तत्र होता बभूव ह ।
प्रजापतिसुताश्चात्र सदस्याश्चाभवंस्त्रयः ।।
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैव महर्षयः ।
धनुषाख्यो रैभ्यच अर्वावसुपरावसू ।।

---

१. जै० ब्रा० (१।३) तथा आप० श्रौ० का वचन द्रष्टव्य है—
'विश्वस्रजः प्रथमाः सत्रमासत सहस्रसमं प्रसुतेन यन्तः ।
ततो ह जज्ञे भूवनस्य गोपा हिरण्मयः शकुनिर्ब्रह्म नामेति ।। (२३।१४।१७)
ये प्रथम विश्वस्रज् मरीचि, वसिष्ठादि ही थे ।

ऋषिर्मेधातिथिश्चैव ताण्ड्यश्चैव महानृषिः ।
आद्यः कठस्तित्तिरिश्च वैशम्पायनपूर्वजः ।।[1]

उपर्युक्त श्लोकों में देवयुग के बृहस्पति, त्रित, द्वित, एकत, अर्वावसु, परावसु और वसु को महाभारतकालीन (द्वापरान्त) ताण्ड्य, कठ, तित्तिरि और वैशम्पायन के समकालीन बना दिया है। कृतयुगीनवसु को द्वापरयुगीनवसु चैद्य से एकीकृत किया गया है। आङ्गिरस आप्त के तीन पुत्रों—त्रितादि को प्रजापति ब्रह्मा के मानसपुत्र कहा गया है।[2] इस प्रकार के अनर्गल वर्णनों से रामायण, महाभारत और पुराण भरे पड़े हैं, ऐसी स्थिति में सत्येतिहादोहन कितना कठिन एवं दुर्गम कार्य है, यह विचारणीय है।

कालक्रम एवं घटनाक्रम को किस प्रकार तोड़ा मरोड़ा गया है इसका एक और ज्वलन्त उदाहरण है, विश्वामित्र, कण्व और नारद ऋषियों द्वारा वासुदेवपुत्र को शाप देना--

विश्वामित्रं च कण्वं च नारदं च तपोधनम् ।
सारणप्रमुखा वीरा ददृशुर्द्वारिकां गतम् ।।[3]

अन्यप्रमाणों से ज्ञात है कि साम्बने उपर्युक्त धृष्टता कृष्णद्वैपायन व्यास के साथ की थी, जैसा कि बौद्धग्रन्थ जातक (घत जातक सं० ४५४ घृनजातक) में वर्णित है कि कृष्णद्वैपायन के शाप से यादवों का नाश हुआ था।

पुराणों के उपर्युक्त अपलापों के बावजूद अनेक ऋषिगणों एवं राजर्षिगणों ने दीर्घजीवन का उपभोग किया। उन महापुरुषों यहाँ संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।[4]

स्वयम्भू=ब्रह्मा और स्वायम्भुव मनु की आयु—स्वयम्भू का इतिहास एक जटिल समस्या है। इतिहासपुराणों में अनेक प्रजापतियों को स्वयम्भू या ब्रह्मा कहा गया है और अनेकत्र ऋषियों को ब्रह्मा का मानसपुत्र कहा गया, जैसा कि त्रितादि के सम्बन्ध

---

१. महाभारत (१२।३३६।१,५-९),
२. वयं हि ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः परिकीर्तिताः। (१२।३३६।२१), द्रष्टव्य त्रित आप्त्य (ऋग्वेद १।१०५)
३. महाभारत, मौसलपर्व (१।१५),
४. तप और योगविधि के अतिरिक्त रसायनसेवन से भी प्राचीनपुरुष दीर्घजीवी हुए---

न जरां न च दौर्बल्यं नातुर्यं निधनं न च ।
जग्मुर्वर्षसहस्राणि रसायनपराः पुरा ।।
(च० सं० चि० सा० १।७८)

च्यवन और नागार्जुन रसायन सेवन से दीर्घजीवी हुए थे, ऋषिगण सोम औषधि पान से भी अमृत (चिरजीवन) प्राप्त करते थे —

"अपाम सोमममृता अभूम।" (ऋ० ८।४८।३),

में लिख चुके हैं कि वे आङ्गिरस आप्त्य के पुत्र होने से 'आप्त्य' कहे जाते थे, परन्तु महाभारत (१२।३३६।२१) में उनको ब्रह्मा का मानसपुत्र कहा गया है, इस प्रकार के वर्णनों से स्वयम्भू ब्रह्मा के काल (समय) के सम्बन्ध में—भ्रम होना स्वाभाविक है। महाभारत, शान्तिपर्व (३४७।४०-४३) में ब्रह्मा स्वयं अपने सात जन्मों का वर्णन करते हैं—

त्वत्तो मे मानसं जन्म प्रथमं द्विजपूजितम् ।
चाक्षुषं वै द्वितीयं मे जन्म चासीत् पुरातनम् ॥
त्वत्प्रसासाद् तु मे जन्म तृतीयं वाचिकं महत् ।
त्वत्तः श्रवणजं चापि चतुर्थं जन्म मे विभो ।
नासिक्यं चापि मे जन्म त्वत्तः परमुच्यते।
अण्डजं चापि मे जन्म त्वत्तः षष्ठं विनिर्मितम् ।
इदं च सप्तमं जन्म पद्जन्मेति वै प्रभो ॥

अतः ब्रह्मा के न्यूनतम सात जन्म उपर्युक्त श्लोकों में वर्णित हैं (१) मानस ब्रह्मा, (२) चाक्षुष ब्रह्मा, (३) वाचस्पत्य ब्रह्मा, (४) श्रावण ब्रह्मा, (५) नासिक्य ब्रह्मा, (६) हिरण्यगर्भ अण्डज ब्रह्मा और सप्तम (७) पद्मज कमलोद्भव ब्रह्मा। **कमलोद्भव ब्रह्मा**—बाइबिल में इसी को मिट्टी (कर्दम=कीचड़) से उत्पन्न 'आदम' कहा है। अतः प्रथम मानव स्वयम्भू या आत्मभू (आदम) कीचड़-मिट्टी से कमल सदृश उत्पन्न हुआ।

Bible—"And the lord god formed man of the dust of the ground and breathed into his nostril the breath of life and man became a living soul. Holy Bible p. 6).

वर्तमान मानव का ज्ञात इतिहास सप्तम पद्मज ब्रह्मा से प्रारम्भ होता है। वर्तमानमानवसृष्टि से पूर्व न जाने कितनी बार मानवसृष्टि हुई होगी, इसे कौन जाने वेद के नासदीयसूक्त में कथन है—'अर्वाग् देवाः' जब देवता ही ब्रह्माण्ड (पृथ्वी) के उत्तरकाल में उत्पन्न हुए तब देवों से पूर्व के इतिहास को मनुष्य कैसे जान सकता है, फिर भी सात ब्रह्माओं की स्मृति इतिहासपुराणों में विद्यमान है, जिनसे सातबार मानवसृष्टि हुई। प्राणियों में ब्रह्मा सर्वप्रथम उत्पन्न हुये—

भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे (अथर्व० १८।२२।२१)
आकाशप्रभवो ब्रह्मा (रामायण २।११०।५)

ब्रह्मा=स्वयम्भू स्वयं आकाश से उत्पन्न हुए, अतः आदिमानव ब्रह्मा था, अतः मनुष्य आदिकाल से इसी रूप में था, जैसा आज है, इससे विकासवाद का पूर्ण खण्डन होता है। आत्मभू या स्वयम्भू का पुत्र होने से मनु को स्वायम्भुव मनु कहा जाता है। पं० भगवद्दत्त ब्रह्मा का समय भारतयुद्ध से ११००० वि०पू० अथवा कहीं १४००० वि० पू० मानते थे—(१) 'ब्रह्माजी का काल भारतयुद्ध से न्यूनातिनून ११००० वर्ष पूर्व का

है।"[१] अन्यत्र उन्होंने ब्रह्मा का न्यूनातिन्यून काल १४००० वि०पू० माना है [२] वे इस सम्बन्ध में अनिश्चय की स्थिति में थे।

पुराणगणना से १४००० वि०पू० प्रचेता, दक्ष और कश्यप का समय था। ब्रह्मा या स्वायम्भुव मनु, प्रचेता से न्यूनातिन्यून ७१०० वर्ष पूर्व अर्थात् २११०० वर्ष पूर्व या विक्रम से १९१०० वर्ष पूर्व हुए, पृथ्वी पर जलप्रलय, अग्निदाह और औषधिजन्म न जाने कितने सहस्रोंवर्षों तक होता रहा, इसका ठीक-ठीक अनुमान नहीं, और ब्रह्मा ने मानवसृष्टि करने में कितना समय लगाया, परन्तु स्वयम्भू और स्वायम्भुव मनु का समय विक्रम से लगभग बीससहस्रपूर्व अवश्य था।

पं० भगवद्दत्त बाइबिल के आदम को स्वयम्भू या आत्मभू का विकार मानते हैं, पुराण इस सम्बन्ध में स्वयं अस्पष्ट या अनिर्णय की स्थिति में है कि शतरूपा ब्रह्मा की पत्नी थी या स्वायम्भुव मनु की, बाइबिल में आदम की पत्नी नाम 'हौवा' है, इसमें कोई संदेह नहीं कि यह हौवा 'शतरूपा' का ही रूप है और आत्मभू या स्वयंभू का अपभ्रंश 'आदम' है, परन्तु हमारे मत में 'आदम' स्वायम्भुव मनु[3] था और उसकी पत्नी शतरूपा ही 'हौवा' थी जैसा कि अधिकांश पुराणों का मत है, अत: आदम ब्रह्मा नहीं स्वायम्भुव मनु था, यह भी सम्भव है कि मनु ही प्रथम पुरुष हो और शतरूपा प्रथमस्त्री, तथा स्वम्यभू ब्रह्मा केवल कल्पना में ही हो, इस सम्बन्ध में निर्णय करना अत्यन्त कठिन है, परन्तु स्वायम्भुव मनु अवश्य ही प्रथम ऐतिहासिक पुरुषथा— 'स वै स्वायम्भुवः पूर्व पुरुषो मनुरुच्यते।'

आदम या स्वायम्भुव मनु की आयु बाइबिल में ९३० वर्ष बताई गई है, जो सत्य प्रतीत होती है— "And all the days that Adam lived were nine hundred and thirty years. (Holy Bible p. 9).

बाइबिल के आधार पर भविष्यपुराण में 'आदम' को प्रथमपुरुष और हव्यवती (हौवा) को प्रथमस्त्री बताया गया है—

आदमो नाम पुरुषः पत्नी हव्यवती तथा।

अत: आदम स्वायम्भुव मनु था, स्वयं स्वयंभू नहीं। आदम का समय भी भविष्यपुराणमें महाभारतकाल से १६००० वर्षपूर्व बताया गया है—

षोडशाब्दसहस्रे च शेषे तदा द्वापरे युगे।

यह गणना हमारी उपर्युक्त गणना से मेल खाती है कि स्वाम्यभुव मनु का समय विक्रम से लगभग बीस-इक्कीस सहस्रवर्षपूर्व या महाभारतकाल से सोलहसहस्र वर्ष पूर्व था। मूल में स्वायम्भुवमन्वन्तर के ७१ मानुषयुग (७१०० वर्ष) ही स्वायम्भुव मन्वन्तर कहे जाते थे—

---

१. भा० बृ० इ० भाग-२ (पृ० १८), वही भाग। (पृ० २५४),
२. शरीरादर्धमथो भार्यां समुत्पादिवाच्छुभाम्। (हरिवंश ३।१४।२२)
३. स वै स्वायंभुवः पूर्वपुरुषो मनुरुच्यते। लब्ध्वा तु पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् (ब्रह्माण्ड १।२१९।३६,३७७)

स वै स्वायम्भुवस्तात पुरुषो मनुरुच्यते।
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ (हरिवंश० १।२।४)
स वै स्वायम्भुवः पूर्वं पुरुषो मनुरुच्यते।
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ (ब्रह्माण्ड० १।२।९।३६)

इन वर्षों को दिव्यवर्ष मानना और ७१ चतुर्युग मानना भ्रममात्र और कल्पना मात्र है।

यह हम पूर्व संकेत कर चुके हैं कि आदिमब्रह्मा ही अनेक शास्त्रों का मूलप्रवक्ता था।[1] वरुणादि को भी भ्रम से आदिब्रह्मा समझ लिया गया है, उत्तरकाल में विभिन्न युगों में २१ प्रजापतियों एवं १४ सप्तर्षिगणों ने शनैः-शनैः प्रारम्भिकशास्त्रों की रचना की, उन्हें भ्रमवंश आदिब्रह्मा के मत्थे मढ़ दिया है। उदाहरणार्थ छान्दोग्योपनिषद् (३।११।४) का यह विद्यावंश द्रष्टव्य है "तदेतद् ब्रह्मा प्रजापतये प्रोवाच प्रजापतिर्मनवे, मनुः प्रजाभ्यः।" यहाँ प्रजापति विवस्वान् की ओर संकेत है, मनु वैवस्वत मनु थे, जो सप्तमपरिवर्त में हुए। यहाँ ब्रह्मा स्वयं कश्यप का अभिधान संकेतित है, इसी परम्परा को गीता में वासुदेव कृष्ण इस प्रकार कहते हैं—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥[2] (गीता ४।१)

उपर्युक्त श्लोक में 'अहम्' (श्रीकृष्ण) स्वयं ब्रह्मा कश्यप ऋषि थे और विवस्वान् उनके पुत्र तथा उनके पुत्र मनु वैवस्वत तथा पुत्र इक्ष्वाकु आदि (प्रजा)।

अतः ब्रह्मासम्बन्धीसमस्या अत्यन्त जटिल है। पं० भगवद्दत्त ने छान्दोग्यप्रसंग में ब्रह्मा स्वयम्भू को और प्रजापति, कश्यप को माना है, जो अलीक एवं अनुचित है, क्योंकि विवस्वान् स्वयं एक महान् प्रजापति थे, जिन्होंने अपने दोनों पुत्रों यम और मनु को शिक्षा दी।

पं० भगवद्दत्त सभी प्रजापतियों को एक ब्रह्मा मानकर लिखते हैं—'ब्रह्मा पितृयुग और तत्पश्चात् देवयुग में जीवित थे।"[3] देवयुग के ब्रह्मा कश्यप प्रजापति थे, स्वयम्भु ब्रह्मा नहीं।

बाइबिल में आदम (स्वयम्भू ब्रह्मा या स्वायम्भुव मनु) की आयु ९३० वर्ष बताई है, तदनुसार भविष्यपुराण में लिखा है—

"त्रिंशोत्तरं नवशतं तस्यायुः परिकीर्तितम्।"

यदि आदम स्वायम्भुव मनु था तो उसकी यही (९३० वर्ष) आयु थी, देवासुर

---

१. द्रष्टव्य भा० बृ० इ० भाग २ (अध्याय 'श्री ब्रह्माजी);
यह कुछ शास्त्रों का प्रवक्ता अवश्य था, पुराण और हिब्रू ग्रन्थों से पुष्ट होता है।

2. Son and father walked together...
Son of Vivahvat, great yim (Avesta).

३. भा० बृ० इ० भाग २ (पृ० २७),

युग में न स्वयम्भू जीवित था और न स्वायम्भुव मनु।

वरदपितामहसम्बन्धी भ्रान्ति का निराकरण—इतिहासपुराणों में बहुधा चर्चा मिलती है कि पितामह ब्रह्मा ने अमुक असुर या राक्षस या राजा को तपस्या से प्रसन्न होकर वर दिया, यथा रामायण में पितामह, रावणादि को वर देते हैं—

पितामहस्तु सुप्रीतः सार्धं दैवैरुपस्थितः
एवमुक्त्वा तु तं राम दशग्रीवं पितामहः।
विभीषणमथोवाच वाक्यं लोकपितामहः।[1]

इसी प्रकार पितामह असुरों यथा हिरण्यकशिपु आदि को वर देते हैं—

चराचरगुरुः श्रीमान्वृतो देवगणैः सह।
ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत्॥"[2]

इत्यादि प्रसंगों में पितामह असुरों के पिता कश्यप या पुलस्त्यादि को ही समझना चाहिए, क्योंकि राक्षसों के पितामह पुलस्त्य या पुलस्ति थे, (आदिम पुलस्त्य नहीं, विश्रवा के पिता पुलस्त्यवंशीय ऋषि) और असुर दैत्यों के पिता या पितामह कश्यप थे, वे ही प्रायः देवदानवों को वरदान देते थे, यथा अदिति, दिति, कद्रू, विनता आदि को उन्होंने ही वर दिये थे—

दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम्।
तां कश्यपः प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया।
वरेणच्छन्दयामास सा च वव्रे वरं ततः॥

(हरिवंश १।३।१२३-१२४)

अतः ऐसे प्रसंगों में **वरद पितामह ब्रह्मा स्वयम्भू नहीं** तत्कालीन पूर्वज प्रजापति को समझना चाहिए और कुछ प्रसंगों में तो ब्रह्मा का अर्थ है विद्वत्वर्ग (ब्राह्मणादि), यथा रामायण में आदिकवि बाल्मीकि और महाभारत में पाराशर्य व्यास को उनकी रचनाओं से सन्तुष्ट ब्रह्मा आशीर्वाद देते हैं, यथा—

आजगाम ततो ब्रह्मा लोककर्ता स्वयं प्रभुः।
वाल्मीकये च ऋषये संदिदेशासनं ततः।

(रामा० १।२।२३,२६)

तस्य तच्चिन्तितं ज्ञात्वा ऋषेर्द्वैपायनस्य च।
तत्राजगाम भगवान् ब्रह्मा लोकगुरुः स्वयम्॥

(महा० १।१।५६,५७)

उपर्युक्त प्रसंगों में ब्रह्मा किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं और आदिब्रह्मा स्वयम्भू को तो कतई नहीं। विद्वानों या ब्राह्मणों द्वारा उनकी कृति को मान्यता देना ही यहाँ 'ब्रह्मा' से अभिप्रेत है।

---

१. रामायण (७।१०।१३,२६,२७),
२. हरिवंश (३।४१।१०)।

दश विश्वसृज, नवब्रह्मा या सप्तर्षियों की आयु—उपर्युक्त, जो विवेचन स्वयम्भू ब्रह्मा के सम्बन्ध हैं, लगभग वहीं—मरीचि, भृगु, पुलस्त्य, अंगिरा, पुलह, क्रतु, अत्रि, दक्ष और मनु के सम्बन्ध में समझना चाहिए, जो विश्वसृज, ब्रह्मा या सप्तर्षि इत्यादि विभिन्न नामों से अभिहित किये जाते हैं, ये भी वरद, ईश्वर, पितामह और ब्रह्मा कहे जाते थे, ये ही वेदमंत्रों के आदिस्रष्टा या द्रष्टा थे। इन सब महर्षियों या प्रजापतियों में प्रत्येक की आयु एक-एक सहस्र वर्ष से अधिक अवश्य थी। बाइबिल में आदिम प्रजापतियों की आयु ९०० से १००० वर्ष तक कथित है। क्योंकि इन्होंने सहस्रोंवर्षों तक तप या यज्ञ किये—

प्रजापतिःसहस्रसंवत्सरमास्त । (जै० ब्रा० १।३)
विश्वसृजः प्रथमाः सत्रमासत सहस्रसमम्…।"
(आ० श्रौ० २३।१४।१७)

उपर्युक्त दश प्रजापतियों में देवासुरयुग पर्यन्त कोई भी जीवित नहीं था, प्रजापतियुग ३५०० वर्ष का था, इसी प्रजापतियुग में अधिकांश आदिम प्रजापति दिवंगत हो चुके थे, यथा मरीचि के किसी भी देवासुरसम्बन्धीघटना में दर्शन नहीं होते। देवासुरजनक कश्यप यदि साक्षात् मारीचि के पुत्र थे, तब पितापुत्र दोनों की आयु छः-सात सहस्र वर्ष माननी पड़ेगी और यदि देवासुरयुग से पूर्व भी कश्यप एक गोत्र का नाम था तो कश्यप साक्षात् मरीचि के पुत्र न होकर वंशज ही हों, अतः मारीच कहलाते थे, तो इन दोनों की आयु कुछ न्यून हो सकती है, फिर भी इनकी आयु सहस्रोंवर्ष अवश्य थी।

यह भी सम्भव है कि उपर्युक्त दश विश्वसृज या प्रजापति विभिन्न युगों में हुए हों, यथा षष्ठ मनु प्रजापति चक्षु के पौत्रों का नाम अंगिरा और अंग था, जो वेन के पिता और पितृव्य एवं पृथु के पितामह थे,[1] देवयुग में इसी अंगिरा के वंशज बृहस्पति आदि आंगिरस ऋषि हुए। आदिम अत्रि के दत्तकपुत्र थे स्वायम्भुव मनु के पुत्र उत्तानपाद। अतः आदिम सप्तर्षियों या प्रजापतियों का कालनिर्णय एक दुष्कर कर्म है।

ध्रुव—यह भी एक दीर्घजीवी और युगप्रवर्तक महापुरुष थे, हरिवंशपुराणानुसार ध्रुव ने तीन सहस्रवर्षपर्यन्त तप किया—

ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि भारत।
तपस्तेपे महाराज प्रार्थयन् सुमहद् यशः॥ (१।२।१०)

ध्रुव ने निश्चय ही दीर्घकालतक राज्य किया होगा, इसकी अतिमात्रवृद्धि महिमा और यश के गीत असुरगुरु शुक्राचार्य ने गाये थे।[2]

परन्तु ध्रुव का भक्तिचरित प्रमाणिक पुराणपाठों से आकाशकुसुम और

---

१. सोऽभिषिक्तो महाराजो देवैरंगिरससुतैः।
आदिराजो महाराजः पृथुवैन्यः प्रतापवान्॥ (वायु० ६२।१३६);

२. तस्यातिमात्रामृद्धिं च महिमानं निरीक्ष्य च।
देवासुराणामाचार्यः श्लोकमप्युशना जगौ॥ (हरि० १।२।१२)

काल्पनिक वस्तु ही सिद्ध होता है।

ऋषभदेव—जैनों के आदितीर्थंकर प्रियव्रत के प्रपौत्र और नाभि के पुत्र थे, ये निश्चय ही अत्यन्त दीर्घजीवी पुरुष थे। जैनग्रन्थों में मरीचि ऋषि को तपोभ्रष्ट मुनि के रूप में चित्रित किया है, जिन्होंने ऋषभ के विरुद्ध विद्रोह किया। यह साम्प्रदायिक वर्णन है, परन्तु इससे यह सिद्ध होता है कि ऋषभ और मरीचि में धार्मिक मतभेद तो थे ही और वे समकालिक थे।

ऋषभ ने न केवल दीर्घकाल तक राज्य किया, बल्कि दीर्घकाल तक तपस्या भी की, भरत और बाहुबली इनके पुत्र थे।

कपिल (सांख्यप्रणेता)—अनेक कपिलों में—आदिविद्वान् महर्षि कपिल विरजा (प्रजापति) के प्रपौत्र एवं कर्दम के पुत्र थे, इनकी माता का नाम देवहूति था। ये अत्यन्त दीर्घजीवी पुरुष थे, सगरकाल तक ही नहीं भारतयुद्ध से कुछ शती पूर्व आसुरि महायाज्ञिक को इन्होंने अपना प्रधान शिष्य बनाया। अत. इस दृष्टि से इनकी न्यूनतम आयु चौदह सहस्र वर्ष निश्चित होती है, यदि इन्होंने सिद्धरूप में या निर्माणकाय बनाकर आसुरि को उपदेश दिया तो और बात है, जैसा कि पं० गोपीनाथ कविराज उन्हें केवल सिद्धपुरुष के रूप में मानते हैं।[1] पं० उदयवीर शास्त्री ने पं० गोपीनाथ कविराज के मत की बहुत ऊहापोह की है कि कपिल ने बिना शरीर के आसुरि को किस प्रकार उपदेश दिया होगा। यदि जन्मसिद्ध और सर्वश्रेष्ठ सिद्ध[2] कपिल 'निर्माणचित्त' नहीं बना सकते तो उदयवीरशास्त्री को समझना चाहिए कि योगसिद्धियाँ सब कल्पना और ढकोसला है जिनका स्वयं शास्त्रीजी ने विस्तार से वर्णन किया है, अन्यथा कपिल के 'निर्माणचित्त' को एक ऐतिहासिक तथ्य स्वीकार करना पड़ेगा। सरस्वती के विनाश के आधार पर[3] पं० उदयवीरशास्त्री कपिल का समय विक्रम से लगभग १८ या २० सहस्र वर्ष पूर्व मानते हैं, जैसा कि श्री अविनाशचन्द्रदास ने अपनी पुस्तक 'ऋग्वैदिक इण्डिया' में भौगोलिकरूपसे प्रमाणित किया है, अतः स्वायम्भुव मनु, कर्दम और कपिल का समय अबसे न्यूनतम बीससहस्रवर्ष पूर्व था, जबकि सप्तसिन्धुप्रदेश में सरस्वतीनदी बहती थी।

यदि कपिल ने अपने भौतिक शरीर से ही आसुरि को सांख्य का उपदेश दिया जैसा कि उदयवीर शास्त्री मानते हैं तो उनकी आयु चौदह सहस्र तक की माननी पड़ेगी, यदि निर्माणचित्त[4] या सिद्धरूप में उपदेश दिया, तब भी सगरकाल तक कपिल जीवि

---

1. Before he had plunged into निर्वाण, कपिल furnished himself with a सिद्धदेह and appeared before आसुरि to impart to him the Secret of सांख्यविद्या (सांख्यदर्शन का इतिहास: पृ० २८ पर उद्धृत उदयवीर शास्त्री)
२. सिद्धानां कपिलो मुनिः (गी० १०।२६),
३. श० ब्रा० (१।४।१।१०-१७),
४. "आदिविद्वान् निर्माणचित्तमधिष्ठाय कारुण्याद् भगवन् परमर्षिरासुरये तन्त्रं प्रोवाच।" (व्यासभाष्य),

रहे फिर भी आठ-नौ हजार वर्ष तो उनकी आयु अवश्य थी । इतनी आयु, जन्मसिद्ध-योगी, जो सर्वोत्तम योगी था, के लिए असम्भव नहीं है ।

सोम—दक्ष के नाना अथवा दक्ष का मातामह सोम उसके जामाता सोम से पृथक् हो सकता है । और श्वसुर सोम[1] निश्चय दीर्घजीवी व्यक्ति थे । दक्ष की २७ नक्षत्रनाम्नी रोहिणी आदि कन्यायें सोम की पत्नी थी, पुनः सोम की पुत्री मारिषा से दश प्रचेताओं ने दक्ष को उत्पन्न किया । अतःदक्ष सोम के श्वसुर और नाना (मातामह) दोनों ही थे । सोम के पिता, यदि आदिम अत्रि थे, तो सोम की आयु चारसहस्र वर्ष से कम नहीं थी, क्योंकि आदिम अत्रि उत्तानपाद के पालक थे[2] और सोम के पुत्र बुध वैवस्वत मनु के समकालिक थे । उत्तानपाद से बुध या मनु पर्यन्त, पुराणों में ४८ पीढ़ियाँ कथित हैं, परन्तु पुराणों में ये प्रधान पुरुष[3] ही कथित हैं, न्यूनतम ७१ पीढ़ियाँ थीं, जैसा कि मन्वन्तर में ७१ मानुषयुगों की गणना से सिद्ध है । सम्भावना है कि सोमपिता अत्रि आदिम अत्रि नहीं थे, उनके वंशज थे, क्योंकि प्रत्येक ऋषिनाम प्रायः गोत्रनाम से ही प्रथित होता था, अतः सोमपिता अत्रि आदिम नहीं थे । तो भी सोम की आयु सहस्राधिक वर्ष अवश्य होगी ।

कश्यप—यदि मारीच (मरीचिपुत्र या वंशज) कश्यप को साक्षात् मरीचि का पुत्र माना जाय तो प्रजापतियुग से देवयुग तक ही नहीं मानुषयुगों-कृतयुगान्त पर्यन्त जीवित रहने वाले महर्षि प्रजापति कश्यप की आयु आठ सहस्रवर्ष से कम नहीं होगी । यदि मरीचि के वंशज भी मारीच कहे जाते थे, तब भी कश्यप की आयु पाँचसहस्र वर्ष अवश्य थी । बाइबिल का केनान और महाललील (मारीच), ईरानियों का आदिपुरुष केओमर्ज (कश्यप मारीच)[4] यही कश्यप हो सकता है—दृष्टव्य बाइबिल—And all the days of cainan were nine hundred and ten years and he died (Holy Bible p. 9). "And all the days of Mahalel were eight hundred ninty and five years (वही पृष्ठ) सम्भावना है कि मारीच और कश्यप गोत्रनाम थे, क्योंकि स्वायम्भुवमन्वन्तर के कुछ शती पश्चात् होने वाले स्वारोचिष मन्वन्तर के सप्तर्षियों में एक काश्यप ऋषि भी थे, जो देवासुरपिता कश्यप से सहस्रोंवर्षपूर्व हुए । काश्यप को ही कश्यप भी कहा जाता था । कश्यप का काश्यप ऋषि से उत्तरकालीन होना सिद्ध करता है कि एक गोत्रनाम था और कश्यप ही एक मात्र मारीच या एकमात्र कश्यप नहीं थे अतः मारीच (मरीचिपुत्र) कश्यप अनेक थे,

---

१. द्रष्टव्य A History of Persia Vol I p. 133.

२. कथं प्राचेतसत्वं स पुनर्लेभे महातपाः ।
दौहित्रश्च सोमस्य कथं श्वसुरतां गतः । (हरिवंश १।२।५३)

३. उत्तानपादं जग्राह पुत्रमभिः प्रजापतिः । (हरि० १।२।७)

४. नाम्नां बहुत्वाच्च साम्याच्च युगे युगे । (ब्रह्माण्ड)
एतेषां यदपत्यं वै तदशक्यं प्रमाणतः । बहुत्वात्परिसंख्यातुं पुत्रपौत्रमनन्तकम् । ब्रह्मा० १।२।१३।१५०) ।

अर्थात् मारीच या कश्यप एक गोत्रनाम था। प्रजापतियुग के उत्तरकाल में कश्यप एक सर्वाधिक महत्तम प्रजापति थे, जिन्हें, प्रायः ब्रह्मा कहा जाता था, इनसे देव, असुर, नाग, गन्धर्व और सुपर्ण-संज्ञक पंचजन जातियाँ उत्पन्न हुईं, जिन्होंने समस्त भूमण्डल पर दीर्घकालपर्यन्त शासन दिया, इन्हीं के एक पुत्र विवस्वान् आदित्य के पुत्र वैवस्वत मनु के वंशजों ने सम्पूर्ण भारतवर्ष पर चिरकाल तक शासन किया, वस्तुतः भारतवर्ष का इतिहास वैवस्वतमानववंश का इतिहास है।

नारद—देवर्षि नारद पूर्वजन्म में परमेष्ठी प्रजापति के पुत्र थे, पुनः वे दक्ष के पुत्र हुए अथवा कश्यप के पुत्र हुए, अतः नारद दक्षपुत्रों के भ्राता थे।[१] नारदजन्म एक जटिल समस्या है, उसी प्रकार उनका दीर्घायु भी एक परम जटिल प्रहेलिका है। दक्ष-कश्यप से श्रीकृष्णपर्यन्त[२] (प्रजापतियुग से द्वापरान्त) जीवित रहने वाले देवर्षि नारद की आयु दशसहस्रवर्ष से अधिक निर्णीत होती है। इन्हीं देवर्षि नारद ने राजा सृंजय को षोडशराजोपाख्यान[३] सुनाया था। इससे पूर्व देवर्षि ने मानव हरिश्चन्द्र को उपदेश दिया था।[४] नारद का भागिनेय पर्वत (हिमालय) भी दीर्घजीवी ऋषि था। इसी पर्वत की पुत्री पार्वती महादेव की द्वितीय पत्नी थी। नारद के उपदेश से पर्वत (राजा) परिव्राजक ऋषि बन गया था।[५]

महादेव शिव—दक्ष की दशपुत्रियों का विवाह धर्मप्रजापति से हुआ, उनमें से वसु नामी पत्नी से साध्यगण, धर और एकादश रुद्र उत्पन्न हुए। इनमें महादेव शिवरुद्र प्रधान थे, कालिदास के समय में शिव अलक्ष्यजन्मा[६] माने जाते थे, इनके माता-पिता का नाम विस्मृत सा हो गया था। कालिदाससदृश महाकवि दक्षपुत्र पर्वतराज को नगाधिराज हिमालय (पत्थर का पहाड़) समझते थे, जो कि नारद का भागिनेय और दक्ष पार्वति[७] (द्वितीय दक्ष) का पिता था। यह पुराणों में कश्यपपुत्र भी कहे गये हैं।

इनकी दीर्वायु इतिहासपुराणों से प्रमाणित हैं।

स्कन्द सनत्कुमार—इन्हीं को कार्तिकेय कहा जाता है, ये रुद्र नीललोहित (शिव) के ज्येष्ठ पुत्र थे—

अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः।
स्कन्दः सनत्कुमारश्च सृष्टः पादेन तेजसः॥
(हरि० १।१३।४३)

---

१. यं कश्यपः सुतवरं परमेष्ठी व्यजीजनत्।
दक्षस्य दुहितरि दक्षशापभयान्मुनिः॥ (हरि० १।३।६)

२. विनाशशंसी कंसस्य नारदोमथुरां ययौ। (हरि० २।१।१)

३. शान्तिपर्व (३०-३१)

४. हरिश्चन्द्रो ह्वैधसः तस्य ह पर्वतनारदौ गृह ऊषतुः (ऐ० ब्रा० ८।१)

५. नारदो मातुलश्चैव भगिनेयश्च पर्वतः (महा० १२।३०।६),

६. कुमासम्भव

७. श० ब्रा० (२।४।४।१-६)।

छान्दोग्योपनिषद् में भी सनत्कुमार को ही स्कन्द कहा जाता है--'तं स्कन्द इत्याचक्षते (छा०उ०); इनके ही चार भ्राताओं को सनत्, सनातन सनन्दन, सनत्कुमार या शाख, विशाख, नैगम और सनत्कुमार कहते हैं। इन्होंने पंचम तारकामय देवासुर संग्राम[1] में देवसेनाओं का सेनापत्य किया था। नारद को सनत्कुमार ने ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया। ये सब देवयुग से पूर्व की घटनायें हैं, जबकि इन्द्रादि का जन्म नहीं हुआ था। इतिहासपुराणों में सनत्कुमारादि का दीर्घायुष्य प्रमाणित है। गीता में इनको सप्तर्षियों से पूर्व का ऋषि माना है।[2]

वरुण आदित्य---मुण्डकोपनिषद्[3] में वरुण को 'ब्रह्मा कहा गया है, जिन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा (भृगु) को ब्रह्मविद्या प्रदान की। आचार्यचतुरसेन शास्त्री ने बाइबिल के प्रमाण से लिखा है कि प्रजापति वरुण ने ही पृथ्वी को दो भागों में विभक्त किया।[4] प्रकारान्तर से म०म० पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी ने भी यही लिखा है कि सिन्धु नदी के उत्तर का सम्राट् वरुण और दक्षिणी भाग (भारतवर्ष) का सम्राट् इन्द्र था।[5] इतिहासपुराणों और पारसी धर्मग्रन्थ जेन्दावेस्ता से भी उपर्युक्त मत की पुष्टि होती है कि पाताल या समुद्र का अधिपति वरुण था—'अपां तु वरुणं राज्ये' (हरि० १।४।३), अदितिपुत्र आदित्यों या देवों में प्रथम या ज्येष्ठ था, इसी लिए पारसी इसको असुरमहत् (अहुरमज्दा) कहते थे, वह पश्चिमीदेशों—ईरान (पातालादि) का प्रथम शासक था, यूरोप, अफ्रीका और अरब देशों तक इसका साम्राज्य फैला हुआ। वरुण के पौत्र मयासुर या विश्वकर्मा ने अमेरिका में मयराज्य की स्थापना की। वर्तमान अरब ही वरुण की प्रजा— प्राचीन गन्धर्व थे। आज भी अरब अपना पूर्वज यादसांपति या दाज या ताज को मानते हैं। अथर्ववेद या छन्दोवेद (जेन्दावेस्ता) का प्रवर्तक भी वरुण था। वरुण और उनके पुत्र भृगु दैत्यराज हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष के पुरोहित थे। वरुण राज्यशासन के साथ-साथ महान् पौरोहित्यकर्म भी करते थे, इनकी राजधानी सूषानगरी के अवशेष ईरान में मिले हैं। वरुण ने यम से पूर्व पातालदेशों में दीर्घकाल तक राज्य किया था।

विष्णु—आदित्यों में विष्णु थे कनिष्ठ, परन्तु थे परमतेजस्वी। इनकी आयु परमदीर्घ प्रतीत होती है। विष्णु के साथ ही इनके वैमातृज भ्राता कश्यपात्मज वैनतेय गरुड़ भी दीर्घजीवी थे। पुराणों में गरुड़ का अस्तित्व पाण्डवों और श्रीकृष्णपर्यन्त प्रदर्शित किया गया है, परन्तु यह प्रमाणित तथ्य नहीं है।

---

१. संग्रामः पंचमश्चैव सुघोरस्तारकामयः। (वायुपुराण)
२. महर्षयःसप्तपूर्वे चत्वारो मनवस्तथा (गीता १०।६),
३. मु० (१।१।१),
4. The next act. of the Diety was to make a division (ordial), This operation divided the waters into Two parts as well as into two States (Genesis I).
५. भारतीय संस्कृति और वैदिकविज्ञान

मय विश्वकर्मा--शुक्र का पौत्र और त्वष्टा का पुत्र मयासुर दीर्घजीवी था। परन्तु देवासुरयुगीन मय और पाण्डवकालीन मय एक नहीं हो सकते, जैसा कि पं० भगवद्दत्त उन्हें एक मानते थे।[1] मय एक जातिगत या वंशगत नाम था, एक मय दाशरथि के समकालीन रावण का श्वसुर था, जो दशरथकालीन देवासुर संग्राम में मारा गया।[2] रामायणकालीन मय की पत्नी हेमा और पुत्री मंदोदरी थी, यह प्रसिद्ध ही है। अतः मय अनेक थे, परन्तु आदिम मय दीर्घजीवी अवश्य था, जिसने मिस्र, अमेरिका आदि में भवन (पिरामिड आदि) बनाये। यह विवस्वान् का शिष्य और श्वसुर था।

अगस्त्य---ऋग्वेद (१।१७०।१) में अगस्त्य और इन्द्र का संवाद है---अगस्त्य इन्द्राय हविर्निरूप्य मरूद्भ्यः संप्रदित्सांचकार स इन्द्र एत्य परिदेवयांचक्रे।[3] अगस्त्य ने नहुष को शाप दिया था। अगस्त्य मित्रावरुण का पुत्र था। इसको दाशरथिरामपर्यन्त जीवित बताया गया है। परन्तु यह भी गोत्र नाम था, तथापि देवयुगीन अगस्त्य दीर्घ-जीवी पुरुष होगा।

अश्विनीकुमार---ये विवस्वान् के पुत्र देवभिषक् और अन्तरिक्षचारी देव थे, इन्होंने च्यवनभार्गव को चिरयौवन दिया, ये सुदीर्घकालपर्यन्त जीवित रहे।

दीर्घजीवी सप्तर्षि—वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, अत्रि, जमदग्नि, कश्यप और भरद्वाज वैवस्वतमन्वन्तर के सप्तर्षि माने गये हैं, इनमें कश्यप साक्षात् न होकर उनका पुत्र वत्सर,[4] सप्तर्षियों के अन्तर्गत था न कि स्वयं देवासुरपिता प्रजापति कश्यप, अतः कश्यप के स्थान पर 'काश्यप' पाठ होना चाहिये।

दत्तात्रेय—हैहय अर्जुन को वर देने वाले अत्रिवंशीय दत्तात्रेय विष्णु के चतुर्थ अवतार माने जाते थे, ये दशम त्रेतायुग[5] (परिवर्त) में हुए, हैहय अर्जुन का विनाश उन्नीसवें त्रेता में हुआ, अतः दत्तात्रेय भी दीर्घतमा मामतेय के तुल्य दशयुगपर्यन्त (मानुषयुग नहीं, दिव्य दशयुग) अर्थात् ३६०० वर्ष जीवित रहे।

हनुमदादि---पुराणों में हनुमान्, विभीषण, कृप, अश्वत्थामा आदि को चिरंजीवी गया गया है, निश्चय ही हनुमदादि पुरुष दीर्घकाल तक जीवित रहे। महा-भारत वनपर्व में हिमालयपर्वत पर भीमसेन की पवनात्मज हनुमान् से भेंट हुई, अतः हनुमान् द्वापरान्तपर्यन्त अवश्य विद्यमान थे अर्थात् २५०० वर्ष जीवित रहे। अन्य विभीषणादि की आयु का हमें ज्ञान नहीं है।

परशुराम—जामदग्न्य परशुराम का जन्म हरिश्चन्द्रकालीन विश्वामित्र से एक-

---

१. द्र० भा० वृ० इ० भाग १ (पृ० १४९),
२ रामायण (३।५१),
३. निरुक्त (१।२।५),
४. वत्सारश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ।
वत्सारान्निध्रुवो जज्ञे रैभ्यश्च स महायशाः॥ (वायुपुराण),
५. त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह। (वही)

दो पीढ़ी पश्चात् हुआ, संभवत अष्टादश परिवर्तयुग में अर्थात् ७५०० वि०पू० और उन्नीसवें युग (७२०० वि०पू०) में इन्होंने हैहयअर्जुन का वध किया। दाशरथि राम (द्वापरादि) एवं पाण्डवों के समय तक परशुराम का अस्तित्व ज्ञात होता है, अतः परशुराम न्यूनतम चार हजार वर्ष तक जीवित रहे, जो परमाश्चर्यजनक घटना प्रतीत होती है। परशुराम एक ही थे, अनेक की कल्पना व्यर्थ है।

दीर्घजीवी व्यासगण

दक्ष प्रजापति से युधिष्ठिरपर्यन्त ३० युगों (परिवर्तों) अथवा चतुर्युगों अर्थात् १२००० (द्वादशसहस्र) वर्षों में ३० व्यास हुए अर्थात् ३६० वर्ष वाले दिव्य (सौर) युग में एक व्यास का अवतार हुआ, अतः सभी व्यासों की आयु ३०० या ३६० वर्ष अवश्य थी, इनमें कनिष्ठ व्यास पाराशर्य का इतिहास ज्ञात है जो शन्तनु से पारीक्षित् जनमेजय के कुछ काल पश्चात् भी जीवित थे,[2] यह समय ३०० वर्ष से अधिक था। अन्य प्राचीन व्यासों की आयु इनसे अधिक ही थी। व्यासपरम्परा के आधार पर ही हम युगों (परिवर्तों) का सही मान ज्ञात कर सके हैं। ३० व्यासों के नाम इस प्रकार हैं—(१) ब्रह्मा=प्रचेता प्रजापति, (२) कश्यप, (३) उशना, (४) बृहस्पति, (५) विवस्वान्, (६) वैवस्वतयम, (७) इन्द्र, (८) वसिष्ठ मैत्रावरुणि, (९) अपान्तरतमा सारस्वत, (१०) त्रिधामा, (११) शरद्वान्, (१२) त्रिविष्ट, (१३) अन्तरिक्ष, (१४) वर्षी, (१५) त्र्यारुण, (१६) धनञ्जय, (१७) कृतञ्जय, (१८) तृणञ्जय, (१९) भारद्वाज, (२०) गौतम, (२१) निर्यन्तर, (२२) वाजश्रवा, (२३) सोमशुष्म, (२४) निर्यन्तर, (२५) तृणबिन्दु, (२६) ऋक्ष, (२७) शक्ति, (२८) पराशर, (२९) हिरण्यनाभ कौसल्य, (३०) कृष्णद्वैपायन।

इनमें से निम्न सात व्यासों का किंचित् इतिहास ज्ञात है, जिससे प्रतीत होता है कि वे अतिदीर्घजीवी थे—(१) उशना, (२) बृहस्पति, (३) विवस्वान्, (४) वैवस्वतयम, (५) इन्द्र, (६) वसिष्ठ और (७) अपान्तरतमा।

उशना—देवासुराचार्य शुक्राचार्य आयु में देवगुरु बृहस्पति से बड़े थे। इनका जन्म हिरण्यकशिपु के समय में ही हो गया था और बलि और बाण के समय सप्तम युग तक जीवित रहे, अतः इनकी आयु ७ युग (दिव्ययुग) अर्थात् २५०० न्यूनतम अवश्य थी। ये तृतीय व्यास थे। ये भृगुवंशीय ब्राह्मणों के शासक बनाये गये—

भृगूणामधिपं चैव काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत्।[3]

---

१. एकोनविंशे त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकोऽभवत्।
जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरस्सरः॥ (वायु०)

२. पारीक्षितं द्रष्टुमदीनसत्वं द्वैपायनः सर्वपरावरज्ञः। (हरि० ३।२।७)

१. वायु (७०।४),

बृहस्पति—देवगुरु[1] आङ्गिरस का जन्म प्रजापतियुग के अन्त और देवयुग के प्रारम्भ में हो चुका था। अंगिरा के वंशजों और बृहस्पति के पूर्वजों ने आदिराजा पृथु वैन्य का अभिषेक किया था।[2] बृहस्पति की आयु उशना से किंचित् ही न्यून थी। ये भी सप्तम-अष्टम परिवर्तयुग पर्यन्त जीवित रहे, इनकी आयु दो सहस्र वर्षों से अधिक होगी, सम्भव है कि बृहस्पति की आयु वक्ष्यमाण सप्तम व्यास इन्द्र की आयु के ही तुल्य हो, जो लगभग दशयुग (३६०० वर्ष) पर्यन्त जीवित रहा।

विवस्वान्—मुख्यतः विवस्वान् की प्रजा ही आदित्य कहलाती थी। इनके वंशज भारत के प्रमुख शासक बने—(१) देवा आदित्याः। विवस्वानादित्यस्तस्येमाः प्रजाः।[3] विवस्वान् पंचमत्रेतायुग (परिवर्त) के व्यास थे, यद्यपि इनका जन्म इससे पूर्व द्वितीय युग में हो चुका था। अतः इनकी आयु देवराज इन्द्र से कुछ ही न्यून होगी, लगभग २०० वर्ष कम। इनके प्रमुख पुत्र—यम, मनु और अश्विनीकुमार थे, जो सभी परमदीर्घजीवी और देवपुरुष एवं प्रजापति हुए।

अवेस्ता में जहाँ वैवस्वत यम का राज्यकाल १२०० वर्ष लिखा है, उधर बाइबिल में वैवस्वतमनु (नूह (Nooh) की आयु आदि का विवरण द्रष्टव्य है—

(१) मनु की आयु जब ५०० वर्ष की थी, तब उसके तीन पुत्र उत्पन्न हुए—"And Nooh was five hundred years old and Nooh begot Sham, Ham and Jopheth".

बाइबिल का वर्णन पुराण से सर्वथा भिन्न हैं, जहाँ मनु के इलासहित दशपुत्र (इक्ष्वाकु इत्यादि) कथित हैं। प्रतीत होता है कि भ्रान्ति से अत्रिपुत्र सोम का बाइबिल में मनुपुत्र साम (Sham) के नाम से उल्लेख है। हाम—हेम हो सकता है अनुवंशज और तथाकथित तृतीय पुत्र—जांफेट (Jopheth) 'ययाति' हो सकता है।

(२) पुत्र उत्पत्ति के सौ वर्ष पश्चात् 'जलप्रलय' आई तब मनु की आयु ६०० वर्ष थी—'And Nooh was six hundred years old when the Flood of waters was upon the earth (Holy Bible, p. 10).

(३) **वैवस्वतमनु (नूह) की आयु और प्रलय का समय**—जलप्रलय की अवधि के सम्बन्ध में बाइबिल का वृत्त सत्य प्रतीत होता है, जो वर्तमान पुराणों में अनुपलब्ध है—"In the six hundredth years of Nooh's life the second month, the Seventh day of the month, the sameday they were all mountains of great deep broken up. (Bible p. 11).

(4) And the waters prevailed upon the earth one hundred and fifty days. (p. 11),

(४) **आयु**—मनु की पूर्ण आयु ९५० वर्ष थी—"And all the days of

---

१. बृहस्पतिर्देवानां पुरोहित आसीद्, उशना काव्योऽसुराणाम्। (जै० ब्रा० १।१२५)

२. सोऽभिषिक्तो महाराजो देवैरंगिरससुतैः। (वायु ६२।१३६);

३. श० ब्रा० (३।१।३।५);

Nooh were nine hundred and fifty years. And he died (p. 13). इस प्रकार प्रतीत होता है वैवस्वत मनु का जन्म सम्भवत तृतीययुग (१३००० वि०पू०) में हुआ और वह षष्ठयुग पर्यन्त लगभग एक सहस्र वर्ष (१२००० वि०पू०) जीवित रहे।

वैवस्वतयम—यम का पितृव्य (चाचा) इन्द्र आयु में उनसे छोटा था, यम षष्ठ युग के व्यास थे और इन्द्र सप्तम युग के व्यास हुए, अत: यम इन्द्र से न्यूनतम ३६० वर्ष बड़ा था। वैवस्वतयम की दीर्घआयु के सम्बन्ध में पारसी धर्मग्रन्थ अवेस्ता का निम्न उद्धरण प्रकाश डालता है—"जरथुस्त्र ने अहुरमज्द से पूछा, 'मेरे पहिले आपने किसको धर्म का उपदेश दिया। अहुरमज्द (वरुण) ने उत्तर दिया—"मैंने विवनघन्त के लड़के यम को धर्मोपदेश दिया...। तब मैंने उसको पृथ्वी का राजा बनाया...। इस प्रकार यम को राज्य करते हुए ३०० वर्ष व्यतीत हो गये। इतने दिनों में मनुष्यों और पशुओं की संख्या इतनी बढ़ गईं कि वहाँ जगह की कमी पड़ी। तब यिम ने पृथ्वी का आकार पहिले से एक तिहाई बढ़ा दिया। इस प्रकार ३००-३०० वर्ष उसने चार बार राज्य किया। इस बारह सौ वर्षों में पृथ्वी का आकार तो पहिले दूना हो गया।" (फर्गद २) इस काल के पश्चात् पृथ्वी पर हिमप्रलय आई, अत: सिद्ध होता है कि यम प्रलय से पूर्व ही १२०० वर्ष राज्य कर चुका था। प्रलय के मध्य में 'हर चालीसवें साल एक मिथुन सन्तान उत्पन्न होती थी' अत: प्रलय भी दीर्घकालीन थी, प्रलय के पश्चात् भी यम बहुत दिनों तक जीवित रहा। अत: उसकी आयु २००० वर्ष से अधिक ही थी।

इन्द्र – यह वेदों का उद्धर्ता सप्तम व्यास था, अत: इसका जन्म सप्तमयुग में (१२००० वि०पू०)हुआ। इसने १०१ वर्ष का ब्रह्मचर्य पालन किया[1] और आयुर्वेद के प्रवर्तक भरद्वाज को ४०० वर्ष की आयु[2] प्रदान की इससे समझा जा सकता कि स्वयं इन्द्र की कितनी दीर्घायु हो सकती है प्रतर्दन, मान्धाता और हरिश्चन्द्रपर्यन्त इन्द्र का अस्तित्व ज्ञात होता है। प्रतर्दन ययाति का दौहित्र और माधवी-दिवोदास का पुत्र था, इस तथ्य को जानते हुए भी पं० भगवद्दत्त[3] और सूरमचन्द[4] प्रतर्दन को दाशरथि राम के समकालीन मानते हैं, प्रतर्दन, राम से न्यूनतम ३००० वर्ष पूर्व हुआ। पं० भगवद्दत्त की यह कल्पना (धारणा) रामायण के भ्रामकपाठ के आधार पर है।[5] इन्द्रसमकालीन(देवयुगीन) प्रतर्दन रामसमकालिक कैसा हो सकता है, यह पण्डितद्वयी ने बिलकुल नहीं सोचा। मान्धाता, पन्द्रहवें युग में हुआ, राजा हरिश्चन्द्र[6] और दो युग पश्चात् अर्थात्

१. छा० उ० (८।७);
२. इन्द्र उपव्रज्योवाच—भरद्वाज। यज्ञे चतुर्थमायुर्दद्याम् किमनेन कुर्या इति।
(तै० ब्रा० ३।१०।११।४५)
३. भा० ब्र० इ० भाग १
४. आयु० का इति०
५. रामायण, उत्तरकाण्ड
६, हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित को स्वविर इन्द्र ने अरण्य में आकर उपदेश दिया—
'सोऽरण्याद् ग्राममेयाय तमिन्द्रः रूपेण पर्येत्योवाच। (ऐ० ब्रा० ८।१८)

सत्रहवें युग में हुए, अत: सप्तम से अष्टादशयुग तक जीवित रहने वाले इन्द्र की आयु दशयुग (३६०० वर्ष) से अधिक थी।

वसिष्ठ –अष्टमव्यास—पुराणों में वैवस्वतमनु से बृहद्‌बल (महाभारतयुग) पर्यन्त जिस मैत्रावरुणि वसिष्ठ का वर्णन किया है, वह एक ही प्रतीत होता है परन्तु यह सत्य नहीं, वसिष्ठ या वासिष्ठ अनेक हुये हैं, यह गोत्रनाम था, फिर भी आद्य मैत्रावरुणि वशिष्ठ-दीर्घजीवी थे।

अपान्तरतमा—सारस्वत, वाच्यायन, प्राचीनगर्भ अपान्तरतमा नाम के नवम व्यास ने अपने पितृव्यआदि अङ्गिरस ऋषियों को वार्तघ्नदेवासुरसंग्राम के पश्चात् वेद पढ़ाया था, वही कलियुग में पाराशर्य व्यास हुए, ऐसा महाभारत का मत है, इनके एक शिष्य पराशर थे, इससे सिद्ध होता है कि ये ऐक्ष्वाक राजा कल्माषपाद पर्यन्त जीवित रहे।

मार्कण्डेय—शण्ड और मर्क उशना के पुत्र भार्गव ऋषि थे, मर्क के नाम से योरोप का डेनमार्क (दानवमर्क) देश प्रसिद्ध हुआ। सम्भवत: मर्क का नाम ही मृकण्डु हो। मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय अत्यन्त दीर्घजीवी ऋषि थे, इन्होंने जलप्रलय का दृश्य देखा था और इससे पूर्व देवासुरों के दर्शन किये तथा द्वापरान्त में इन्होंने युधिष्ठिर पाण्डव को मार्कण्डेयपुराण सुनाया। दशमयुग में मार्कण्डेय दत्तात्रेय के सहयोगी थे—

त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह।
नष्टे धर्मे चतुर्थश्च मार्कण्डेयपुरस्सर:॥ (वायु०)
बहुसंवत्सरजीवी च मार्कण्डेयो महातपा:।
दीर्घायुश्च कौन्तेय स्वच्छन्दमरणं तथा॥ (वनपर्व १८१)

लोमश—यह भी उपर्युक्त मार्कण्डेय के समान बहुसंवत्सरजीवी थे जो देवासुर युग से पाण्डवकालतक जीवित रहे।[1]

दीर्घतमा मामतेय = गौतम—इनकी आयु एक सहस्र वर्ष थी, जैसा कि ऋग्वेद (१।१५८।६) और शांखायन आरण्यक (२।१७) से प्रमाणित होता है कि वे दश मानुषयुग (= १००० वर्ष) जीवित रहे।[2]

भरद्वाज और दुर्वासासम्बन्धी भ्रान्ति—पं० भगवद्दत्त इन दोनों को देवासुर युग से महाभारतकालतक जीवित मानते हैं जो एक महती भ्रान्ति है। इन्द्र ने जब भरद्वाज को बड़ी कठिनाई से और उपकार करके ४०० वर्ष की आयु दी तब वह भरद्वाज प्रतर्दन से युधिष्ठिरपर्यन्त ८००० वर्ष कैसे जीवित रह सकता है। निश्चय भरद्वाज एक गोत्रनाम था, द्रोण आदिम भरद्वाज का नहीं, किसी भरद्वाजगोत्रीय ब्राह्मण का पुत्र था। इसी प्रकार दत्तात्रेय के भ्राता दुर्वासा को कुन्ती के साथ व्यभिचार करने वाला दुर्वासा नहीं माना जा सकता, इन दोनों में भी ८००० वर्ष का अन्तर था। ८००० की आयु में भरद्वाज या दुर्वासा का स्त्री या सन्तान की इच्छा करना बुद्धिगम्य

---

१. द्रष्टव्य वनपर्व (६२।५);
२. दीर्घतमा दश पुरुषायुषाणि जिजीव ((शा० आ० २।१७)

नहीं है, वस्तुत: यह पं० भगवद्दत्त को बिना सोचे-समझे भ्रान्ति हुई है।[1] भरद्वाज और दुर्वासा अनेक थे।

मुचुकुन्दसम्बन्धी पौराणिकभ्रान्ति - प्राय: अनेक पुराणों में मान्धाता के पुत्र मुचुकुन्दसम्बन्धी भ्रान्ति मिलती है कि कालयवन को गिरिगुहा में भस्म करने वाला, श्रीकृष्ण को दर्शन देनेवाला, वही देवासुरयुगीन मुचुकुन्द था। वस्तुत: यह भ्रान्ति नामसाम्य के कारण हुई है। हरिवंशपुराण में इस भ्रान्तिजनक प्रसंग[2] का उल्लेख है और इसी पुराण से इस भ्रान्ति का निराकरण भी होता है। तथाकथित मुचुकुन्द वासुदेव श्रीकृष्ण का पूर्वज यदुवंशी मुचुकुन्द था- यह यदु ऐक्ष्वाक राजा हर्यश्व का पुत्र था—'मधुमत्यां सुतो जज्ञे यदुर्नाम महायशा:।[3]

मधु यादव था, दैत्य नहीं—भ्रम से पुराणों में इसे दानवेन्द्र लिखा है, जो नामसाम्यकृतभ्रान्ति है। उसकी पुत्री मधुमती और ऐक्ष्वाक हर्यश्वपुत्र यदु के पाँच पुत्र हुये—

मुचुकुन्दं महाबाहुं पद्मवर्णं तथैवच।
माधवं सारसं चैव हरितं चैव पार्थिवम्॥[4]

माधव का पुत्र सत्वत और उसका पुत्र भीम था जो राम दाशरथि के समकालीन था।[5] माधववंश में ही लवण हुआ।

उपर्युक्त माधवभ्राता मुचुकुन्द ही श्रीकृष्ण को दर्शनदेनेवाला मुचुकुन्द था, जिसकी आयु द्वापरकालतुल्य=२४०० वर्ष थी, वह मान्धातृपुत्र मुचुकुन्द नहीं। निसंदेह मुचुकुन्द दीर्घजीवी था, परन्तु उतना नहीं, जितना पौराणिकभ्रान्ति से प्रतीत होता है।

महाभारतकालीन दीर्घजीवीपुरुष

महाभारतकाल में अनेक पुरुष दीर्घजीवी हुए जिनकी आयु सौ से दो सौ वर्ष या तीनसौवर्षपर्यन्त अवश्य थी, अत: उनकी आयु का यहाँ संक्षेप में निर्देश करेंगे।

पंचशिख पाराशर्य—यह पराशरगोत्रीय सुप्रसिद्ध सांख्याचार्य दार्शनिक थे, जिनका धर्मध्वज (अपरनाम जनदेव) से वार्तालाप हुआ था। पाणिनिसूत्रोल्लिखित भिक्षुसूत्रों के रचयिता भी सम्भवत: ये ही थे। इनको महाभारत (१२।२२०।११०) में चिरजीवी (दीर्घजीवी) और वर्षसहस्रयाजी कहा गया है—

---

१. द्र० भा० बृ० इ० भा० (पृ० १४८),
२. हरि० (२।५७)
३. हरि० (२।३७।४४);
४. हरि० (२।३८।२)
५. हरि० (२।३८।३९)

आसुरेः प्रथमं शिष्यं यमाहुश्चिरजीविनम् ।
पञ्चस्रोतसि यः सत्रमास्ते वर्षसहस्रिकम् ।।[1]

भिक्षु पंचशिख, सम्भवतः पाण्डवों के समय तक जीवित थे।

पाराशर्य व्यास—उपर्युक्त प्रसंग से सिद्ध होता है कि पाराशर्य व्यास शक्तिपुत्र पाराशर के साक्षात्पुत्र नहीं तद्गोत्रीय पुरुष थे, तभी तो उनके पूर्ववर्ती भिक्षु पंचशिख को पाराशर्य कहा गया है। यदि शक्तिपुत्र पराशर को ही व्यास का पिता माना जाय तो सौदास कल्माषपाद ऐक्ष्वाक से शन्तनुपर्यन्त लगभग ३००० वर्ष होते हैं, इतनी दीर्घआयु में पराशर द्वारा मत्स्यगन्धा से संग करना और पुत्र उत्पन्न करना बुद्धिगम्य नहीं, अन्यथा भी सिद्ध है कि व्यास से पूर्व अनेक पाराशर ब्राह्मण हो चुके थे यथा पंचशिख पाराशर्य और व्यास के गुरु जातूकर्ण्य पाराशर्य, इससे समझा जा सकता है व्यास के पिता आदिपराशर नहीं, उत्तरकालीन तद्गोत्रीय पाराशर या पाराशर्य कोई अन्य ऋषि थे।

पाराशर्य व्यास की आयु एक युग (=३६० वर्ष) के तुल्व अवश्य थी, क्योंकि भीष्म के तुल्यवया व्यासजी परीक्षित् जनमेजय के पश्चात् सम्भवतः अधिसीमकृष्ण पर्यन्त जीवित रहे, अतः उनकी आयु ३०० वर्ष से अधिक ही थी। प्रतीप से परीक्षित् तक ३०० वर्ष का समय व्यतीत हुआ। व्यासजी पारीक्षित् जनमेजय के कालोपरान्त भी जीवित रहे।

उग्रसेन और वसुदेव और वासुदेव कृष्ण—इतिहासपुराणों में श्रीकृष्ण की आयु १२५ या १३५ वर्ष कथित है, श्रीकृष्ण की मृत्यु के समय उनके पिता वसुदेव और मातामह राजा उग्रसेन जीवित थे, अतः उन दोनों (वासुदेव और उग्रसेन) की आयु २०० वर्ष के लगभग थी।

पाण्डवों की आयु—पं० भगवद्दत्त ने लिखा है "महाभारत के एक कोश (हस्तलिखितप्रति) के अनुसार युधिष्ठिर का आयु १०८ कहा गया है।"[2] सभी पाण्डवों में एक-एक वर्ष का अन्तर था अतः भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव क्रमशः १०७, १०६, १०५, १०४ वर्ष की आयु में दिवंगत हुए। श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से १७ या १८ वर्ष बड़े थे, भारतयुद्ध के समय इनकी आयु इस प्रकार थी—

श्रीकृष्ण	=	९० वर्ष	+ ३६ वर्ष	= १२६	वर्ष में देहान्त
युधिष्ठिर	=	७२ ,,	+ ,,	= १०८	,,
भीम	=	७१ ,,	,,	= १०७	,,
अर्जुन	=	७० ,,	,,	= १०६	,,
नकुल	=	६९ ,,	,,	= १०५	,,
सहदेव	=	६८ ,,	,,	= १०४	,,

---

१. मैथिलो जनको नाम धर्मध्वज इति श्रुतः (महाभा० १२।३२५।४) तथा द्र० (विष्णु० ६।६) एवं महा० (१२।२२०),

२. वै० वा० इ० भाग १, पृ० २६२,

द्रोणाचार्य की आयु—महाभारत में स्पष्टतः उल्लिखित है कि उनकी आयु ८५ वर्ष थी।[1] पं० भगवद्दत्त 'अशीतिपंचक' का अर्थ ४०० वर्ष करते हैं जो अन्यथा उपपन्न नहीं होता। द्रोण द्रुपद के समवयस्क और सतीर्थ्य थे, उनका कनिष्ठ पुत्र धृष्टद्युम्न द्रौपदी से वहुत छोटा था, अतः द्रुपद की आयु युद्ध के समय १०० ऊपर नहीं हो सकती, पुनः कृपाचार्य और द्रोणपत्नी कृपी का पालन शन्तनु ने ही किया था, जो दोनों ही भीष्म से कम आयु के थे, भीष्म की आयु डेढ़ सौ वर्ष से अधिक नहीं थी, तब द्रोण की आयु ४०० वर्ष कैसे हो सकती है, अतः 'वयसा अशीतिपंचकः' का अर्थ ८५ वर्ष ही उपयुक्त एवं उपपन्न होता है। द्रोणाचार्य अपने शिष्यों—पाण्डवादि से पन्द्रह-सोलह वर्ष अधिक बड़े थे, जो एक गुरु के उपयुक्त आयु है, शिक्षा देते समय द्रोण की आयु पेंतीस-चालीस के मध्य में थी।

द्रोण के समान द्रुपद भी इतनी ही आयु के थे।

नागार्जुन—आन्ध्रसातवाहनयुग में आचार्य नागार्जुन की आयु ५२९ वर्ष थी। तिब्बती आचार्य लामा तारानाथ के अनुसार वाट्टर्स ने नागार्जुन की जीवनी में लिखा है कि नागार्जुन की आयु ५२९ या ५७१ वर्ष थी, वह २०० वर्ष मध्यदेश में, २०० वर्ष दक्षिण में १२९ वर्ष श्रीपर्वत पर रहा। नागार्जुन आंध्रसातवाहन युग ६८४ वि० पू में० जन्मा और १५५ वि० पू० कनिष्क के राज्यकाल के अन्तर्गत दिवंगत हुआ।[2]

पुरातन राजाओं का दीर्घराज्यकाल

अवेस्ता के आधार पर ऊपर लिखा जा चुका है कि वैवस्वत मनु ने जलप्रलय से पूर्व १२०० वर्षराज्य किया, बाइबिल के अनुसर स्वायम्भुवमनु (आदम) ने ९३० वर्ष राज्य किया, इन्द्र ने इससे भी अधिक वर्ष राज्य किया। बाइबिल में नूह (वैवस्वत मनु) का राज्यकाल ५०० वर्ष लिखा है, रऊ और नहु का राज्यकाल क्रमशः २३७ वर्ष और १६० वर्ष लिखा है। इनमें रऊ पुरूरवा और नहुर नहुष प्रतीत होता है, अतः पुरूरवा का राज्यकाल २३७ वर्ष और नहुष का राज्यकाल १६० वर्ष था।

पुराणों में कुछ राजाओं का राज्यकाल सहस्रोंवर्ष बताया गया है, इस सम्बन्ध में हम पूर्व विवेचन कर चुके हैं कि पुराणों में दिव्यवर्ष के घटाटोप में दिनों को वर्ष बना दिया अथवा सामान्यवर्षों को दिव्यवर्ष समझकर उनमें ३६० का गुणा कर दिया, फल एक ही है, किसी प्रकार समझ लिया जाय। अतः प्रसिद्ध कुछ राजाओं का राज्यकाल इस प्रकार था—

अलर्क—षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ।
नालर्कादपरो राजा मेदिनीं बुभुजे युवा ॥ (भागवत ९ १८।७)

---

१. आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपंचकः ।
संख्ये पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥" (महाभारत, द्रोणपर्व)

२. द्र० वाट्टर्स भाग २, पृ० २०२;

हैहय अर्जुन—पञ्चाशीति सहस्राणि वर्षाणां नै नराधिपः ॥ (हरि० ७।३३।२३)
दाशरथि राम—दश वर्षसहस्राणि दश वर्ष शतानि च ।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥ (रामा० १।६६)
भरत दौष्यन्ति—समास्त्रिणवसाहस्रीर्दिक्षु चक्रमवर्तयत् । (भाग० ६।२०।३२)

अन्य राजाओं का राज्यकाल पुराणों में इस प्रकार उल्लिखित है—

इक्ष्वाकु = ३६००० वर्ष; सगर = ३०००० वर्ष

तदनुसार उपर्युक्त राजाओं का राज्यकाल इस प्रकार था—

(१)	अलर्क	६६००० वर्ष	(दिन)	=	१८५ वर्ष
(२)	अर्जुन (हैहय)	८५००० ,,	,,	=	२३६ वर्ष
(३)	दाशरथि राम	११००० ,,	,,	=	३१ वर्ष
(४)	भरत दौष्यन्ति	२७००० ,,	,,	=	७५ वर्ष
(५)	इक्ष्वाकु	३६००० ,,	,,	=	१०० वर्ष
(६)	सगर	३०००० ,,	,,	=	८३ वर्ष

मान्धाता जातक (सं० २५८) में चक्रवर्ती मान्धाता का जीवनकाल इस प्रकार लिखा है—

बालक्रीड़ा	=	८४ वर्ष	(सहस्रवर्ष)	निरर्थक
यौवराज्य	=	८४ वर्ष	(,,)	,,
राज्यकाल	=	८४ वर्ष	(,,)	,,
कुल	=	२५२ वर्ष		

भारतोत्तरकाल में अनेक राजाओं का दीर्घराज्यकाल था, यथा—

प्रद्योत पालक	=	६० वर्ष
सोमाधि बार्हद्रथ	=	५८ वर्ष
श्रुतश्रवा	,,	६४ ,,
सुक्षत्र	,,	५६ ,,
महापद्मनन्द	,,	१०० ,,
बृहद्रथ मौर्य	,,	७० ,,
समुद्रगुप्त	,,	५१ या ४१ वर्ष

शूद्रक-विक्रम—शूद्रक (क्षुद्रक) (विक्रम मृच्छकटिक का लेखक) विक्रम संवत् प्रवर्तक ने सौ वर्ष १० दिन की आयु प्राप्त की थी और दीर्घकाल (लगभग ८० वर्ष) राज्य किया था—

लब्ध्वा चायुः शताब्दं दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्नि प्रविष्टः ॥

अतः इतिहास में औसत राज्यकाल निकालना या अटकलपच्चू से औसत राज्य काल १८ वर्ष कह देना, इतिहास नहीं कहानी से भी निकृष्टतर व्यर्थ—अर्थहीन-कल्पनामात्र है ।

नामानुक्रमणिका

अक्षरक्रम पृ० सं०

अ

अक्षरक्रम पृ० सं०

इ—ई

उ—

सन्दर्भ ग्रन्थसूची

(BIELIORAPHY)

हिन्दी-संस्कृत ग्रन्थ

पुस्तक	लेखक	प्रकाशक	प्र० वर्ष सं०
1 अथर्ववेद	—	परोपकारिणी सभा अजमेर	2001
2 अमरकोश	प्रभाटीकायुत	चौ० सं० पुस्तकालय वाराणसी	1949
3 अर्थशास्त्र	कौटल्य	मैसूर	—
4 अलबेरूनी का भारत	सचाऊ	एस चादकं० दिल्ली	1964
5 अष्टाध्यायी	—	मलापुर, मद्रास	1937
6 आदिमानव का इतिहास	रामदत्त सांस्कृत्य	साहित्यसंस्थान, चुरू (राजस्थान)	
7 आयुर्वेद का इतिहास	कविराज सूरमचन्द्र	शिमला	
8 आर्यों का आदिदेश	डा० सम्पूर्णानन्द	हिन्दीसाहित्यसम्मेलन प्रयाग	
9 आर्यभटीय			
10 आपस्तम्व श्रौतसूत्र	सं आर० गार्वे	रायल एशियाष्टिक, सोसाइटी कलकत्ता	1982 1903
11 इतिहासपुराण का इतिहास	डा० व्यासशिष्य	इतिहास विद्याप्रकाशन नांगलोई	1978
12 ईशावास्योपनिषद्	शांकरभाष्य	गीता प्रेस, गोरखपुर	1911
13 इतिहासपुराणअनुशीलन	रामशंकर भट्टाचार्य	इण्डोलोजीकल बुकहाउस बाराणसी	1963
14 ऐतरेयब्राह्मण	षड्गुणशिष्यटीका	आनन्द आश्रमग्रन्थावली पूना	1963 1898
15 ऐतरेयआरण्यक	सायणभाष्य	आनन्दआश्रमग्रन्थावली पूना	1898

16 ऋक्तन्त्र	शाकटायन	महेरचन्दलक्ष्सणदास दिल्ली	1970
17 ऋग्वेद	श्रीपाद सातवलकर	स्वाध्यायमण्डण औंधनगर	1940
18 ऋक्सर्वानुक्रमणी	कात्यायन	विवेकप्रा० वे० अलींगढ़	1977
19 कात्यायनश्रौतसूत्र	कात्यायन सं बैवर	चौखम्वा सं०सीरीज वाराणसी	—
20 कृष्णचरित	समुद्रगुप्त	रसशाला औषधालय गौडल	1941
11 काशिका	—	चौखम्वा सं० वराणसी	1931
22 कुमारसंम्भव	कालिदास ग्रन्थावली	किताव महल, इलाहाबाद	1940
23 काठक संहिता	श्रीपाद सातसातवल-कर	स्वाध्यायमंडल औंधनगर	1911
24 केनोपनिषद्	शांकरभाष्य	गीता प्रेस गोरखपुर	
25 गीतारहस्य	लोकमान्य तिलक	तिलकजगर्ल, पूना	
26 चरकसंहिता	चरक	मोतीलाल, बनारसीदास वाराणसी	1976
27 छान्दो योपनिषद्	शंकरभाष्य	गीता प्रेस गोखपुर	2019
28 जैमिनीयब्राह्मण	डा० लोकेशचन्द्र	सरस्वती विहार दिल्ली	2011
29 तमिल संस्कृति	द० शौरिराजन्	र० भारत हिन्दी प्रचारक मद्रास समिदि	1970
30 ताण्डयब्राह्मण	चिन्नस्वामी	चौखम्वा संस्कृत सी० वराणसी	1991
31 तैत्तिरीयोपनिषद्	—	गीता प्रेस गोरखपुर	2012
32 तैत्तिरीय संहिता	ए० बी० कीथ	सोलीलाल बनारसीदास दिल्ली	1914
33 तैत्तिरीयब्राह्मण	—	आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थमाला पूगा	1938
34 तैत्तिरीयारण्यक	सायणभाष्य	आनन्दश्रम स० गु०,पूना	1867
35 निरुक्तशास्त्र	पं० भबवद्दत्त	रामलाल कपुर, अमृतसर	2021
36 निरुक्तसारनिर्वचन	डा० कुला० व्यासशिश्र	इतिहास विद्या प्रकाशन दिल्ली	1978
37 निदान	बुद्धघोष	चौखम्बा सं० सी० वाराणसी	
38 न्यायभाष्य	वात्स्यायन	चौखम्वा सं सी०वाराणसी	—
39 प्राचीन भारत का राज-नैतिक इतिहास	हेमचन्द्रराय चौधरी	किताबमहल, इलाहाबाद	1976



40	प्राचीन भारतीय अभिलेख	डा० वासुदेव उपाध्याय	प्रज्ञा प्रकाशन, पटना	1971
41	प्राचीनभारतीय गणित	ब० ल० उपाध्याय	विज्ञानभारती, नई दिल्ली-3	1971
42	बुद्ध चरित	शिवबालक द्विवेदी	विद्या प्रकाशन, कानपुर	1976
43	बौधायन श्रौतसूत्र	कालैण्ड	एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता	1913
44	ब्रह्माण्डपुराण	सं० जगदीश शास्त्री	मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली	
45	बृहद्देवता	अनु० रामकुमार राय	चौखम्बा सं० सी० वाराणसी	1963
46	बृहदारण्यकोपनिषदद्	गीताप्रेस	गीता प्रेस गोरखपुर	2012
47	भारतवर्ष वृहद् इतिहास दो भाग	पं० भगवदत्त	इतिहासप्रकाशनमंडल दिल्ली	
48	भारतीय इतिहास की भयंकर भूले	श्री पी एन ओक	सूर्य प्रकाशन, दिल्ली	1968
49	भारतवर्ष का इतिहास	इलियट		
50	महाभाष्य	चारुदेव शास्त्री	मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी	2019
51	भागवतपुराण	वेदव्यास	गीताप्रेस, गोरखपुर	
52	महाभारत, 4 भागों में	,,	गीताप्रेस गोरखपुर	
53	भारतीय इतिहास की रूपरेखा	जयचन्द्र विद्यालंकार		
54	भारतीयखगोल विज्ञान	पं० जगन्नाथ भारद्वाज	मोहन ब्रदर्स अम्बाला लखनऊ	1978
55	भारतीय ज्योतिष	बालकृष्ण दीक्षित		1963
56	भारतीय ज्योतिष	डा० नेमिचन्द जैन	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली	1981
57	भगवद्गीता	—	गीताप्रेस गोरखपुर	सं० 2023
58	मत्स्यपुराण	गुरुमण्डल ग्रन्थमाला	कलकत्ता	1954
59	मनुस्मृति	कुल्लटकृत	मन्वर्थ मुक्तावली, बम्बई	1913
60	मुण्डकोपनिषद्	शंकर भाष्य	गीताप्रेस गोरखपुर	
61	मैत्रायणीसंहिता	ल०व० श्रोडर	बेबार्ण	1985
62	मार्कण्डेयपुराण	श्री रामशर्मा	बरेली	1969